जगद्गुरु

श्रीरामानन्दाचार्य-चरित

प्रकाशक :

श्रीरामानन्द पुस्तकालय

सुदामाकुटी • वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

जगद्गुरु

श्रीरामानन्दाचार्य-चरित

लेखक :

स्वामी श्रीजयरामदेवजी महाराज

प्रकाशकीय

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य-चरित के पुनर्मुद्रण की आज्ञा श्रीरामानन्द पुस्तकालय, सुदामाकुटी, वृन्दावन को स्वामी श्रीजयरामदेवजी महाराज ने प्रदान की थी अतः यह प्रकाशन आचार्यनिष्ठ पाठकों के हितार्थ किया गया।

विनीत—प्रकाशक

प्रकाशक :

श्रीरामानन्द पुस्तकालय

सुदामाकुटी, वृन्दावन

●

संस्करण :

प्रथम १५०० प्रतियां

●

प्रकाशन तिथि :

श्रीरामानन्द जयन्ती

सम्वत् २०५५

सन् १९९९

प्राप्ति स्थान :

* **श्रीरामानन्द पुस्तकालय**
  सुदामाकुटी, वृन्दावन
* **खण्डेलवाल पुस्तकालय**
  अठखम्भा, वृन्दावन
* **ब्रजवासी पुस्तकालय**
  पुराना शहर, वृन्दावन

●

मूल्य :

४०) रुपये

●

प्रिन्टर्स :

मारुति प्रेस

मदनमोहन-घेरा, वृन्दावन

☎ 444215
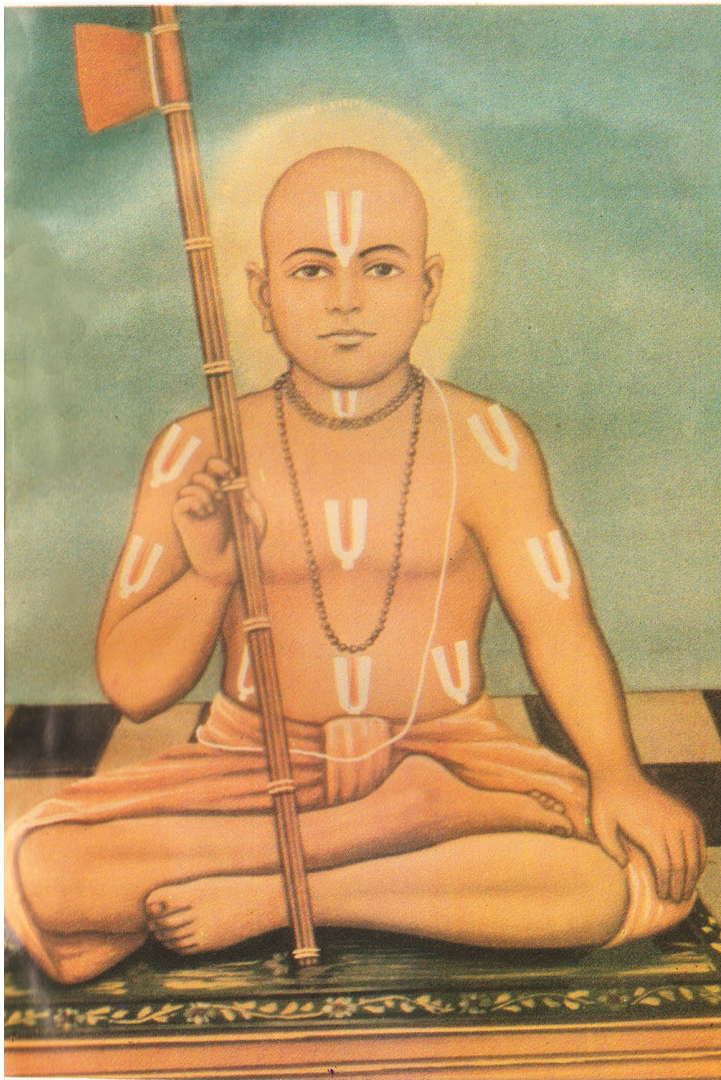
आचार्य सम्राट् जगद्गुरु भगवान्
श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी महाराज

भूमिका

[लेखक—श्रीइन्द्रवदनजी चोकसी]

(बी.ए., एल. एल. बी.)

जगद्गुरु भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी का चरित भविष्य पुराण में भी आया है। श्रीवेदव्यासजी ने दिव्यदृष्टि से देखकर भविष्य द्वापर में ही वर्णन कर दिया था। वाल्मीकि संहिता, अगस्त्य संहिता, श्रीरामानन्द दिग्विजय आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थों में श्रीरामानन्दाचार्यजी का चरित विस्तार से वर्णन है। ५०० वर्ष पूर्व के लिखे प्राकृत भाषा में प्रसंग पारिजात नामक ग्रन्थ में ऐतिहासिक रूप में आपका चरित्र बहुत सुन्दर वर्णन है।

वि० सं० १९९६ में स्वामी श्रीजयरामदेवजी महाराज ने दोहा चौपाइयों में (श्रीरामानन्दायन) नामक ग्रन्थ की रचना की थी। जिसे महाकाव्य मानकर विद्वानों के परिषद् ने उज्जैन कुम्भ में महाकवि की पदवी और स्वर्णपदक प्रदान किया। तुलसीकृत रामायण के समान इस (श्रीरामानन्दायन) की चौपाइयाँ सबको पसन्द आईं। इसका बहुत प्रचार हुआ। कई संस्करण छपे, लगभग २० हजार पुस्तकें बिक गईं। पश्चात् (श्रीरामानन्दायन) अर्थ सहित प्रकाशित हुई। वह शीघ्र ही समाप्त हो गई। अब बहुत दिनों से उसकी बहुत माँग है। लेकिन इस मँहगाई में इतने बड़े ग्रन्थ का छपना कठिन था। इसलिए बहुत से विद्वानों ने कहा कि केवल सरल हिन्दी भाषा में ही शीघ्र छपाई जाय।

जिसमें चौपाइयाँ न हों। चौपाइयों वाला ग्रन्थ (श्रीरामानन्दायन) मूल-मूल अलग गुटका साईज में छपा दिया जाय। स्वामीजी ने स्वीकार किया और इसीलिए यह सरल भाषा में चरित्र रचा जो आपके हाथों में है। इसमें इतिहास है, बड़े-बड़े सिद्धों के सम्वाद, योग-साधना के गूढ़ रहस्य बड़े रोचक ढंग से आये हैं। रैदास, कबीरदास, धनाभक्त, अनन्तानन्द,

योगानन्द आदि सिद्धों के विलक्षण चरित्रों का वर्णन है। भक्तियोग, ज्ञान-विज्ञान, रहस्यत्रय, मन्त्रार्थ तत्वत्रय, वैष्णवधर्म के उपदेश आदि ऐसे हैं, जिनको पढ़कर जीवन दिव्य हो जाता है।

अपने पूर्वजों के प्रकाशमय चरित्रों को भूलना नहीं चाहिए। उन चरित्रों के द्वारा हमें मार्गदर्शन मिलता है। सन्तजन इस ग्रन्थ के द्वारा अपनी साधना सफल करेंगे। जिनके हृदय में वैराग्य उदय नहीं होता उनको इस ग्रन्थसे वैराग्य प्राप्त होगा। राजा पीपाजीका और श्रीयोगानन्दजी का चरित्र वैराग्य बढ़ाने वाला है। आचार्य भगवान के प्रताप से शंख ध्वनि द्वारा मुर्दों का जीवित होना, रोगों का निवारण होना, योग-साधना के चमत्कार, यवनों के अत्याचारों का निवारण आदि चरित्र बड़े ही प्रभावशाली हैं। आचार्य भगवान ने ही वास्तव में हिन्दू धर्म को बचाया था, नहीं तो आज धर्म मिट चुका होता। ऐसे परमात्मा आचार्य के चरित्रों को नित्य पाठ करके सभी गृहस्थ और विरक्त लाभ उठायें, यही मेरी सबसे विनम्र प्रार्थना है। कितने ही विद्वानों ने इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसलिए भक्तों को इसका मनन करके स्वयं ही अनुभव करना चाहिए।

रे मन रामानन्द भजु, जो चाहि कल्यान।
बिन आचारज की कृपा, कौन हरै अज्ञान॥
श्रीरामानन्द नाम जपु, करु आचारज ध्यान।
चरित मानि आदर्श कर, आचारज गुण गान॥
राम भक्तिप्रद मन्त्रप्रद, ज्ञान विरतिप्रद चन्द।
जय-जय जगदानन्दप्रद, जगद्गुरु रामानन्द॥

जगदगुरु

श्रीरामानन्दाचार्य-चरित

जन्म

भगवान के आचार्यरूप में अवतार लेने के कई कारण हैं। जीवों का उद्धार करना तो है ही, किन्तु मुनिजन एक विख्यात कारण बताते हैं, वह चरित्र भक्तों को सुख देने वाला यहाँ वर्णन किया जाता है। ऋषिकेश में एक ब्राह्मण अपनी पत्नी के सहित निवास करते हुए श्रीभरतजी की उपासना करते थे और परम भक्तिभाव में भरे रहते थे। उनको जगत् से जब पूर्ण वैराग्य हो गया तो सब सम्पत्ति त्यागकर वह दोनों पति-पत्नी बद्रीनाथ धाम में जाकर भगवान श्रीरामजी के दर्शनार्थं बड़े-बड़े तप करने लगे। हृदय में विरह की अग्नि बढ़ रही थी, आँखों में अश्रुजल भरा था। ऐसे जलते हुए विश्वास भरते रहते थे। ऐसा दृढ़-विश्वास था कि प्रभु अवश्य मिलेंगे। इसीलिए प्राण नहीं निकले। भक्तों का दुःख दूर करने वाले प्रभु उन दोनों का प्रेम देख द्रवित हो गये। अत्यन्त तपोमय प्रेम देखकर सबको फल देने वाले श्रीरामजी प्रकट हो गये। प्रभु की शोभा अपार थी। नील-कमल के समान श्यामल कोमल अङ्ग थे। मेघ, तमाल और कामदेव को भी लज्जित करने वाला वह सौन्दर्य था। पीताम्बर एवं वनमाला बड़ी शोभा दे रही थी। मुखचन्द्र तो सुन्दरता का सरोवर ही लग रहा था। मस्तक पर मुकुट और कानों में कुण्डल झलमला रहे थे। केशों की चमक बड़ी विचित्र थी। हाथों में धनुष-वाण था। उनके नेत्र करुणा से पूर्ण और सब दुःखों को दूर करने वाले थे। प्रभु का रूप देखकर दोनों

बड़े ही प्रफुल्लित हो उठे। गदगद होकर प्रभु के चरणों में लिपट गये। जैसे मरते को अमृत मिल गया हो अथवा दरिद्र को स्वर्ग का राज्य मिल गया हो। दोनों बारम्बार चरणों में पड़कर आनन्दाश्रु बहा रहे थे। उनका प्रेमरूपी चन्द्रमा उदय हुआ देख प्रभु भी आनन्दित हो रहे थे। तब शरणागतों का पालन करने वाले और मायारूपी नटी के नचाने वाले नटराज भगवान बोले–आपके हृदय में जो इच्छा हो, मुझसे वरदान माँग लो, मैं मोक्ष तक सब कुछ दे सकता हूँ। भगवान के कोमल वचन सुनकर दोनों पति-पत्नी हृदय में हर्षित होकर बोले कि आपका प्रेम हमारे हृदय में ऐसा छा रहा है कि अब मुक्ति का नाम सुनते ही मनका सब आनन्द चला जाता है। हमारी जो लालसा हो रही है कि किसी भी युग में एकबार हम आपकी बाल-लीला का दर्शन करें। क्योंकि जो आनन्द आपकी लीला में है, वह मुक्ति में नहीं है। 'ऐसा ही होगा' ऐसे कहकर फिर प्रभु मीठे वचन बोले कि–मैं आपके यहाँ अवतार धारण करके आपको बाल-लीला का सुख प्रदान करूँगा। शीघ्र ही ऐसा योग लगाऊँगा। ऐसे कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। दोनों पति-पत्नी प्रभु का दर्शन कर जन्म सफल बनाकर प्रभु के ध्यान में शरीर त्यागकर प्रभु के लोक में गये। बहुत समय वैकुण्ठ वास कर फिर प्रयाग में विप्रवंश में जन्म लिया। तीर्थराज प्रयाग की महिमा विश्व में विख्यात है। उसका दर्शन करते ही पापरूपी पशु भाग जाते हैं जहाँ पर संसार के तारने वाली त्रिलोकी की धारा बह रही है, जिसका सेवन-स्नान करने से वांछित फल मिलते हैं। उसी तीर्थ-राज में वही ब्राह्मण जिन्हें भगवान ने वरदान दिया था, उत्पन्न

हुए। वह परम भक्त तथा ध्यानी-योगी थे। उनका नाम श्रीपुण्यसदनजी था। उनकी पत्नी का नाम सुशीला था। वही परम पतिव्रता पत्नी उन्हें फिर प्राप्त हुईं। वह पण्डितजी बड़े दानी थे। घर में धन-सम्पत्ति भी बहुत थी। उनका भवन बहुत बड़ा था और भवन के आगे बड़ी सुन्दर फुलवाड़ी थी, जो स्वर्ग के नन्दनवन के समान शोभायमान थी। उसमें चारों ओर सुन्दर फूल प्रफुल्लित रहते थे। भ्रमर गुञ्जार करते तथा मयूर बोलते रहते थे। पक्षी कलरव करते तथा बाटिका के बीच में निर्मल सरोवर था। कमल-फूलों से पराग उड़ता रहता था। हंस कूंजते थे तथा उस सुखदायक उपवन में सदा वसन्तऋतु-सी रहती थी। उस भवन की अपार शोभा देखकर बड़ा आनन्द उत्पन्न होता था। वहाँ नित्य ही सन्तजन आकर निवास करते थे। सबकी पण्डित पुण्यसदनजी सेवा करते थे, बड़ी श्रद्धा से। और सब आनन्द तो थे, किन्तु उनके कोई पुत्र नहीं था। यही विचारकर वह यज्ञ-अनुष्ठान आदि करते रहते थे। सदा सन्तों की सेवा भी करते रहते थे। और नित्य श्रीवेणीमाधवजी की पूजा करते थे। एकदिन बड़ी विचित्र लीला हुई। माता सुशीला श्रीवेणीमाधवजी का दर्शन करने मन्दिर में गयी थीं। मन्दिर से सहसा दिव्य-वाणी हुई कि हे माता ! पुत्रवती हो। साथ ही उनके अंचल में एक माला तथा दाहिनावर्त शंख प्रकट हो गया। यह प्रसाद पाकर माता बड़ी आनन्दित हुईं भवन में आकर पतिदेव से सब बात सुना दी। सुनकर पण्डितजी के हृदय में अपार आनन्द हुआ। जैसे अन्धे को आँखें मिलने से बड़ा हर्ष होता है। फिर एकदिन माता ने देखा कि आकाश में

अद्भुत प्रकाश का पुञ्ज आ रहा है। वह तेज वेग से चलता हुआ पास आ गया। श्रीसुशीला माता भयभीत हो गईं। बेहोशी-सी होने लगी। वह प्रकाश मुख में समा गया। पश्चात् तत्काल ही फिर सावधान होकर उठ बैठीं। उसी दिन से उनके अंगों में अनुपम तेज दिखाई देने लगा। उधर विश्व के सभी ज्योतिषी, योगी, सिद्ध महात्मा अपने अनुभव से कहने लगे कि–निश्चय ही इस समय पृथ्वी पर कोई अनुभव अवतार होगा। भगवान के प्रकट होने के समय सर्वत्र अनेक सगुन दिखाई देने लगे। पृथ्वी आनन्दित हो उठीं। एकदिन सहसा सुखद मङ्गलमयी हवा चलने लगी। शुभ लग्नयोग आदि सब एकत्रित हो गये। प्रातः-काल का समय था। जो कि सन्तों को भजन-ध्यान के लिए सुखद होता है। उस समय पूर्व दिशा में लालिमा छा रही थी। दीनों पर करुणा करने वाले, प्रेम के चन्द्रमा सदृश सुन्दर अविनाशी आचार्य भगवान प्रकट हो गये। वे सन्त-समाज के शिरोमणि, संसारभय का नाश करने वाले, भक्ति के निधान, सुख के राशि, माया का मद दूर करने वाले, भक्तों का दुःख हरने वाले, पाखण्ड का नाश करने वाले, तत्व का प्रकाश करने वाले, तेज और तपस्या की खानि प्रभु प्रकट हुए। माता सुशीला ने अलौकिक सौन्दर्य वाले अपने पुत्र का मुखचन्द्र देखा—बड़े-बड़े कमल के समान नेत्र थे। मस्तक पर तिलक का चिह्न था। बिजली की तरह चमकते अङ्ग थे। अपार ज्योति जगमगा रही थी, मृदुल चरण और हस्त-कमल बड़े सुन्दर थे। वह अनुपम शोभामय बालक था। बालक मुखचन्द्र की चाँदनी से सारा भवन जगमगा रहा था। उधर प्रातःकाल का सूर्य भी उदय हो

रहा था। आकाश में देवता दुन्दुभि बजा रहे थे। दिव्य-ऋषि जय-जयकार करते हुए वेद उच्चारण कर रहे थे। यह अद्भुत लीला देखकर माता सुशीला आश्चर्य कर रही थीं वह बालक क्षणमात्र में अपने आप प्रकट हो गया। इनको पीड़ा का पता ही न लगा। आचार्यजी के प्रकट होते ही सारा देश आनन्दमय हो गया। सबके हृदय आपसे आप आनन्द से भर गये। संतरूपी कमलों को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य सदृश प्रभु प्रकट हुए। बालक का शब्द सुनकर आनन्द में मग्न होकर दासी और सखियाँ दौड़ पड़ीं। मङ्गलमय गीत गाती हुई आयीं तथा अनेकों मङ्गल वस्तुएँ लाने लगीं। पुत्र का जन्म सुनकर पंडित पुण्य-सदनजी के हृदय में आनन्द समाता नहीं था। शरीर की सुधि भूल गयी। फिर वे अनेक प्रकार के बाजे बजवाने लगे। पश्चात् जातकर्म आदि मङ्गल-कृत्य किये। उन्होंने खूब दान किये। उनके घर में धन भरा हुआ था। उन्होंने भवन को ध्वजा-पताका और फूल-माला, वंदनवार आदिकों से खूब सजाया। उनके घर खूब भीड़ हो गयी। अलौकिक सुन्दर बालक का जन्म सुनकर समुद्र के समान प्रयाग नगर निवासी उमड़-उमड़ कर आने लगे। उस महान् उत्सव में आनन्दरूपी वृक्ष प्रफुल्लित हो उठे।

बाललीला

सभी नर-नारियों को आनन्द में सुधि नहीं रही। इस प्रकार बहुत दिन शीघ्र ही बीत गये, तब समय जानकर पिताने शिशु का नामकरण करवाया। पुरोहित ने बालक का नाम रामानन्द रखा। बालक के लिए सोने के पालने में झुलाया गया। ब्राह्मणों के बहुत से छोटे-छोटे बालक भी वहाँ खेलने आ जाते

थे। माता सुशीला बालक का मुस्कानयुक्त मधुर मुखचन्द्र देख-देख दुलार कर रही थीं। करोड़ों काम के समान सुन्दर छवि थी। मुख-कमल पर केश भ्रमरों के समान थे। मस्तक पर तिलक का चिह्न तथा अनेकों दिव्य-चिह्न थे। नेत्र कमल के समान सुन्दर थे। चरणों में और हाथों में भगवान के दिव्य-चिह्न बड़े मनोहर लग रहे थे। अङ्गों की कान्ति ऐसी थी मानों दिव्य छवि का सरोवर भरा हो। रूप की माधुरी वर्णन नहीं की जा सकती। कौतुकमयी नित्य नई लीला करके, बाल-क्रीड़ारूपी अमृत की वर्षा करने लगे। अनेकों अलौकिक लीलाएँ करते थे जिनको देख देवता और मुनियों का मन भी मोह में पड़ जाता था। माता सुन्दर खिलौना ला-लाकर खेलने को देती थीं। और अनेकों ललित गीत गा-गाकर अपने लाल को प्रसन्न करती थीं। एक शुकपक्षी नित्यप्रति आता था, और राम-नाम उच्चारण कर बालक को सुनाया करता था। बालक वानर के खेल देख बहुत हर्षित होता था। कभी पास आ जाता फिर दूर भाग जाता था। ऐसे ही एक कौवा भी रोज आता और अपनी बोली सुना-सुनाकर खेल करता था। वह कौवा खिलौने लेकर उड़ जाता और फिर बालक के मचलने पर दे जाता था। यह अद्भुत बातें देखकर माता-पिता बड़ा आश्चर्य करते थे और बालक पर न्योछावर करके धन दान दिया करते थे। पश्चात् जब भादों के महीने में ऋषि पञ्चमी का दिन आया तब पिता ने 'अन्न-प्राशन' उत्सव का आयोजन किया। माता सुशीला चन्दन की चौकी पर पुत्र को लेकर बैठ गयीं और लोक-रीति करके सोने के थाल में नाना प्रकार के पकवान्न खीर, लड्डू आदि रखे गये। बालक रामानन्द ने खीर की ओर अँगुली उठायी। माता ने थोड़ी-सी खीर मुख में खिला दी। फिर माता और मिठाइयाँ

तथा व्यंजन नमकीन आदि खिलाने लगीं तो आप मचल गये, तनिक भी कोई चीज मुख में नहीं ली। उसी दिन से खीर ही आपका एकमात्र आहार बन गया और कोई भी चीज नहीं खाते थे। जीवन-भर केवल खीर ही आपने स्वीकार की और कोई भी वस्तु नहीं खायी। कुछ दिनों के पश्चात् सुन्दर मुहूर्त देखकर कान छेदने का उत्सव रखा गया। वेदविधि के अनुसार सब कार्य करके कान छेदने वाले को बुलाया गया। उसने कहा—बालक का मन बहलाओ। माता खीर खिलाने में और बातों में भुलाना चाहती थी। तब पुरोहितजी ने कहा—इस बालक को भुलाकर कान नहीं छेदा जा सकता, यह ज्ञानवान है। यह तेजवान बालक ऐसे अप्रसन्न हो जायगा तो सब काम बिगड़ जायगा। यह शब्द सुनते ही बालक रामानन्द ने आँखें बन्द करलीं और कान छेदने को इशारा किया। कान छेदने वाले ने प्रसन्न होकर कान छेदकर कर्णफूल पहना दिये। एकदिन पुण्यसदनजी आँखें बन्दकर पूजा कर रहे थे। बालक रामानन्दजी घुटनों से चलते हुए पिता के पास गये। और दाहिनावर्त शंख (जिसकी पूजा की जाती थी) उठा लिया और फूँक कर बजाने लगे। शंखध्वनि सुनकर पिता ने चकित हो नेत्र खोल दिये। अपने पुत्र की ऐसी ढिठाई देखकर कुछ तो हँसी आयी और कुछ क्रोध भी आया। उस शंख की पूजा होती थी। बोल उठे कि—क्यों इसे बजाया? यह दाहिनावर्त शङ्ख पूजा का है। यह सुनते ही बालक रामानन्द तुरंत भाग गये। और बच्चों के साथ मिलकर खेलने लगे। रात्रि में जब पिता सोये तो स्वप्न में देखा कि—साक्षात् श्रीवेणीमाधव भगवान प्रकट होकर कह रहे हैं कि अपने पुत्र को मेरे ही समान समझकर शंख उसे ही दे दो। उसे बजाने दो। यह सुनकर आश्चर्य करते हुए जगे और सुशीलादेवी को

स्वप्न की बात सुनायी। माता बड़ी प्रसन्न हुईं। प्रातःकाल बालक रामानन्द को बुलाकर शङ्ख देते हुए कहा—इसे बड़े प्रेम से बजाया करो। उस दिन से चार बार आप शङ्ख बजाने लगे। प्रातःकाल और दोपहर में तथा सन्ध्या में ऐसे ही सोते समय बजाकर सोते थे। उस शङ्ख की ऐसी मोहिनी ध्वनि थी कि—बालक, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी को महान् आनन्द मिलता था। जब रामानन्द पांच वर्ष के हुए, तब पण्डित पुण्यसदनजी ने विचार किया कि—अपने पुत्र को विद्वान् बनाना है। व्याकरण पढ़ाना है। इसलिए अभी से कुछ ग्रन्थों के श्लोक कण्ठ करायें। गीता आदि कण्ठ कराने लगे। सुनते ही यह सब श्लोक कण्ठ कर लेते थे। एक वर्ष में कई ग्रन्थ कण्ठ हो गये। बालक की महान् बुद्धि देखकर पण्डितों को बड़ा आश्चर्य हुआ। पश्चात् बाल्मीकि रामायण सम्पूर्ण कण्ठ करा दी। साथ ही अर्थ भी करने लग जाते थे। आश्चर्यजनक बुद्धि थी और वाणी में प्रभाव था। विचित्र अर्थ सुनकर बड़े-बड़े ज्ञानी भी चकित हो गये। प्रयाग में कुम्भपर्व का समय आया तो देश-देश के विद्वान् एकत्रित हुए। वहाँ विशाल सभा में अद्भुत विद्वान् एवं चमत्कारी बालक रामानन्द को आग्रहपूर्वक बुलाया गया। सभा में बालक ने मधुरकण्ठ से बाल्मीकि रामायण सुनायी। सात वर्ष के बालक के द्वारा सम्पूर्ण रामायण के श्लोक सुनकर सभी विस्मित हो गये। बालक की प्रसिद्धि सुनकर दर्शनार्थ जनता दौड़-दौड़कर आने लगी। पश्चात् बालक रामानन्द ने सभा में उपदेश दिया। जिसे सुन सब विद्वानों को बड़ा हर्ष हुआ। उपदेश में कहा—'जैसे कमल के दल पर पानी की बूंद लटकती है, वैसे ही यह जीवन पृथ्वी पर है। पता नहीं कब लुढ़क जाये। इसलिए कलियुग में नर-तन पाकर केवल वाद-विवाद में न खोकर भगवान की

भक्तिरूपी अमृत पीना चाहिए।' ऐसे उपदेश सुनकर सब कुमार रामानन्द की चरण-वन्दना करने लगे। साक्षात् श्रीरामजी के समान सुन्दर मुखचन्द्र की शोभा का दर्शन करते हुए माला-फूल चन्दन चढ़ाकर सब बार-बार आरती करने लगे।

यज्ञोपवीत

सर्वत्र यह विख्यात हो गया कि—यह बालक नहीं, कोई अवतार है। इस प्रकार आठ वर्ष के जब हुए तब माता के हृदय में लालसा हुई कि शीघ्र ही कुमार का यज्ञोपवीत किया जाय। माघ शुक्ल द्वादशी को शुभ मुहूर्त देखकर पिता ने यज्ञोपवीत उत्सव किया। बड़े-बड़े विद्वानों ने उस यज्ञ में वेदविधि से संस्कार प्रारम्भ किया। पलाश का डण्डा धारण करके काशी में पढ़ने चले। ब्राह्मणों ने कहा—बस, अब लौट आइये, विधि पूरी हो गई। लोकरीति यही है। पढ़ने जाने को कहकर काशी की ओर थोड़ी दूर चलकर सब बालक लौट आते हैं। ब्राह्मणों ने बहुत पुकारा, पर कुमार रामानन्द लौटे ही नहीं। और बोले मुझे झूंठी रीति अच्छी नहीं लगती। मैं तो अभी विद्या पढ़ने काशी जाऊँगा। यह सुनते ही सब विद्वानों के मुख मुरझा गये। किसी को कोई उत्तर देते नहीं बना। सबने बड़े-बड़े उपाय किये, पर कुमार लौटे ही नहीं, वैसे ही दण्ड लिए चलते चले गये। माता-पिता भी घर छोड़कर पीछे-पीछे चल दिये। मार्ग में सब समझाते-समझाते थक गये, पर कुमार नहीं लौटे। बालब्रह्मचारी कुमार रामानन्द प्रयाग से पैदल ही काशी आये। काशी में कुमार के मामा पं० ओंकार शर्मा नैय्यायिक रहते थे। पुण्यसदनजी कुमार को लेकर उन्हीं के गृह में आये। नैय्यायिकजी ने बड़ी प्रसन्नता से स्वागत-सत्कार किया। उनके गृह में धन-सम्पत्ति बहुत थी। खूब सेवा होने लगी। अपने मन के अनुकूल

कुमार विद्या पढ़ने लगे। मामाजी अत्यन्त प्रतिभाशाली बालक की बुद्धि का चमत्कार देख बड़े आनन्दित हो रहे थे।

अर्न्तध्यानलीला

कुमार ने थोड़े ही दिनों में चारों वेद और चारों उपवेद रहस्य समझते हुए कंठ कर लिए। काशी में सर्वत्र यह प्रसिद्धि हो गई कि—कोई ऐसा अवतारी बालक आया है जो महान् सुन्दर है तथा सुनते ही सब ग्रन्थ कंठ कर लेता है। लोगों की भीड़ लगने लगी। नित्यप्रति द्वार पर बहुत भीड़ होने से मामाजी ने श्रीरामानन्द को घर से बाहर निकलना बन्द कर दिया। एकदिन एक सिद्धदेवी आई। उसने कहा मैं 'कालीखोह' नामक स्थान से आई हूँ। वह बूढ़ी देवी तेजोमय रूपवाली थी तथा संस्कृत बोलती थी। वह भवन के भीतर आकर कुमार से बोली कि—मेरा प्रश्न सुनकर गूढ़भाव में उत्तर देना। हे कुमार ! कौन-सी स्त्री है जो बड़ी चंचल है और चित्त में छिपी रहती है ? वह नये-नये भोग-पदार्थ ला-लाकर पुरुष के आगे रखती है। परन्तु एकबार भी कोई उसे देख लेता है, तो वह सदा के लिए गुप्त हो जाती है। यह प्रश्न सुनकर रामानन्द ने उत्तर दिया—उसी स्त्री का नाम (माया) है। तब वृद्धा ने कहा—उससे ब्याह कर लो। तब कुमार ने कहा—उसकी तो इच्छा करते ही मुख काला होने लगता है। उससे ब्याह के समय मनुष्य लँगड़ा हो जाता है तथा वह माया अन्धी भी है। मैं तो सदा ब्रह्मचारी रहूँगा, और सारे जगत् का कल्याण करूँगा। वृद्धा देवी ने आशीर्वाद दिया कि—ऐसा ही होगा। और अपने स्थान पर चली गईं। यह देवी साक्षात् कालिका माता थीं। यह सम्वाद सुनकर पिता को बड़ा खेद हुआ। क्योंकि वे पुत्र के विवाह की तैयारी कर रहे थे। फिर कुछ सोचकर एक विप्रकन्या

से विवाह तै ही कर दिया। वह शांडिल्य गोत्र के प्रतिष्ठित विप्र की माधवी नाम की कन्या थी। वह बहुत ही सुन्दर सुशील थी। ब्याह तै करके फिर कुमार के पास कुमारिलभट्टकृत मीमांसा लेकर आये। उसमें लिखाया कि—एकबार विवाह अवश्य करना चाहिए। बिना विवाह किये मनुष्य को अनेकों अपराध लगते हैं। तब श्रीरामानन्द हँसकर बोले—पिताजी, यह तो कर्मकाण्ड की बात है। जिसे ज्ञान और भक्ति की सिद्धि बाल्यकाल में ही प्राप्त हो जाय, वह बालब्रह्मचारी रहकर तपोमय जीवन व्यतीत करे तो उसे कोई दोष नहीं होता। ऐसा कहकर चुप हो गये। पिता ने समझा कि वह हँसी में ऐसा कहकर चुप हो गये हैं। फिर 'मौनं सम्मतिलक्षणम्' चुप होना स्वीकार करना है। ऐसा विचार कर विवाह की तैयारी में लग गये। उन्हीं दिनों रात्रि में एकबार कन्या माधवी ने स्वप्न में देखा कि—कोई देवता कह रहा है कि रामानन्द के साथ विवाह करना अच्छा नहीं है। ब्याह होते ही तू विधवा हो जायगी। यह स्वप्न सुनकर उसके माता-पिता का सारा उत्साह नष्ट हो गया। स्वप्न पर विचार कर कन्या ने भी प्रतिज्ञा कर ली कि मैं अब जीवन-भर विवाह ही नहीं करूँगी। वह अन्नादि भोजन त्याग कर केवल लौंग खाकर कठिन तप करने लगी। उसके तप को देखकर सबको साक्षात् पार्वती के तप का स्मरण हो रहा था पश्चात् स्वप्न में फिर आज्ञा हुई कि—जिनसे तुम्हारा विवाह होने वाला था, उन्हीं से उपदेश लो तो शीघ्र तुम्हारा काम बन जायगा। प्रातःकाल अपने परिवार के साथ वह बालिका माधवी श्रीरामानन्दजी की शरण में आई और मन्त्र-दीक्षा माँगने लगी। श्रीरामानन्दजी ने दीक्षा देना स्वीकार नहीं किया। किन्तु, वह बार-बार विनय करती रही। सब लोग भी

चरणों में करवद्ध प्रार्थना करने लगे, तब आपने शंख बजाकर दीक्षा देना स्वीकार किया। उसके भाग्य खुल गये। श्रीरामानन्दजी ने और कुछ उपदेश नहीं दिया, केवल शंख बजा दिया। दिव्य शंखध्वनि के सुनते ही उसकी समाधि लग गई। समाधि में उसे दस जन्मों का स्मरण हो आया। फिर ध्यान से उठकर उसने कहा—मुझे साक्षात् भगवान से दिव्य-दीक्षा मिल गई, मैं अभी भगवान के धाम में जा रही हूँ। फिर दिव्य विमान प्रकट हुआ। वह दिव्यरूप धारण कर विमान पर बैठकर चली गई। इस अद्भुत घटना को देख सब जय-जय करने और श्रीरामानन्दजी के चरणों की वन्दना करते हुए उनके मुखकमल का दर्शन करने लगे। अपने पुत्र की यह महिमा देखकर पण्डित पुण्यसदनजी को बड़ा हर्ष हुआ। समस्त काशी में यही चर्चा होने लगी कि—एक बालक रामानन्द बड़ा प्रभावशाली प्रकट हुआ है। उसने शंख बजाकर एक बालिका को मोक्ष प्रदान किया। पूजा की सामग्री लेकर बहुत से नर-नारी दौड़े हुए आये और मोक्ष के लिए दीक्षा माँगने लगे। इधर माता सुशीला और पण्डित पुण्यसदनजी के मन में भी आई कि—हम भी दीक्षा ले लें। जैसे कपिलजी से उनके माता-पिता ने उपदेश लिया था। शीघ्र ही माता-पिता ने भी आकर प्रार्थना की कि—हमें भी दीक्षा दो। अपने माता-पिता आदि बड़ों की प्रार्थना सुन श्रीरामानन्दजी को बड़ी लज्जा हुई। सन्ध्या समय कमल जैसे अँधेरा आते देख सकुचा जाता है, वैसे ही लजाकर कुमार ने मुख से हाँ, या ना कुछ नहीं कहा। क्या करें, क्या न करें? ऐसे सोचने लगे। उस भीड़ के बीच में बैठे हुए आप धर्म-संकट में पड़ गये और सबके देखते-देखते श्रीरामानन्दजी वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। जैसे नेत्रों के सामने ही चन्द्रमा मेघों में छिप जाता है।

जैसे रास करते समय श्रीवृन्दावन में श्रीकृष्ण भगवान अर्न्तध्यान हो गये थे। जैसे वहाँ गोपियाँ विलाप करने लगी थीं, वैसी ही दशा यहाँ सबकी हो गई। माता-पिता तो मूच्छित होकर गिर पड़े। जैसे जल बिन मछली की दशा होती है, वही दशा सबकी हो गई। माता-पिता ने मूच्छित दशा में दिव्य परमधाम देखा। उस साकेतलोक में कुमार रामानन्द को दिव्य सिंहासन पर बैठे देखा, उनका श्यामल-वर्ण था और क्रीट-कुण्डल धारण किये हुए थे। वेद और बड़े-बड़े देवता, ऋषि उनकी स्तुति कर रहे थे। माता-पिता दर्शन कर आनन्द में भर गये। साथ ही पूर्व जन्मों का ज्ञान भी उन्हें हो गया। पश्चात् पूर्वजन्म में तो तप के समय दर्शन देकर भगवान ने वरदान दिया था, वह भी ज्ञात हो गया। मोह और माया का रूप भी समझ में आ गया। पश्चात् काशीपुरी का दर्शन हुआ और दोनों जाग उठे। जगकर माता-पिता ने देखा कि—चारों ओर सहस्रों नर-नारी, बालक, वृद्ध सब विलाप कर रहे हैं।

श्रीराम-यज्ञ

चारों ओर विपत्ति का समुद्र उमड़ता देख पुण्यसदनजी ने शरीर त्यागने की इच्छा की, किन्तु लोगोंने उन्हें समझाकर धैर्य बंधाया। उसी समय योगबल से वहाँ पर महर्षि श्रीराघवानंदजी आ गये। जैसे महान् रगड़ से आग उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही वहाँ घोर दुःख में वशिष्ठमुनि के अवतार श्रीराघवानन्दजी प्रकट हुए। समस्त नर-नारी महर्षि के चरणों में पड़कर रोने लगे अपना सब दुःख सुनाया। वे सर्वज्ञ ऋषि थे, समाधि लगाकर सब रहस्य जान लिया। और सबसे कहा—हमने सब जान लिया हे पुण्यसदनजी ! आपका पूर्व पुण्य महान् था। तुम्हें प्रभु ने वरदान दिया था कि—बारह वर्ष बाल-लीला का आनन्द देंगे

इसीलिए स्वयं भगवान तुम्हारे यहाँ प्रकट हुए थे। अब वह वरदान की अवधि बारह वर्ष पूर्ण हो गई। आप सबको इतना आनन्द देकर प्रभु अपने लोक को चले गये। यह सुन सब चरणों में पड़कर प्रार्थना करने लगे कि एकबार कुमार का दर्शन करा दीजिये। सबको अत्यन्त व्याकुल देख महर्षिके नेत्रों से भी करुणावश अश्रुधारा बह चली। पश्चात् महर्षि श्रीराघवानन्दजी ने कहा केवल एक उपाय है, ध्यान देकर सुनो। श्रीराम-यज्ञ की महिमा हमारे आचार्यों ने बहुत वर्णन की हैं। हमारी परम्परा से वह हमें प्राप्त है। वह श्रीराम-यज्ञ समस्त वांछित फलों को देने वाला है। उससे अवश्य ही भगवान श्रीरामजी प्रत्यक्ष प्रकट होंगे। यह सुनते ही सब आनन्दित हो उठे। जैसे रात्रि में मुरझे कमल सहसा खिल उठें, ऐसे ही सबके मन प्रफुल्लित होने लगे। मुहूर्त देखकर तथा स्थान सुधार कर एक हजार ब्राह्मण यज्ञ करने बैठे। एक सौ आठ कुण्ड हवन के लिए बनाये। यज्ञ का मण्डप बड़ा विशाल और विचित्र बनाया गया। यज्ञ-कुण्ड बड़े सुन्दर थे। श्रीराम-महायज्ञ हो रहा है—सुनकर दूर-दूर से ऋषिवृन्द आने लगे। श्रीराम-मंत्रराज से विधिवत् आहुति पड़ने लगीं। अरणिमन्थन द्वारा अग्नि प्रज्वलित हुई और यज्ञ का धुआं सर्वत्र फैलने लगा। स्वरसहित वेदध्वनि हो रही थी। उस ध्वनि से काशीपुरी गूंज उठी, अत्यन्त पवित्र घृत खीर आदि सामग्री मँगाई गई थी। श्रीरामजी के छः करोड़ मन्त्रों से आहुति पड़ने का अनुष्ठान था। आकाश में सुगन्धित धुयें का मेघ-सा उठ रहा था। यज्ञ की सुगन्ध देवलोक में पहुँची तो सहसा देवगण आनन्दित हो उठे। कलियुग में यज्ञ न होने से देवता दुःखी थे। आज शोकरहित हो गये। देवता विमानों में बैठकर श्रीराम-यज्ञ देखने तथा अपना-अपना भाग लेने गुप्तरूप से आने लगे।

श्रीहनुमानजी गुप्तरूप से यज्ञ की रक्षा कर रहे थे। सभी आने वाले संत, अथवा भिक्षुक जो भी मांगते वही भोजन आदि वस्तुयें दी जाती थीं। ब्राह्मण सभी सत्कार से आनन्दित थे। जब अन्तिम आहुति का समय आया तो बड़े प्रेम से विप्र सब खड़े होकर करुणापूर्ण आर्त्तवाणी से प्रभु को आवाहन करने लगे। स्वरयुक्त वेदध्वनि की गई।। ज्योंही अन्तिम आहुति यज्ञ में पड़ी कि सहसा भगवान श्रीरामानन्दजी प्रकट हो गये। सुन्दर सुकुमार श्रीरामानन्दजी को देखते ही सर्वत्र जय-जय ध्वनि होने लगी और लोग फूल बरसाने लगे। देवता आकाश से पुष्प गिराने लगे। बाजे बजने लगे। सब ब्राह्मण हाथ जोड़-कर स्तुति करने लगे और समस्त जगत् आनन्द में भर गया। सर्वत्र यह बात फैल गई कि—यज्ञ में भगवान श्रीरामानन्दजी प्रकट हो गये हैं। इधर महर्षि श्रीराघवानन्दजी के आनन्द का पार नहीं था। उनकी आंखें और हृदय सुख-समुद्र में मग्न थे। सब लोग एकटक श्रीरामानन्दजी के मुखचन्द्र का दर्शन करने लगे, जैसे चकोर चन्द्रमा को देखते हैं। नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे। आरती, पूजा आदि सब मङ्गल-कार्य होने लगे। तदन्तर श्रीराघवानन्दजी ने कहा—हे कुमार! आपने दर्शन देकर हमारे यज्ञ को सफल कर दिया। अब एक वरदान मैं और मांगना चाहता हूँ। वह यह कि—आप सैकड़ों वर्ष तक पृथ्वी पर रहकर धर्म-ग्लानि दूर करें। इस समय पृथ्वी पर यवनों का राज्य है, उनके अत्याचारों से पृथ्वी कांप रही है। अब अत्यन्त विपत्ति बढ़ गई है, जो सही नहीं जाती। चारों ओर गौओं का बध तथा ब्राह्मणों का बध होते देखकर हृदय में बड़ी पीड़ा होती है। श्रीराघवानन्दजी की प्रार्थना सुनकर भगवान श्रीरामानन्दजी को दया आ गई। आपने करुणावश

कह दिया—एवमस्तु, ऐसा ही करेंगे। यह सुनते ही जय-जय ध्वनि से आकाश गूंजने लगा। सबको बड़ा हर्ष हुआ। लाखों नर-नारी आनन्द में भर उछलने लगे। जैसे गर्मी में सरोवर का जल सूखने से मछलियां तड़प रही हों और सहसा वर्षा हो जाय। ऐसा सुख हुआ। पश्चात्—महर्षि से श्रीरामानन्दजी ने कहा—आपकी इच्छा से हम पृथ्वी पर रहेंगे, परन्तु साधुवेष में रहेंगे। इसलिए आप ही अब मुझे दीक्षा देकर वैष्णव-संन्यास प्रदान करें। क्योंकि जगत् में मर्यादा की रक्षा के लिए मुझे भी गुरु बनाना आवश्यक है। श्रीराघवानन्दजी ने कहा—आपकी बात मानना मेरा प्रधान कर्तव्य है। पश्चात् मंत्रराज श्रीराम-मंत्र की आपने दीक्षा दी। तथा विधिवत् पंच-संस्कार किये। उस समय श्रीरामानन्द कुमार का वैष्णव संन्यासी वेष बड़ा ही सुन्दर लग रहा था। मस्तक पर तिलक, हाथ में त्रिदण्ड और गले में तुलसी की कण्ठी थी। सब लोग जय-जय ध्वनि करने लगे। बारम्बार लोग आरती करके फूल-माला पहनाते थे। चरणों में प्रणाम कर भेंट-पूजा चढ़ाते थे। सबको ऐसा सुख हुआ जैसा त्रेता में श्रीराम-जन्म के समय अयोध्या में हुआ था। मानो सब कल्पवृक्ष की छाया में बैठे हों। इधर पिता पण्डित पुण्यसदनजी को कितना आनन्द था, यह कहा नहीं जा सकता। जैसे मरते को अमृत मिल गया हो। सब काशीवासी ऐसे हर्षित हुए जैसे चातकों को स्वांति की वर्षा मिल गई हो। परम सुन्दर श्रीरामानन्दजी ऐसे लग रहे थे मानो साक्षात् कामदेव को वैराग्य हो गया हो और उसने संन्यासी का वेष धारण किया हो। अपने प्रभाव से समस्त कार्य करके श्रीराघवानन्दजी अपने श्रीमठ में चले आये। उनका यश सारे संसार में छा गया। इधर समस्त नर-नारी श्रीरामानन्दाचार्य को ऐसे घेर कर खड़े

थे, जैसे करोड़ों चकोर चन्द्रमा को घेरे हों दर्शन करते तृप्त नहीं होते थे और श्रीपुण्यसदनजी के पुण्यों की बड़ाई करते थे। उस श्रीराम-यज्ञ की भस्म ले-लेकर लोग अपने भवनों में गये तथा यज्ञ में प्रभु के प्रकट होने का विचित्र चरित्र आपस में कहते थे। संसार में विख्यात हो गया कि यज्ञ में प्रकट होकर अब मुक्तिदाता भगवान ही साधु-वेष में आये हैं। पश्चात् पंचगङ्गा घाट श्रीरामानन्दाचार्य को पसन्द आया। गङ्गा तट था। वहाँ अत्यन्त शान्ति थी। दूसरे दिन आकर विराजमान हो गये तथा योगबल से वहाँ समाधि लगाकर ध्यान करने लगे। लोगों की भीड़ दर्शनार्थ वहाँ आने लगी। तब ब्राह्मणों ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति से वहीं एक सुन्दर गुफायुक्त कुटी बनवा दी। सबकी प्रार्थना से श्रीरामानन्दाचार्यजी उसी कुटी में विराजमान हुए। श्रीगङ्गाजी बहुत प्रसन्न हुईं। श्रीराम-मन्त्र का अनुष्ठान विधिवत् ध्यानयुक्त करने लगे। पिता के प्रेमाग्रह-वश दयामय प्रभु एक समय खीर-प्रसाद केवल लेते थे। आप कुटी के भीतर रहकर जप, तप, योग आदि में निमग्न रहते थे। कोई भी दर्शन नहीं पाता था। उनका शरीर दिव्य था, कोई दोष दूर करने को तप नहीं करते थे। केवल दूसरों को शिक्षा देने के लिए आपकी साधना थी। जैसा आचरण बड़े करते हैं, वैसा ही अनुकरण और लोग करते हैं।

शंख का चमत्कार

श्रीगङ्गा के तट पर आश्रम में जब श्रीरामानन्दाचार्यजी रहने लगे, तब पृथ्वी निर्भय हो गई। दिन-रात आचार्यश्री अखण्ड मंत्र-साधना में तन्मय रहते थे। कभी-कभी शंखध्वनि तो भीतर से करते थे, परन्तु दर्शन लोगों को नहीं होता था। सभी को दर्शन की लालसा थी। लोगों का प्रेम ऐसे बढ़ने लगा जब भी शंखध्वनि होती तो सुनने को जनता दौड़ती थी। वह ध्वनि बड़ी प्यारी लगती थी और उस ध्वनि को सुनते ही लोगों के रोग दूर हो जाते थे। एकदिन एक मृतक का शव लेकर जा रहे थे। उसी समय शंखध्वनि हुई तो वह मृतक जीवित हो उठा। यह चमत्कार सुनकर बड़ी भीड़ होने लगी। दूर-दूर से बूढ़े-बालक रोगी आने लगे। ध्वनि सुनते ही रोग दूर होकर वे सब नया-सा जीवन पाकर हँसते हुए घर जाते थे। कठिन-कठिन भयङ्कर रोग शंखध्वनि से दूर होते देख देश-देश के लाखों लोग आकर हर समय आश्रम को चारों ओर से घेरे रहते थे। जैसे धर्मराज के पास जीवों की भीड़ रहती है। जनता का अपार हो-हल्ला रात-दिन रहने लगा। ध्यान में आचार्य को बड़ा विक्षेप होने लगा, इसलिए आपने शंख बजाना ही बन्दकर दिया तो लोग बहुत दुःखी हुए। सब निराश होकर अपने घरों को लौटने लगे। जैसे ऊपर से फल आ रहा हो और बीच में ही कोई नष्ट करदे। यह समाचार सुनकर सब ब्राह्मणों ने सभा की। सबने मिलकर श्रीमठ में जाकर जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी से प्रार्थना की कि—शंखध्वनि करने के लिए आप श्रीरामानन्दजी को आज्ञा दीजिये, लोग बहुत दुःखी होकर लौटते हैं। श्रीराघवानन्दजी सबकी विनती पर प्रसन्न होकर

आये और कहने लगे—हे श्रीरामानन्दजी ! दूसरों के कल्याण के लिए शंखध्वनि कर दिया करो। जब तुम्हारे थोड़ा शंख बजने से ही लोगों के असाध्य रोग नष्ट हो जाते हैं तो परोपकार ऐसा तो करते रहो। देखो, सब देश-देश के रोगी जा रहे हैं। गुरुदेव के इन मीठे वचनों को सुनकर द्वार पर आके आपने विधिवत् पूजा की तथा आज्ञा माँगकर बोले—अच्छा, केवल एकबार प्रातःकाल नित्यप्रति शंख बजा दिया करूँगा। लोग हर समय आश्रम के चारों ओर न रहें, हमें विक्षेप होता है। यह सुनकर सब प्रसन्न होकर अपने घरों को गये। उस दिन से प्रातःकाल सूर्योदय के समय सब रोगी एकत्रित हो जाया करते थे। स्त्रियाँ गोद में बच्चों को लेकर दौड़ती हुई आती थीं। मरणासन्न रोगी अच्छे होकर जाते थे। एक धनवान रोगी आया उसका रोग तत्काल दूर हो गया। तो उसने आश्रम के पास बड़ा-भारी भण्डारा किया। अगणित सन्तों को उसने भोजन कराया। उन सब सन्तों ने महाराज से दर्शनार्थ प्रार्थना की। कृपा करके श्रीरामानन्दाचार्य ने दर्शन दिया। सबने आरती-पूजा की और जय-जय करने लगे। वह बड़ा-भारी उत्सव था। सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए। आचार्य की शोभा देखकर सब प्रफुल्लित हो रहे थे जय-जयकार करते हुए बारम्बार आरती कर फूल बरसाते थे।

कलियुग शरणागति

एकबार आधी रात के पश्चात् जब गङ्गा-स्नान करके आचार्यप्रभु आसन पर बैठे कि इस युग के राजा कलियुगजी मूर्तिमान होकर राजसी-वेष में आये। उनका काला रङ्ग था।

सुन्दर किशोर रूप में तपस्वी वेष में विराजे आचार्यश्री का दर्शन कर कलिराज बहुत प्रसन्न हुए। आचार्य के दिव्य-तेजोमय मुख-मण्डल को उन्होंने छिपे-छिपे दूर से देखा। उनके मन में विघ्न करने की इच्छा थी, किन्तु दर्शन से ही उनका मन पवित्र हो उठा और लज्जा आई। आचार्य के—तेज के कारण वहाँ वह आ नहीं सकते थे। उन्होंने देखा पंचपात्र अष्टधातु का है, उस सोने में वह सूक्ष्मरूप से आकर बैठ गये। आचमन करते समय आचार्य को तत्काल पता चल गया। आचार्य ने पूछा—तुम कौन हो ? पूजन में विघ्न करने क्यों आये हो ? कलियुग ने कहा—हे नाथ मेरा नाम कलिराज है, मैं इस समय का राजा हूँ। और भजन में विघ्न करना तो मेरा स्वभाव ही है। शुभ कार्यों के लिए तो मैं बाधक सदा ही रहता हूँ। पर मैं एक विनती करने आया हूँ। इस समय बस थोड़ी-सी बात है। हे नाथ ! आपके ही उत्पन्न किये तो चारों युग हैं। आपके चारों पुत्रों में, मैं सबसे छोटा हूँ। मेरे अवगुणों को देखकर आप क्रोध मत कीजिये। अन्य युगों में जो अनधिकारी थे, उन्हीं को मैंने अधिकारी बनाया है। जो छोटे थे, पहले उनको बड़ा बनाया है। आप भी तो दीनबन्धु हैं, सदा दीनों का उद्धार किया है, सो वही आपकी रीति पर मैं चल रहा हूँ। अब आप कृपा करके नीच-ऊँच सबको श्रीराम-मन्त्र का अधिकार प्रदान कर दीजिये ताकि संसार के सभी मानवों के लिए मुक्ति का द्वार खुल जाय। मेरे राज्य में वेद का प्रचार नहीं, ज्ञान और योग को मैं छीनने वाला हूँ अहंकार मेरा सेनापति है। उसी अहंकार ने विद्वानों के मन में डेरा डाल दिया है। मेरी आज्ञा से कामदेव फूलों का धनुष-वाण लेकर सब स्त्री-पुरुषों के हृदयों को बींध रहा है। पर स्त्रियों को माता मानने वाले थोड़े से रह गये हैं।

मैं वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा तोड़कर अनेकों अपराध कराकर लोगों के कर्म-धर्म की चोरी करता रहता हूँ। मेरे प्रयत्नों से सभी लोग अधर्म की नौका पर चढ़ गये हैं। कपटी लोगों ने ज्ञान के वस्त्र दिखाने के लिए ही पहन रखे हैं। कोई शुभ-साधना करता भी है तो दम्भ-ढोंग आगे आकर उसका पुण्य नष्ट कर देता है। मैंने सबकी नाक में नकेल कर रक्खी है। हाँ, केवल एक श्रीराम-नाम को मैं अवश्य मानता हूँ। श्रीब्रह्मा से लेकर सभी बड़े ऋषि-मुनि यह सब जानते हैं कि मेरे युग के बराबर कोई युग नहीं है, क्योंकि श्रीराम-नाम की महिमा मेरे ही राज्य में देखने में आती है। सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि जो मेरे बड़े भ्राता हैं, उनके राज्य में भवसागर से तरने में बड़ी कठिनता है। मुक्ति तो करोड़ों वर्ष तप करने पर भी मिलनी मुश्किल है। उन युगों में प्रायः लोग ऐश्वर्य के लिए या स्वर्ग-कामना से वन-वन में हजारों वर्ष तप किया करते थे। किन्तु हमारे युग में थोड़ा-सा ही परिश्रम नाम-जप के करने पर वही फल मिल जाता है। श्रीराम-नाम का जप कुछ दिन बराबर दिन-रात करने पर मुनियों द्वारा चाही हुई मुक्ति मिल जाती है और श्रीराम-चरित्र का भी जो प्रेम से निरन्तर गान करते हैं, वह पराभक्ति प्राप्त करते हैं। यही मेरे राज्य की नीति है। श्रीशङ्करजी भी श्रीराम–नाम का जप समाधि लगाकर करते हैं। उसी राम-नाम का बीज समस्त संसार में व्याप्त है। उसी राम-नाम की शक्ति से सभी शक्ति वाले हैं। उसी राम-नाम की ज्योति से सूर्य-चन्द्र प्रकाशित हैं। सारा-संसार ही श्रीराम-नाममय है। इसलिए ऐसे श्रीराम-मन्त्र को जपने का अधिकार सबको दीजिये। यह सुन आचार्य भगवान हँसने लगे। तो कलिराजने जय हो 'आचार्य भगवान की जय हो' जगद्गुरु यतिराज, श्रीरामरूप, कमललोचन, आपकी

जय हो। हे सनकादिकों का भ्रम दूर करने वाले हंसावतार, हे ज्ञानीजनों के शिरोमणि श्रीकपिलजी! आपकी जय हो। हे पुण्यसदनजी के प्रिय कुमार और देवी सुशीलाजी के सुपुत्र होने वाले परम कृपालु, भक्ति के बस होने वाले, सदा भक्तों के अनुकूल रहने वाले, दिव्य-ज्ञान के निधान, आनन्द के उद्गम स्थान आपकी जय हो। श्रीकलिराज ने अत्यन्त प्रेमयुक्त गद्गद् वाणी से जब विनय की तो आचार्य महाप्रभु ने प्रसन्न होकर कहा—ऐसे ही करेंगे। शरणागतवत्सलने प्रण की रक्षा के लिए शरणमें आये कलि पर पूर्ण कृपादृष्टि की। आचार्य बोले—यों तो यह बात बड़ी अनुचित है, क्योंकि शूद्र आदिकों को मन्त्र का अधिकार वेदों के मत से नहीं है। परन्तु तुम्हारी यह युक्ति मुझे बहुत प्रिय लगी है। वास्तव में श्रीराम-मन्त्र मोक्षदाता है। बिना परिश्रम के श्रीराम-मन्त्र जप द्वारा ही नर-नारी भवसागर से तर जायें, ऐसे परहित के लिए ही तुम्हारी प्रार्थना है। इसलिए मैं षड्क्षर श्रीराम-मंत्रके जप का अधिकार मोक्षार्थी भक्तों को प्रदान करूंगा। जिससे सभी वर्णों के लोग गति प्राप्त कर सकेंगे। अमृत समान श्रीमहाप्रभु के मधुर वचन सुनकर कलिराज का हृदयरूपी सरोवर उमड़ने लगा। वह बोला—हे नाथ! मैं महामलीन और पापी हूं, सदा सन्तों को दुःख देना, कपट करना मेरा काम है। आपने मेरी दुष्टता की ओर ध्यान नहीं दिया। मैंने आपकी कोई सेवा नहीं की, फिर भी आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार करली। हे नाथ! अब थोड़ी कृपा और करके मुझे श्रीराम-मंत्र की दीक्षा पहले प्रदान कीजिये। कलिराज की विनती मानकर प्रसन्न होकर आचार्य महाप्रभु ने षड्क्षर श्रीराम-मंत्र की दीक्षा प्रदान की। जो तारकमन्त्र माया को और कामादि दोषों को दूर करने वाला है तथा भवसिन्धु से पार करने में जहाज के समान है।

कलिराज ने शिष्य बन करके बड़ी श्रद्धा से चरणों में प्रणाम करते हुए कहा—हे श्रीगुरुदेव ! आप इसी प्रकार संसार का कल्याण करने की कृपा कीजियेगा। और आगे जो आपके सम्प्रदाय में शिष्य-परिकर होगा तथा जो भी आपके मत के अनुयायी होंगे उनकी मैं सदा सहायता करूँगा। आपके सम्प्रदाय के प्रचार में बाधा नहीं करूँगा। क्योंकि भूल करके भी गुरु का अपराध नहीं करना चाहिए। हाँ, कभी कुछ विघ्न करूँगा भी तो प्रकारान्तर से भविष्य में उनका हित करने की इच्छा से ही। कलिराज की यह बात सुनकर आचार्य मुस्कराने लगे। उसका क्रूर स्वभाव बदला देख उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। बारम्बार आचार्य भगवान को प्रणाम कर कलिराज अपने धाम में चले गये। आचार्य अपने आश्रम में आनन्द से भजन करने लगे।

राजकुमार का उद्धार

आचार्य की महिमा सुनकर एकदिन सुधौली के राजा आये। उनके राजकुमार को क्षयरोग हो गया था। उस राजकुमार की माता महारानी बहुत रोती हुई आईं और कहने लगीं—मेरे सात पुत्र हुए थे सभी मर गये। एक यह बचा था, इसको भी क्षयरोग हो गया है। यह भी मरने ही वाला है—वैद्यों ने जबाव दे दिया है। मैंने बड़े उत्साह से इसका विवाह किया था। अब बधू भी विधवा होने वाली है। इस बधू को आप सुहागदान दीजिये। मेरा यह पुत्र मरणासन्न पड़ा है, इसे बचाकर सब राज-परिवार की लाज रख लीजिये। उस महारानी का विलाप सुनकर आचार्य भगवान भीतर से अद्भुतवाणी बोले कि—अपने राजकुमार को जीवित गङ्गा में डुबा दो और सातवें दिन आकर इसे ले जाना। यह सुनते ही सबका मन मोह में पड़ गया। जीवित पुत्र को गङ्गा में कैसे बहा दें? परन्तु वह राजकुमार

बड़ा बुद्धिमान था। उसने सोचा—जब यह इतने सिद्ध पुरुष हैं तो इनकी आज्ञा से हमारा लाभ ही होगा। वैसे भी तो हम मरने वाले हैं, दो-चार दिन में। उसने स्वयं क्षत्रियोचित वीरता दिखाई। वह आप ही खिसकता हुआ गया और सबके मना करने पर भी गहरी गङ्गा में डूब गया। जब उसने गङ्गाजी में गोता लगाया, तो देवताओं द्वारा दिव्य-लोक में ले जाया गया। वहाँ उसका बड़ा सत्कार किया गया। अनेक प्रकार के आनन्दों का उपभोग करते हुए—उन लोकों की शोभा देखता रहा। उसका सब रोग-शोक दूर हो गया था। ऐसे सात दिन उसने बिताये जैसे किसी कंगाल को स्वर्ग का राज्य पाकर आनन्द हो। इधर माता दिन-रात रोती रहती थी। सारा-परिवार राजा के सहित दुःखी था। किसी को विश्वास नहीं था कि राजकुमार फिर मिलेगा। सबको निराशा थी। सब गङ्गाजल की ओर देखते रहते थे। सातवें दिन राजकुमार सबके देखते-देखते जल से निकलकर आया। उसका हृष्ट-पुष्ट शरीर था। राजकुमार को देखते ही सब लोग दौड़े और स्वस्थ देखकर बड़े आनन्दित हुए। आचार्य भगवान की बड़ी बड़ाई एवं पूजा करने लगे। राजा ने करोड़ों स्वर्ण मुद्राएँ खर्च कर बड़ा उत्सव किया। उस दिन से आचार्य भगवान की बात सब ऐसे अटल मानने लगे, जैसे आकाश में ध्रुवतारा अचल है। जगद्गुरु की महिमा अब बहुत बढ़ने लगी। पृथ्वी भी आनन्दित हुई और पंचतत्व जल, पवन आदि सब जगद्गुरु की आज्ञा की प्रतीक्षा में रहते थे।

रैदास-जन्म

भारत के सभी प्रान्तों के सन्तजन आचार्य की महिमा सुन दर्शनार्थ आने लगे। एकदिन श्रीगङ्गा महारानी स्वयं प्रकट

हुई। परम शोभामयी श्रीगङ्गाजीके हाथों में खीर से भरा हुआ रत्नों का थाल था। वह थाल आचार्य के सामने रखकर बोलीं आज मेरी यह सेवा स्वीकार कीजिये। तब आचार्य भगवान ने कहा—धन्य ! धन्य ! तीनों लोकों को तारने वाली देवेश्वरी श्रीगङ्गाजी ! आपने बड़ी कृपा करके आज हमारा स्मरण किया है। कहिये, आज किस कारण से ऐसी करुणा मुझ पर की है। तब माता श्रीगङ्गा महारानीजी प्रसन्न होकर बोलीं—हे महाराज आज ब्रह्मचारी का बनाया खीर-भोग आप मत पाइयेगा। वह शुद्ध नहीं है। ऐसे कहकर माता गङ्गा अदृश्य हो गईं। सर्वज्ञ जगद्गुरु सब रहस्य समझ गये। (भक्तों ने एक ब्राह्मण बालक को आचार्य की सेवा में रख दिया था। यह बड़ा भक्त और आचार्य का शिष्य था। बड़ी श्रद्धा से सेवा करता था। आचार्य केवल खीर ही पीते थे। दूध और चावल आदि केवल शुद्ध ब्राह्मणों के घर से भिक्षा लाने के लिए उसे आज्ञा दी थी। वही भिक्षा लाकर खीर बनाता था। उस दिन वह एक वैश्य के यहाँ से भिक्षा ले आया था। उस वैश्य के घर एक चमार ने दूध आदि रखवाया था। चमार के पुत्र नहीं था। उसे किसी ने राय दी कि श्रीरामानन्दाचार्यजी के भोजन में अन्न पहुँचा दो तो तुम्हारे पुत्र हो जायगा। चमार को वैश्य ने बहुत धन दिया। धन के लोभ से उसने ब्रह्मचारी को फुसलाकर आज वही भिक्षा दे दी थी। जब खीर बनाकर ब्रह्मचारी लाया तो महाराज ने कहा—आज तुम हमारी आज्ञा के विरुद्ध ब्राह्मण के घर से भिक्षा न लाकर एक वैश्य से भिक्षा लाये हो। उस वैश्य के यहाँ एक चर्मकार ने अन्न रखवाया था। उसके हृदय में पुत्र-प्राप्ति की इच्छा है। अब क्या किया जाय। विधाता के विधान से कुछ ऐसा ही विचित्र संयोग बना है—कि अब तुमको ही उस

चर्मकार के गृह में पुत्ररूप से जन्म लेना पड़ेगा। ऐसा ब्रह्मा ने पहले ही तुम्हारे भाग्य में लिख दिया है। यह बात कुछ अनहोनी नहीं हो रही है। यह सुनते ही ब्रह्मचारी थर-थर काँपने लगा। जैसे काल ने ग्रसने को मुख फैलाया हो। कुछ दिन के पश्चात् वह ब्रह्मचारी शरीर छोड़कर उसी चर्मकार के घर में पुत्र हुआ, किन्तु उसे पूर्वजन्म का सब स्मरण बना रहा। पहले ब्राह्मण था, इसलिए वह माता-पिता का दूध नहीं पीता था। तब आचार्य भगवान ने दिव्यरूप में आकाश मार्ग में जाकर उसे दर्शन दिया और आज्ञा दी कि गौ का दूध पियो। साथ ही कृपा करते हुए श्रीराम-मन्त्र का उपदेश देकर अकुण्ठ तप करने को कहा। वही आगे चलकर भक्त रैदास कहलाये, जिनका सुयश सारे संसार में विख्यात है। इस प्रकार लोक-हितार्थ आचार्य नित्य नई लीला करने लगे।

श्रीशिव-दर्शन

एकबार काशी में किसी कार्य से शृङ्गेरीमठ के शङ्कराचार्य श्रीभारततीर्थजी आये। उनके छोटे भ्राता श्रीमाधवाचार्यजी भी उनके साथ थे। काशी में जनता द्वारा उनका बड़ा-सत्कार हुआ। हाथियों पर सोने के सिंहासन थे, उन पर दोनों यतिराज बैठे थे। काशी की गलियों में विचरते समय उनकी जय बोली जाती थी। जब काशी में उन्होंने श्रीरामानन्दाचार्यजी के अलौकिक चरित्र सुने। तो उनके मन में दर्शन करने की लालसा उत्पन्न हुई। वे रात्रि में वेष बदलकर आये और आश्रम के द्वार पर बाहर बैठकर मन ही मन प्रार्थना करने लगे कि यदि अन्तर्यामी होंगे तो दर्शन अवश्य देंगे। अन्तर्यामी आचार्य भगवान ने भीतर से शंख बजा दिया। वह ध्वनि सुनते ही दोनों मूर्च्छित

हो गये और आनन्द-समुद्र में निमग्न होते हुए बड़ी विचित्र बातें देखीं। थोड़ी देर में दोनों सावधान हो उठे। ध्यान में आचार्य भगवान की महिमा प्रत्यक्ष देखी। उसी समय कृपा कर आप बाहर आये और बड़े प्रेम से दोनों को हृदय से लगाया। आचार्य भगवान का तेजोमय सुन्दर मुखचन्द्र देखकर दोनों ही चकोर की तरह एकटक रह गये। कृपा करके तब आचार्य भगवान ने कहा—आप अपने आचार्य-स्वरूप को सँभालिये, मुझे संकोच के समुद्र में मत डालिये। आप वेष बदलकर आये हैं, परन्तु मुझे आप अत्यन्त प्रिय हैं। तब शृङ्गेरीमठ के श्रीशंकराचार्यजी ने कहा–हम एक प्रश्न लेकर आपके पास आये थे कि आपने यह बालपन में ही संन्यास क्यों ले लिया है? किन्तु, ध्यान में आपकी प्रभुता हमने देख ली। अब हमारा सब सन्देह जाता रहा। आपका प्रेम और प्रताप देखकर हमारा हृदय शान्तिमय हो गया। अब आप ऐसी कृपा करें कि हमें परमानन्दरूप शान्ति प्राप्त हो। माया भ्रम की भ्रान्ति नष्ट होकर केवल एक ईश्वर ही रह जाय। तब श्रीरामानन्दाचार्यजी ने कहा—आप तो सदा आनन्दमय—अमृतमय हैं कर्त्तापन का अभिमान नष्ट होना ही संन्यास का स्वरूप है। माया में लगाने वाला तो अभिमान ही है। यह तब नष्ट होता है, जब अनुभव आवे। आपके भ्राता ने श्रीशङ्करजी की खूब सेवा की है, सो भगवान शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए हैं। शिवजी की कृपा से पूर्वजन्म का ज्ञान भी इनको प्राप्त हो गया है और ज्ञान की अग्नि में पाप भी भस्म हो चुके हैं। यह गुप्त बात बताकर उनका भ्रम दूर कर दिया। तब श्रीभारतीतीर्थजी ने कहा–आप तो अन्तर्यामी हैं। आपका दर्शन कर हमारे नेत्र सफल हो गये। धन्य-धन्य! हे निर्मलात्मा परमहंस प्रभो! आप सूर्य के समान सबको सुख देने वाले हैं। यह

मेरा भ्राता माधवाचार्य वेदों का भाष्य करना चाहता है। यह कार्य तो महर्षियों का है, इसलिए इसको आप महर्षि बना दीजिये। यह मीठी–वाणी सुनकर श्रीरामानन्दाचार्यजी मनो-हारिणी विमल-वाणी से बोले। समस्त देवता-भाव के आधीन रहते हैं और भगवान-भाव तथा प्रेमभाव के आधीन हैं। होने वाली (भावी) ने भाव से ही सबको भ्रमा रक्खा है। सच्चिदा-नन्दघन ब्रह्म प्रेमभावमय सुन्दर स्वरूप वाला है। जो प्रेमभाव से पूर्ण मानव है वही ब्रह्म की मूर्ति है। इसलिए अन्तरात्मा में शब्दरूपी अग्नि द्वारा समस्त कर्मों को जला देना चाहिए। तब उसकी प्रेममूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा होगी। साथ ही भगवान की भक्ति में एकरस निष्ठा उत्पन्न हो जायगी। वह ईश्वर की प्रेम-मूर्ति सबके हृदय में है। इसलिए मानसिक ध्यान में सदा प्रभु की पूजा सुलभ है। यह सुन्दर दुर्लभ अनुभव एवं वेदों का सार रहस्य हृदयङ्गम करके अपने भ्राता के सहित श्रीशङ्कराचार्यजी आचार्य के अद्भुत गुणों की परस्पर सराहना करते हुए चले गये। एकबार आचार्य भगवान् के मन में जब शिवरात्रि का समय आया तो श्रीविश्वनाथजी के दर्शनार्थ जाने की इच्छा हुई। आधी-रात के पश्चात् चले तो मार्ग में सर्वत्र सन्नाटा था। श्रीविश्वनाथजी के मन्दिर में जब पहुँचे तो द्वार बन्द हो चुका था। सब सो रहे थे, सोचा कि लौट चलें—उसी समय द्वार आप-से-आप खुल गया। मन्दिर में दिव्य-प्रकाश प्रकट हुआ। श्रीशिव-पार्वती ने प्रकट होकर दर्शन दिया। भगवान शङ्करजी ने श्रीरामानन्दाचार्यजी को बड़े प्रेम से हृदय से लगाया और बोले—आपने सदा मुझसे अत्यन्त प्रेम किया है, इसके साक्षी सभी प्रेमी उपासक हैं और प्रेम-प्रण को रखकर ही आज दर्शन देने आये हो। फिर शिवजी ने दिव्य-आसन पर अपने पास बिठा

लिया। उस समय काशी का वह विश्वनाथ मन्दिर दिव्य-कैलाश ही मानो बन गया था। दोनों ही श्रीराम-मन्त्र के विज्ञानी थे, दोनों ही श्रीराम-नाम के द्वारा महान् मुक्ति के दानी थे। एक तो मरने के बाद मुक्ति देने वाले थे, एक जीवित दशा में ही मुक्ति देते थे। श्रीपार्वतीजी को उस समय बड़ा हर्ष हो रहा था। उन्होंने खीर से भरा दिव्य-थाल प्रकट कर बड़े प्रेम से आग्रह करके खिलाया। श्रीशङ्करजी ने आचार्य की बड़ी बड़ाई की। तब आचार्य भगवान ने सुअवसर जानकर कलियुग के आने और सबको श्रीराम-मन्त्र देने की प्रार्थना करने आदि की सब बातें सुना दीं। सुनकर श्रीशिवजी ने हँसकर कहा—कलियुग है तो बड़ा कपटी, परन्तु उसको श्रीराम-नाम में बड़ी-भारी निष्ठा है। यही गुण उसमें बहुत अच्छा है। आपने उसे उपदेश-दीक्षा देकर कृतार्थ कर दिया। इससे आपका देवलोक में सुयश गाया जा रहा है। पहले भी कलियुग ने वेदव्यासजी से दीक्षा लेनी चाही थी, उसके माँगने पर व्यासजी ने दीक्षा नहीं दी। क्योंकि उसे वे कपटी और सज्जनों को कष्ट देने वाला जान चुके थे। परन्तु आप अत्यन्त दयालु हैं। शील और करुणा के समुद्र हैं। अधमों को तारने वाले परम कृपा के भण्डार हैं। शरणागत भक्तों की रक्षा करने वाले हैं। आप तो सबको समान सुख देने वाले हैं। जैसे गङ्गाजी नीच-ऊँच का विचार नहीं करतीं, तैसे ही आप गुण-दोष नहीं देखते। मैं श्रीराम-नाम का माहात्म्य जानता हूँ। इसलिए कलियुग ने जो आपसे विनय की थी, वह उचित ही है श्रीरामानन्दाचार्यजी, आप धन्य हैं। आप तो पतितों को पवित्र करने के लिए भूमि पर आये हैं। श्रीशिवजी के प्रेम और प्रशंसायुक्त वचन सुनकर—मन ही मन श्रीआचार्य भगवान लज्जित हो रहे थे। जैसे फलों के बोझ से वृक्ष झुक

जाते हैं। पश्चात् श्रीशिवजी ने कहा—जो कोई संसार में एकबार राम-नाम लेता है, मैं उसे तीन बार प्रणाम करता हूँ। किन्तु, आप तो रामानन्द ही हैं, रामरूप हैं और राम में ही रमण करते हैं। अब आप ही बताइये—मैं कितनी बार आपको प्रणाम करके सत्कार करूँ। रात-दिन आप तो तुरीयातीत दशा में रहते हैं। और पानी की तरह सदा ही द्रवित रहते हैं। जैसे जल कभी कठोर होता ही नहीं, ऐसे ही आप मृदुल हैं। कहाँ तक बड़ाई करूँ। आपने पृथ्वी पर लीला के लिए अवतार लिया है। भक्तों के लिए यह साधु-वेष बनाया है। पश्चात् श्रीआचार्य भगवान श्रीशङ्करजी से मिल-भेंटकर विदा लेकर चल पड़े। चलते समय आनन्द में भरके शंख बजा दिया और आकाश-मार्ग से क्षण-मात्र में अपने आश्रम पर आ गये। शंखध्वनि सुनकर लोग जाग पड़े। पुजारी मन्दिर में आकर देखने लगे। मन्दिर का द्वार खुला देखकर लोग चोर-चोर कहकर चिल्लाने लगे। परन्तु वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। मन्दिर में सभी वस्तुयें भी ज्यों की त्यों रखी थीं। सभी इस बात पर आश्चर्य कर रहे थे। कि ताला तो टूटा नहीं, फिर मन्दिर का द्वार खुल कैसे गया? बार-बार विचार करते थे, पर समझ में नहीं आता था। कोई कहता था—कोई देवता आया होगा, दर्शन करने। कोई कहता था, शिवरात्रि में रात-भर जागना चाहिए, हम लोग सो गये थे सो शङ्करजी अप्रसन्न हो गये हैं। द्वार खोलकर चेतावनी दी है कि सब रात जागरण किया करें। ऐसा अपना-अपना अनुमान सब बताने लगे। कोई बोला—शंख की ध्वनि अब तक मन्दिर में गूंज रही है। यह शंख किसने बजाया? कुछ लोग कहने लगे ऐसा शंख बजाने वाले तो श्रीरामानन्दाचार्यजी ही हैं। उन्होंने आकर यही लीला की होगी। अब ब्रह्माजी का अवतार पृथ्वी

पर जैसे हुआ था, वह चरित्र सुनिये ।

श्रीअनन्तानन्द-चरित्र

पुष्कर नामक एक तीर्थ प्रसिद्ध है। वहीं ब्राह्मण वंश में बारह सौ सत्तर (१२७०) सम्वत् में कार्तिक पूर्णिमा शनिवार को आपका जन्म हुआ था। उनका सुन्दर नाम पं० श्रीअभिराम शर्मा था। वे वेद के विद्वान् थे और विद्वानों द्वारा सम्मानित थे। जब यवनों का आतङ्क बढ़ा तो वे घबड़ा कर काशी में सुख की नींद सोने आये। वह श्रीविश्वनाथजी के मन्दिर में रहकर नियमपूर्वक व्रत और जप करते थे। उन्होंने भी शिवरात्रि में वह शंखध्वनि सुनी थी और श्रीरामानन्दाचार्यजी के द्वारा की हुई शंखध्वनि से उनको—समाधि लग गई थी। समाधि में पूर्वजन्म का ज्ञान हो गया था। उनको आचार्य भगवान के चरणों में भक्ति हुई और वह मायारूपी भ्रम को जीतकर दर्शनार्थ आश्रम पर आये। किन्तु दर्शन में अत्यन्त कठिनता थी। दिन-रात वहीं द्वार पर पड़े आचार्य के गुण गाने लगे, और दर्शनार्थ प्रार्थना भी करते थे। एकदिन द्वार खोलकर आचार्य भगवान ने दर्शन दिया तो हृदय आनन्द से भर गया। जैसे दरिद्र को इन्द्र बना दिया गया हो अथवा तपस्वी के सामने तपस्या का फल आ गया हो। चरणों में गिर पड़े। प्रेम के अन्दर में तन की सुधि नहीं थी। तब आचार्य महाप्रभु ने हँसकर कहा—अपनी मनोकामना शीघ्र बताइये। ऐसे उदार दानी प्रभु की वाणी सुनकर श्रीअभिराम शर्मा ने प्रार्थना की—प्रभो! अपने चरण-कमलों की अखण्ड सेवा दीजिये और मेरे हृदय का अज्ञान एवं कामनाएँ नष्ट कर दीजिये। यह सुन्दर प्रार्थना सुनकर आचार्य भगवान ने आज्ञा दी—नित्य आश्रम में सफाई किया करो। आज्ञा पाकर उसी

दिन से आश्रम में नित्य झाड़ू लगाने लगे। इतने बड़े विद्वान् होकर झाड़ू लगाना—गुरु आज्ञारूपी तलवार की धार पर चलना था। अपने सुख त्यागकर झाड़ू लगाते थे। प्रातःकाल रोज आश्रम पर आकर सफाई करके कुछ देर प्रार्थना सुनाया करते थे कि मुझे दीक्षा दी जाय। इस प्रकार कुछ दिन सेवा करने पर आचार्य प्रसन्न हो गये, प्रेमपूर्वक दीक्षा दे दी और श्रीअनन्तानन्द नाम रक्खा। मन्त्र-दीक्षा मिलते ही विचित्र दशा हो गई। श्रीराम-मन्त्ररूपी सूर्य का प्रकाश प्रकट हुआ। आँखों में अलौकिक दृश्य दीखने लगा। सारा संसार ही प्रकाश का सा लगने लगा। एक समय अर्द्धरात्रि में जबकि चारों ओर चन्द्रमा की चाँदनी छाई हुई थी। श्रीअनन्तानन्दजी श्रीराम-मन्त्र का जप करते हुए श्रीरामजी का ध्यान करने लगे। सर्वत्र उन्हें ब्रह्मानन्द का समुद्र-सा लहराता हुआ अनुभव होने लगा। उस सुन्दर शान्त, शब्दरहित रात्रि में प्रेम में निमग्न हो प्रभु का ध्यान कर गुरुदेव की महिमा सराहने लगे। उसी समय मायादेवी प्रत्यक्ष सुन्दर युवती रूप बनाकर इनकी परीक्षा लेने आईं। चन्द्रमा, बिजली या सोने के समान उसके गोरे अङ्ग थे। मनोहर वस्त्राभूषण थे और किशोर अवस्था थी। सुन्दर नवीन फूलों की माला पहने थीं। अलकें भौंरों की सी काली थीं। रति भी उसका रूप देख लज्जित होती थी। वह माया मूर्तिमान हो जब सामने आई तो श्रीअनन्तानन्दजी चकित हो गये। वह अनेक हाव-भावों से रिझाने लगी। किन्तु फिर भी इनके मनमें तनिक भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। उल्टे इन्होंने उसे माता कहकर उसके चरणों में मस्तक रख दिया। क्योंकि सच्चे गुरु का चेला भी सच्चा होता है। वह अकेला ही सारे जगत् को जीतने में समर्थ होता है। तब मायादेवी लज्जित होकर चली गईं। अनेकों

फन्दे चलाये, पर सब व्यर्थ हो गये । इस प्रकार अनेकों परीक्षायें लेकर आचार्य भगवान ने अन्तरङ्ग साधना की शिक्षा दी और अपनी भोजन आदि की सेवा सौंप दी । आश्रम के समस्त कार्यों का अधिकार भी दे दिया । आश्रम के द्वार पर रहकर आचार्य की रुचि के अनुसार आये हुए लोगों का स्वागत-सत्कार करने लगे । इनके द्वारा ही सबका परिचय पाकर यथायोग्य सब पर प्रभु कृपा करते थे ।

दिव्य-लीलाएँ

श्रीअनन्तानन्दजी के हृदय में तनिक भी अहंकार नहीं था । आचार्य की आज्ञा से किसी-किसी को आप भी उपदेश दे देते थे । एकबार सिसौदिया कुल की राजकुमारी अपने राज-परिवार के साथ आई । उसको अपने पूर्वजन्म का ज्ञान था । वह अपने पूर्वजन्म के पति का पता पूछना चाहती । उसे अपने जन्म की तो याद थी, परन्तु पति कहाँ जन्मा है—इसका उसे ज्ञान नहीं था । सब महात्माओं के पास खोजकर हताश होकर आचार्य-प्रभु का नाम सुनकर यहाँ आई । उसको अत्यन्त दुःखी देखकर उसके पति का पता बता दिया । आचार्य भगवान ने बताया कि—वह राजपूताने के अमुक ग्राम में पुष्करसिंह नाम से क्षत्रिय कुल में ही जन्मा है । उसका पता पाकर राजकुमारी प्रसन्न होकर गई और उसी के साथ बड़े समारोह के साथ उसका विवाह हुआ । फिर थोड़े दिनों में ही दोनों को संसार से वैराग्य हो गया, और आचार्य भगवान से मंत्र-दीक्षा लेने की लालसा हुई । दोनों ने आकर प्रार्थना करके दीक्षा ग्रहण की । वे दोनों ही बड़े भक्त हुए । वर्षाऋतु में एकबार काशी के प्रसिद्ध धनवान पंडित श्रीगंगारामजी स्नान करते समय गङ्गा में पैर खिसकने से डूब

गये। उनका नौकर उन्हें निकालने दौड़ा तो वह भी भँवर में पड़ गया। घाट पर सब लोग इकट्ठे रोते हुए हाय-हाय कर रहे थे। किसी की समझ में नहीं आता था कि क्या करें ? उसी समय वर्षा होने लगी। लोग भागने लगे। तब एक बालक वहाँ न जाने कहाँ से आ गया और जय श्रीरामानन्द की कहते हुए गङ्गा की प्रबल धारा के ऊपर चलता हुआ चला गया और दोनों को पकड़कर बाहर ले आया। उस बालक ने कहा—मुझे श्रीरामानन्दजी के नाम में विश्वास है। मैं उनके नाम के बल पर जल पर चला गया और उन्हीं की शक्ति से दोनों को निकाल लाया। श्रीरामानन्द नाम की महिमा से अपनी जान बची जानकर वह महा-धनवान पण्डित गंगारामजी आश्रम पर आये। वह—'जय श्रीरामानन्द भगवान' ऐसे कीर्तन करते हुए आश्रम पर अपने प्राण बचाने की कथा सुनाने लगे। कहने लगे-इस नाम के प्रताप से ही मेरे जीवन की रक्षा हुई है। उसने भली प्रकार आचार्य की पूजा की और वैराग्य प्रबल होने से जगत् त्यागकर आचार्य की आज्ञानुसार साधना की। सब सिद्धियाँ प्राप्त करलीं। फिर श्रीरामानन्द की महिमा गाते हुए भक्ति का प्रचार करने लगे। एकबार आश्रम पर एक श्रीपद्मेश्वर स्वामी आये। यह गीता के महान् विद्वान् थे और काशी में रहकर साधना करते थे। आचार्य भगवान के प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा हुई, और आश्रम पर आये। बड़ी चाह से दीक्षा दी। श्रीराम-मंत्र का अनुष्ठान किया। गुरुदेव की कृपा से सिद्धि प्राप्त हो गई। पांच ही दिन जप करने पर दिव्य-दृष्टि हो गई। गुरुदेव का स्वरूप पहिचान कर, एकदिन आकर बड़ी विचित्र स्तुति करने लगे। बड़े विलक्षण भावों से पूर्ण स्तुति की, जिसे सुनकर आचार्य भगवान ने शंख बजाकर कृपा की। श्रीपद्मेश्वर

स्वामी को समाधि लग गई। महान् आनन्द उमड़ने लगा। दिव्य-साकेतलोक का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। प्रकृति-मण्डल से परे वह परमधाम परम सुन्दर था। वहाँ की शोभा अनन्त थी। वहाँ विचित्र प्रकाश छाया हुआ था। वहाँ का दृश्य वर्णन नहीं हो सकता। सुन्दर फुलवाड़ियाँ थीं, वृक्ष-लता मनको हरणकर रहे थे। साथ ही वहाँ के राजाधिराज श्रीसीतारामजी का चारों भाइयों और भक्तों के सहित दर्शन हुआ। करोड़ों लक्ष्मी वहाँ खेल रही थीं। आनन्द का समुद्र था, वह धाम आश्चर्यमय था। ध्यान में यह दर्शन करके जागे। मानों बहुत वर्षों तक लीला-दर्शन कर उठे हों। आनन्द का अनुभव करते हुए शंखध्वनि की बड़ाई करने लगे। श्रीपद्मेश्वर स्वामी कहने लगे—यह शंखध्वनि कैसी है? जैसे श्रीरामजी के धनुष की टङ्कार और श्रीकृष्ण भगवान की वंशीध्वनि। वैसीही यह श्रीरामानन्दाचार्य-जी की शंखध्वनि दिव्य-शक्ति से परिपूर्ण है। फिर रात्रि में वह अपने स्थान पर गये। समाधि लगाई। समाधि में योग-मूर्च्छा में गति-रहित हो गये! चौरासी के जाल में पड़कर विचित्र दशा हो गई। ऊपर की ओर गति में भटक गये। तब घबड़ाने लगे। आनन्द-कमल मुरझाने लगा। उस समय स्वयं श्रीरामानन्दाचार्यजी स्वयं दौड़े। सर्वज्ञता से सब जानकर आकाश मार्ग से वहाँ पहुँचे और अपने शिष्य की दशा सुधारने लगे। जैसे मन्त्र के आकर्षण से देवता खिचे चले आते हैं, वैसे ही आचार्य भगवान आ पहुँचे और खेचरी मुद्रा सुधार कर हृदय की आँखें खोल दीं। वे समाधि के भीतर ही मरकर मानो जी गये और आनन्द से गगन-गुफा में विचरने लगे। उन्हें श्रीराम-मंत्र की महिमा का दिव्य-दर्शन कराया। मंत्र की प्रत्येक

कला में ऐश्वर्य बरस रहा था। पश्चात् आचार्य भगवान अपने आश्रम पर आ गये। सहसा आकाश की ओर उनकी दृष्टि गई। देखा—एक योगियों का मण्डल आकाश से उतरता आ रहा है—जैसे तारे आ रहे हों। वह दिव्य-सिद्ध महर्षियों का मण्डल चमकता हुआ आप ही के पास आ गया। चारों ओर से घेरकर प्रणाम करके वे सिद्ध बोले—हे प्रभो! भक्तराज प्रह्लादजी का पृथ्वी पर अवतार होना चाहता है किन्तु, उनको गर्भ में धारण करने योग्य कोई माता पृथ्वी पर नहीं दीख रही है। यह सुनकर आचार्य भगवान ने हँसकर कहा—उनकी माता के लिए कोई चिन्ता मत करो। उनका जन्म सरोवर में एक कमल से ही हो जायगा। जैसे कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे। यह सुन प्रसन्न होकर सिद्धगण चले गये और आचार्य भगवान आश्रम में विराजमान हुए। प्रातःकाल एक श्रीकृष्ण-उपासिका कन्या आई। वह साक्षात् श्रीकृष्ण-विरह की मूर्ति मालूम होती थी। वह दिन-रात श्रीकृष्ण नाम रटती और दर्शनार्थ व्याकुल हो रोती थी। उसने आकर चरणों में पड़ प्रार्थना की कि—मुझे श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन करा दीजिये। उनके बिना अब रहा नहीं जाता। आचार्य भगवान ने कृपा कर शङ्ख बजा दिया। वह तत्काल मूच्छित हो गई। समाधिमें उसे भगवान श्रीकृष्ण ने दर्शन दिया और पूर्वजन्म का उसे ज्ञान हो गया। जब वह उठी तो कहने लगी—मुझे अपना चरणामृत देने की कृपा कीजिये। हठ करने लगी। आचार्य भगवान को दया आ गई। चरणामृत दे दिया। चरणामृत पीते ही उसके अञ्चल से अग्नि की ज्वाला उठी और एक क्षण में भस्म होकर दिव्य-रूप हो गई। उसके लिए एक दिव्य-विमान आया, और वह दिव्य-लक्ष्मीजी का सा रूप धारण कर परमधाम को चली गई। एकदिन एक

विचित्र सन्त आये। वह पैरों में नूपुर बांधे हुए नाचते थे। वे महान् ज्ञानी थे। ज्ञान की तरङ्ग में वह व्यङ्ग वचन बोलते थे। कि—घर में, वन में, सोते में, जागते में चारों ओर मुझे आप सर्वत्र दिखाई देते हैं। परन्तु, यहाँ आप लुके-छिपे परदे में क्यों बैठे हैं। आप सिंह की तरह निकलकर सामने आइये और दर्शन दीजिये। आश्रम पर बहुत से महात्मा विराजमान थे। सब आश्चर्य कर रहे थे उसकी टेढ़ी-टेढ़ी बातों पर। पश्चात् भीतर से आचार्य भगवान ने आज्ञा दी कि—पहले अपना मुख दर्पण में देखो—तब दर्शन करना। ऐसे कहकर शंख बजा दिया। वह पृथ्वी पर लोटने लगा और आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। वह ध्यान-समाधि में लीन हो गया। उसी समय एक पुरोहित आया। उसने कहा—मैं दिव्यदीप का रहने वाला हूँ। हाथों में उसके आग का गोला था। वह घमण्ड में कह रहा था—मैं तन, मन से निष्पाप हूँ, देखो मेरा हाथ नहीं जलता। अग्निदेव इसके साक्षी हैं। अब आप परमार्थ की परीक्षा क्या है? यह रहस्य बताइये तथा ऐसी नई बात बताओ, जो कभी नहीं सुनी हो। तब आचार्य भगवान ने भीतर से आज्ञा की कि—तुम नीरस भाव वाले हो, निष्पापपन का व्यर्थ अभिमान कहते हो। परमार्थ को तो वही पहिचान सकता है जो गर्व त्यागकर हृदय में दीनता धारण करे। इस प्रकार अहङ्कार के कारण ही तो जगत् के जाल में जीव पड़ा है। तुमने अहङ्काररूपी सर्प बड़े प्रेम से पाल रक्खा है। कोई बड़ा-भारी तप करके बड़ी सिद्धि प्राप्त करले, परन्तु बिना दीनतापूर्ण भक्ति के अहङ्काररूपी सर्प उसे खा जायेगा। जब तक हृदय में घमण्ड का लेशमात्र भी रहेगा, तब तक परमार्थ-पथ में प्रवेश नहीं होगा। और जो कभी नहीं सुनी सो बात सुनो कि—दिव्य-रस के बीच में जल नहीं मिल सकता। और सूक्ष्म-

विद्या चन्द्रमा में है। त्रिकुटीरूपी सन्दूक की ताली है चित्त। और तू श्रीकरोवियाजी का भेजा हुआ आया है। वह पश्चिम के हिन्दुओं के गुरु हैं। वह अग्निपूजक हैं। उन्होंने अपनी सिद्धि के बल से यहाँ भेजा है। इसलिए अब अपने हित की बात सुन ले। तू जाके उस मस्त महात्मा के चरणों में पड़ जा। प्रेम में मग्न वह लोट रहा है। नूपुर बाँधकर नाच रहा है। वह हृदय से निरभिमानी ज्ञानी है। वही सच्चा निष्पाप है। तब उसे श्रद्धा हुई। वह उठकर मस्त साधु के चरणों में लिपट गया। वह साधु भी बड़े प्रेम से उठ खड़ा हुआ और उसके हाथ से आग का गोला लेकर 'जय श्रीरामानन्द की' कहकर निगल गया। उस पुरोहित का अभिमान चूर-चूर हो गया। उसे तो यही सिद्धि थी। कि आग के गोले से हाथ नहीं जलता था पर यह साधु तो आग के गोले को खा ही गया। फिर वह मस्त साधु पुरोहित को गले लगाकर नाचने लगा। दोनों की आँखों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। दोनों को आचार्य भगवान ने प्रेमाभक्ति प्रदान कर दी। दोनों कुटी के द्वार पर दर्शनार्थ प्रार्थना करने लगे कि—पर्दा हटाकर दर्शन दीजिये। आचार्य भगवान ने कृपा करके द्वार खोल दिया और दोनों की अविद्या दूर कर दी। दोनों ही प्रफुल्लित होकर अपने स्थानों को चले गये। एकदिन एक मुसलमान कन्या आई। वह बड़े ज्ञान की-सी बात करती थी कि—जो जानते हैं वह बक-बक नहीं करते, और जो बकते रहते हैं वह जानते नहीं। उस आश्रम में बहुत से महात्मा श्रीअनन्तानन्दजी के पास बैठे सत्सङ्ग कर रहे थे। उन सन्तों को देख क्रोधित-सी हो घूरने लगी। उसने अपनी सिद्धि से सबकी सुनने की शक्ति हरण कर ली। वे कान रहते हुए भी सुन नहीं सकते थे। तब वह बोली—हे मौला! हे जगत् के

महबूब, सबके मालिक, इस लोक और परलोक के स्वामी, मैं यासीनजी का संदेशा लाई हूँ। वह पश्चिम देश में एक जङ्गल में रहते हैं। उनको सभी सिद्धियाँ मिल चुकी हैं। फिर भी उनको शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है। अब वह मुक्ति-मार्ग को पहचानने वाली ज्योति चाहते हैं। और वह आपके चरण-कमलों की रज को अपनी आँखों का सुरमा बनाना चाहते हैं। वह स्वर्ग की हूरों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहते। बारम्बार के जन्म-मरण चक्र से छुटकारा चाहते हैं। तब भीतर से आचार्य भगवान ने परम कृपा करके कहा—ऐसा ही होगा। वह प्रसन्न होकर आकाश-मार्ग से चली गई। तब सब सन्तों को सुनने की शक्ति मिली। एकबार आश्रम पर एक श्रीपाचर मुनिजी आये। वह पाँच दिन दर्शनार्थ बैठे रहे, किन्तु आचार्य भगवान का दर्शन नहीं मिला। उन्होंने वेदान्त का खूब मन्थन किया था, किन्तु तत्वरूपी अमृत नहीं मिला था। जैसे-जैसे वेद की श्रुतियों पर विचार करते थे, तैसे-तैसे उनके विचारों का सूत उलझता जाता था। वह महिमा सुनकर आचार्य के चरणों में आये थे। किन्तु दर्शन की प्यास होने पर पांच दिन तक दर्शन नहीं मिला। कृपा करके अन्तर्यामी आचार्य भगवान ने दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। जैसे मेघ उमड़ कर वर्षा करता है। फिर आचार्य भगवान अमृतसदृश मधुर-वाणी से बोले—यदि आप ब्रह्मतत्व का बोध चाहते हैं तो हृदय-कमल का शोधन करें। शास्त्रों के विचार से भ्रम दूर नहीं होता। जब तक अन्तर की ज्योति नहीं जलेगी, तब तक अनुभव नहीं होगा। मोह का दल दल और कलियुग का विकार प्रेम-जल के बिना कभी नहीं धुलता। मन्त्रराज का कुछ समय तक जप करोगे तब निर्मल बुद्धि वाले हंस बनकर आत्मा-अनात्मा का विवेक कर सकोगे।

जब गुरु कृपा करके हृदयरूपी आकाश को धो देते हैं, तब अन्तर में सूर्य उदय होता है। आचार्य भगवान की वाणी से उनका संदेश मिट गया, उन्होंने अति दीन होकर मंत्रराज श्रीराम-मन्त्र की दीक्षा हठपूर्वक ली। बड़ी श्रद्धा से छः अक्षर वाले श्रीराम-मन्त्र का जप करने लगे। जप करते-करते छः विकार उनके नष्ट हो गये। उनकी भृकुटी पर दिव्य-प्रकाश आप ही झलकने लगा, जैसे चन्द्रमा चमकता है। उन्हें मनवांछित सब कुछ मिल गया। आश्रम के अधिकारी श्रीअनन्तानन्दजी गुरुदेव की सेवा में जल में कमल की तरह लगे रहते थे। साथ ही आचार्य भगवान की आज्ञानुसार योग-साधना में तथा जप, तप दिन-रात रत रहते थे। और श्रीरामजी के दर्शनार्थ विरह में व्याकुल रहते थे। मन्त्र-जप करते में एकदिन ध्यान लगाया तो तुरीयादशा में पहुँच गये। ध्रुवलोक का दर्शन कर प्रकृति से परे पहुँचने पर अपार तेज चमकता हुआ दिखाई दिया। जब समाधि से उठे तो आचार्य भगवान के पास बड़े प्रसन्न मन से आये, और अपना अनूठा अनुभव सुनाया कि—श्रीराम-मन्त्र की महान् गरिमा मैंने आज प्रत्यक्ष देख ली। छः अक्षरों का श्रीराम-मन्त्र बड़ा सुखद है। इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है सो हमें सुनने की इच्छा है। आचार्य भगवान यह प्रश्न सुनकर प्रसन्न हो गये और गुप्त रहस्य बताने लगे—कि—आदि सृष्टि में जब विष्णु भगवान की नाभि से कमल प्रकट हुआ तो कमल से ब्रह्माजी प्रकट हुए। कमल पर वह ऐसे लगते थे। जैसे भ्रमर बैठा हो। श्रीब्रह्माजी बड़े सोच में थे कि—हम कौन हैं? चारों ओर समुद्र है। हम कहाँ से आये हैं? कहाँ जायें? बड़ी व्याकुलता थी। फिर उस कमल की नाल में वे घुसे। परन्तु उसकी गहराई की थाह नहीं पा सके। जैसे अन्धा समुद्र में बहता घबड़ा रहा हो। बच्चे

की तरह ब्रह्मा को विकल देख श्रीसाकेतलोक में सबके संचालक भगवान श्रीरामजी जो अखिलकोटि ब्रह्माण्डों के स्वामी पूर्णब्रह्म हैं उन प्रभु ने अपने नित्य-पार्षद श्रीहनुमानजी को कृपा करके श्रीब्रह्माजी के पास भेजा। दिव्य विष्णु चतुर्भुज पार्षद रूप से हनुमानजी आये और उपदेश देकर सृष्टि रचने को कहा फिर भी ब्रह्माजी को सृष्टि रचने की बुद्धि नहीं होती थी तब हनुमान जी ने साकेत में जाकर सब समाचार सुनाया। तो अनन्त ब्रह्माण्डों की स्वामिनी श्रीसीताजी ने कृपा करके कहा कि—हे कृपानिधान ! आप श्रीब्रह्माजी पर कृपा करके सृष्टि करने के लिए बीज-मन्त्र प्रदान कीजिये। तब भगवान श्रीसाकेतनाथ ने अपना मन्त्र (षड्क्षर) श्रीसीताजी को बता दिया। श्रीसीताजी ने वही राम-मन्त्र श्रीहनुमानजी को सुनाया। पश्चात् फिर ब्रह्माजी के पास श्रीहनुमानजी आये। श्रीब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें आशा हो गई कि—अब हमें वस्तु मिलेगी। श्रीहनुमानजी ने बीज-मन्त्र विधिवत् प्रदान किया। भगवान का प्रिय (वही मन्त्र) रूपी धन देकर उन्हें धनी बना दिया। श्रीब्रह्माजी ने बीज-मन्त्र का जप किया। उसी से उन्हें सृष्टि रचने की शक्ति मिली। सो बुद्धि उन्हें मिली। बीजरूपी राम-मन्त्र ध्वनि से ही संसार बना है और उसी मन्त्र-शक्ति से स्थिर भी है। पीछे श्रीब्रह्माजी ने कृपा करके श्रीशङ्करजी को वही मन्त्र प्रदान किया था। श्रीशङ्करजी से अनेक ऋषियों ने वही मन्त्र प्राप्त किया था। और जगत् में उस राम-मन्त्र का प्रचार जैसे हुआ, वह सुनिये। अब तक वह रहस्य गुप्त था। अब तुम्हें वह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाऊँगा। श्रीब्रह्माजी से उसी बीज-मन्त्र को सनकादिकों ने प्राप्त किया था। उनसे फिर अन्य ऋषियों ने पाया। श्रीअगस्त्यजी, श्रीअङ्गिराजी, श्रीसुतीक्ष्णजी,

श्रीशाण्डिल्यजी—तथा आदिकवि श्रीबाल्मीकिजी ने इसी मन्त्र के प्रताप से भगवान का यश दर्शन प्राप्त किया था। श्रीशौनकजी, श्रीहारीतजी आदि ऋषियों ने तारक-मन्त्र से भवसागर से लोगों को पार किया था और स्वयं पार हुए थे। ऐसे ऋषियों ने मन्त्ररूपी अमृत से जगत् पावन किया। सतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुग के अनेक ऋषि इसी मन्त्र से पूर्णता को प्राप्त हुए थे। अब मैं अपनी परम्परा सुनाता हूँ कि जिस प्रकार हमें यह मिला है। श्रीब्रह्माजी से महर्षि वशिष्ठजी ने प्राप्त किया था। श्रीवशिष्ठजी से श्रीपराशरजी ने प्राप्त किया था। सबका सार यह मन्त्र पराशरजी से श्रीवेदव्यासजी ने पाया था। और श्रीवेदव्यासजीने श्रीशुकदेवजी को भक्ति का प्रचार करने के लिए दिया था। पश्चात् श्रीशुकदेवजी से महर्षि बोधायन पुरुषोत्तमाचार्यजी ने पाया था और श्रीबोधायनजी से श्रीगङ्गाधराचार्यजी ने लिया था। श्रीगङ्गाधराचार्यजी से श्रीसदाचार्यजी ने तथा श्रीसदाचार्यजी से श्रीरामेश्वराचार्यजी ने और रामेश्वराचार्य से श्रीद्वारानन्दाचार्यजी ने, श्रीद्वारानन्दाचार्य से श्रीदेवानन्दाचार्यजी ने और श्रीदेवानन्दाचार्य से यतिराज श्रीश्यामानन्दाचार्यजी ने और श्यामानन्दाचार्य से श्रुतानन्दाचार्यजीने तथा श्रुतानन्दाचार्यजी से श्रीचिदानन्दाचार्यजी ने इसे पाया था। श्रीचिदानन्दाचार्य जी से श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी ने तथा श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी से श्रीश्रियानन्दाचार्यजीने और श्रीश्रियानन्दाचार्यजीसे श्रीहर्यानन्दाचार्यजी ने तथा श्रीहर्यानन्दाचार्यजी से श्रीराघवानन्दाचार्यजी ने इस मन्त्र को पाया है। यही श्रीराघवानन्दाचार्यजी हमारे गुरुदेव हैं। जो जगद्गुरु महान् सिद्ध विद्वान् हैं। वे काशी में श्रीमठ में विद्यमान हैं। इस प्रकार हमें परम्परा से यह मन्त्रराज मिला है। परम दिव्य श्रीराम षड्क्षर मन्त्रराज का जगत् में इस

प्रकार अवतरण हुआ है ? यह रहस्य सुनकर श्रीअनन्तानन्दजी परम आनन्दित हुए और गद्गद हो गये। पश्चात् एक प्रश्न और किया कि—हे महाराज ! श्रीरामजी का स्वरूप कैसा है ? एक विष्णु क्षीरसागर में सोने वाले कहे जाते हैं, एक विष्णु उपेन्द्र स्वर्ग के कहे जाते हैं। एक विराट् विष्णु कहे जाते हैं, एक भूमा विष्णु कहे जाते हैं। एक विष्णु जगत् का पालन करते हैं, एक विष्णु नारायण ऋषि कहे जाते हैं। इस प्रकार शास्त्रों में 'कई विष्णु' कहे गये हैं। फिर दशरथनन्दन श्रीरामजी किस विष्णु के अवतार हैं ? यह रहस्य और समझाने की कृपा करें। तब हँसकर आचार्य भगवान ने कहा—सुनिये ! और सुनकर अपना संशय दूर कीजिये। जिस समय दिव्य-रूप धारण कर सतयुग में कर्दम ऋषि और देवहूती आकाश में विमान पर बैठकर विचर रहे थे, उस समय अनादि ब्रह्म और अनादि महाशक्ति की सी झलक उनके रूप में दीख पड़ी। वह झलक श्रीब्रह्माजी ने देखी और दिव्य अनुभव में निमग्न हो गये। प्रभु का सगुणरूप ध्यान में आने से विज्ञान विकसित हुआ। जगत् की उत्पत्ति और लय का कारण वही हैं। ऐसा ज्ञान उदय हुआ। वही विज्ञान लिए हुए कपिल भगवान कर्दम देवहूती के द्वारा उत्पन्न हुए। श्रीकपिलजी ने माया और संसार के रहस्यों को वर्णन कर तत्व-विचार का मार्ग दिखलाया। श्रीकपिलजी ने अपनी माता देवहूती को वह ज्ञान सिखाया था। कर्म-जाल और जगत्-जाल नष्ट करने वाला वह ज्ञान था। देवहूतीजी ने वह ज्ञान हृदय में धारण कर लिया और पिता आदि मनुजी को वह ज्ञान सुनाया था। वही ज्ञान प्राप्तकर परम विज्ञानी श्रीमनुजी ने विचार किया कि जगत् के संचालक ब्रह्मा का दूसरा सञ्चालक कोई और भी है।

उन्होंने निश्चय किया कि—तपस्या करके परात्पर आदि-प्रेरक प्रभु पूर्णब्रह्म का शक्ति सहित दर्शन करें। तब नैमिषारण्य में जाकर मनुजी ने शतरूपा महारानी के सहित अपार तप किया। श्रीब्रह्मा, श्रीविष्णु, श्रीशङ्कर—यह तीनों देवता मनुजी के पास बरदान देने आये, पर उन्होंने कुछ नहीं मांगा। तब मनु-शतरूपा की भक्तिपूर्ण तपस्या से प्रसन्न होकर परात्पर ब्रह्म महाविष्णु श्रीरामजी शक्तिसहित प्रकट हुए और पूर्णब्रह्म श्रीरामजी दशरथ-नन्दन होकर जगत् में आये। जब जीवन्मुक्त ऋषियों ने वह श्रीरामजी का श्रीविष्णु से भी अनन्तगुणा प्रभावमय सुन्दर रूप देखा तो उनके हृदय में श्रीराम-भक्ति उत्पन्न हुई। श्रीरामजी परात्पर ब्रह्म हैं, ऐसा जान करके—श्रीराम-भक्तिरूपी अमृत की धारा से सब संसार पवित्र हुआ, और जो तुमने कहा—अनेकों विष्णु हैं, उनका रहस्य भी सुनो। श्रीनारायण, श्रीभूमा, श्रीउपेन्द्र, श्रीक्षीरसागर निवासी आदि कोई दूसरे नहीं—ऐसे अनेकों रूप धरके अनेक प्रकार की लीला एक श्रीरामजी ही करते हैं। जिसकी दिव्यदृष्टि नहीं है वह किस प्रकार इस दिव्य रहस्य को समझेगा। जो कहता है—यह अवतार सोलह कला के हैं, यह अवतार बारह कला के हैं, अज्ञानी हैं। परात्पर श्रीरामजी के तत्व को वह नहीं जानता। परब्रह्म परमात्मा आनन्दघन श्रीरामजी प्रकृतिमण्डल से परे अपने साकेत धाम में रहते हुए भी अनेकों रूप से समय-समय पर आकर अनेकों लीलाएँ जगत् में करते रहते हैं। यह सुन्दर रहस्य सुनकर श्रीअनन्तानन्दजी ने आचार्य भगवान के चरण-कमलों को धोकर चरणोदक पान किया। उस समय यवनों का राज्य था। साथ ही आपसी कलह की आग भी जल उठी थी। वैष्णव और शैवों में बड़ा विरोध बढ़ गया। देवता और दैत्यों के संग्राम की

भाँति युद्ध होने लगा। उस समय वैष्णवों की संख्या थोड़ी रह गई और तामसी सिद्धि करके वामपंथी शैव आदि बहुत बढ़ गये। वामपंथी शैव बड़ा उपद्रव करने लगे। वैष्णव बेचारे दुःखित हो भगवान को पुकारने लगे। तामसी सिद्धि वाले पंचम-कारी (मांस, मदिरा आदि पांच मकार) चामुण्डादेवी के उपासक व्यभिचार करने वाले। वे सब बड़ा अत्याचार करने लगे। सच्चे सन्त उनसे हारकर रो रहे थे। वह सब तामसी सिद्ध इकट्ठे होकर दल बनाकर श्रीरामानन्दाचार्यजी को परास्त करने के लिए आश्रम पर आये। आचार्य भगवान की बढ़ती हुई कीर्ति से चिढ़कर वे सहस्रों की संख्या में मिलकर लड़ने आये थे। उन सबने माया रची। शेर और सांप प्रकट कर दिये। वे सिंह, सर्प दौड़े आते पर आश्रम में पहुँचते ही नष्ट हो जाते थे। जैसे ओले बरसकर थोड़ी देर में गल जाते हैं। जब उन सिद्धों का मायाजाल नहीं चला, तो वे बड़े क्रोधित हो उठे और माया की स्त्रियाँ बनाकर आश्रम में प्रकट कर दीं। फिर उनमें से कुछ दौड़ते हुए काशी में जाकर निन्दा करने लगे कि—रामानन्द के आश्रम में स्त्रियाँ रहती हैं। चलो हम प्रत्यक्ष दिखा दें। ऐसे कहकर लोगों को एकत्रित कर लाये। बड़ी भीड़ आश्रम पर हो गई। बड़ा हो-हल्ला सुनकर आचार्य भगवान भीतर से निकल आये और आकाश में अधर में स्थिर हो पद्मासन से बैठ समाधि लगा ली। लोग कौतुकवश आश्रममें घुसे वह जो माया की स्त्रियाँ सिद्धि-बल से प्रकट की थीं, वह सब पत्थर की मूर्तियाँ हो गईं मूर्तियोंको देख सब जनता उन सिद्धों को डाटने लगी कि-व्यर्थ ही आचार्य भगवान की निन्दा करते हो, यह तुम्हारी माया है। आचार्य भगवान सब प्रकार समर्थ थे, किन्तु उन्होंने कोई बदला नहीं लिया। वे तामसी सिद्ध सब हारकर

चल दिये, परन्तु मनमें हिंसा का भाव रख, सोचने लगे कि आचार्य को मार डालने का कोई उपाय करें। फिर मार्ग में सिद्धों ने भैरवजी को प्रकट कर आचार्य भगवान को मार डालने के लिए भेजा। किन्तु निरपराध को मारने भेजने से उलटा परिणाम होता है। भैरवजी ने लौटकर उन सिद्धों को ही दण्ड दिया। आचार्य भगवान से बैर करने का फल दे दिया। जो बिना कारण सन्तों को दुःख देता है, वह अपराध की आग में स्वयं जल जाता है। एकबार अंधेरी रात्रि थी। ऐसा देखा कि कोई परिक्रमा कर रहा है तो आचार्य भगवान बोले—तुम कौन हो, जो इस समय विशाल रूप धारण कर परिक्रमा कर रहे हो ? तब वह बोला—मैं एक अधम अभागी पापी जीव हूँ, मैंने प्रेत-योनि पाई है। मैं एक ज्ञानी वेदान्ती था। विद्या पढ़ ज्ञान के अभिमान में जीवन व्यतीत किया। भगवान की भक्ति नहीं की। एकबार मैं तीर्थयात्रा को निकला था मार्ग में रोगी होकर मर गया। अन्त समय में बड़ी व्याकुलता में बिना भगवान का स्मरण किये ही शरीर छूटने से मुझे यह प्रेत-योनि मिली है। तब से घोर दुःख के समुद्र में डूबता-उछलता बड़ी पीड़ा सह रहा हूँ। एकदिन मैं हिमालय पर घूम रहा था, और रो रहा था, वहाँ श्रीरुक्माङ्गद नाम के एक महापुरुष का दर्शन हुआ। उन्होंने मुझ पर दया करके आपका नाम बताकर कहा कि—काशी में उनके पास जाओ तो तुम्हारा उद्धार हो जायगा। इसलिए हे दीनबन्धु, दयालु, हे करुणासागर ! मेरा उद्धार कर दीजिये। मुझे संसार-सागर से पार कर दीजिये। सुना है इस दरबार में जो मांगो, वही मिल जाता है। भिक्षुक इस द्वार से कभी खाली नहीं जाते। हे नाथ ! आपके चरित्र नित्य नये होते हैं, जो सदा मुनिजन गान करते रहते हैं। यह

करुणा-भरी वाणी सुन, उसे अत्यन्त आर्त्त जानकर आचार्य भगवान बोले—तुमने थोड़ा-सा साधन शरीर धारण किया था, पूर्वजन्मों के तुम्हारे पाप बहुत थे। अन्त समय में वही पाप तुम्हारे रोग बनकर आ गये। ध्यान में विघ्न कर दिया। अच्छा मैं तुम्हारे सब पापों को हरण करके भूमा भगवान के पास पहुँचाऊँगा। वह भूमालोक अत्यन्त प्रकाशमय है। वहाँ बिना महान् तप के कोई नहीं पहुँच सकता। हाथी, घोड़ों पर चढ़कर तो बहुत से लोग स्वर्ग गये हैं। रथ पर चढ़कर श्रीयुधिष्ठरजी गये थे। किन्तु, भूमालोक के अत्यन्त प्रकाशपथ में करोड़ों मुनि जाना चाहते हैं, पर नहीं पहुँच पाते हैं। तुम्हें श्रीरुक्माङ्गदजी का सत्सङ्ग प्राप्त हुआ, इसी से यहाँ पर आने पर यह संयोग लगा है। श्रीरामजी की कृपा तब ही हुई समझनी चाहिए जब कोई सच्चे सन्त का संग मिले। उस सन्त के संग से मोहरूपी नींद का नाश हो जाता है और अज्ञानरूपी अन्धकार नहीं रहता। दिव्य-ज्ञान की ज्योति जल उठती है। ऐसा कहकर जल को श्रीराम-मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उसके मस्तक पर छिड़क दिया। वह दिव्यरूप धारण कर विमान पर बैठ, आचार्य भगवान की स्तुति करके दिव्य-भूमालोक में चला गया। एकबार एक धनी व्यापारी आया। उसके साथ पत्नी और कन्या थी। कन्या के हाथ में एक पिंजड़ा था, उस पिंजड़े में एक बड़ी सुन्दर मैना थी। वह मैना बड़ी मधुर और करुणा से भरी वाणी में कीर्तन कर रही थी। 'वन्दे देवं रामानन्दं। तारक ब्रह्म सच्चिदानन्दं।' हे अधमों का उद्धार करने वाले, करुणा के मेघ, माया के सब कष्टों को नाश करने वाले प्रभो! मेरी रक्षा करो। ऐसे मधुर कीर्तन को सुनकर सभी गद्गद हो रहे थे। वह व्यापारी आचार्य भगवान के द्वार

पर प्रार्थना करने लगा कि—हे प्रभो ! इस मैना के कहने से मैं आपके पास आया हूँ । यह मैना मुझे कामरूप देश में मिली थी। मेरी कन्या इसे खेलते-खेलते पकड़ लाई थी। यही मैना आपकी महिमा सुनाकर हठ करके हमें यहाँ लिवा लाई है। तब आचार्य भगवान ने कहा—आप लोग धैर्य धारण कर मैना को पिंजड़े से बाहर निकालिये। हर्षित हो व्यापारी ने पिंजड़ा खोल दिया। वह मैना निकल कर देहली पर बैठ गई। तब आचार्य भगवान ने मन्त्र पढ़कर उस पर जल छिड़क दिया। वह मैना दिव्य-सुन्दरी स्त्री बन गई। वह मैना सुन्दरी बनकर स्तुति करने लगी—हे पातक हरण पुरुषोत्तम, हे पुण्यदर्शन प्रभो ! आपकी जय हो। हे नाथ ! मैं ऊषा नाम की किन्नरी हूँ। अपने प्रियतम गौतम किन्नर के साथ विमानों में विहार करती रहती थी। एकदिन जब मेरे पति का पुण्य क्षीण हो गया तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। मुझे पता लगा कि—वह पृथ्वी पर कहीं पक्षी-योनि में जन्मा है तो मैं भी मैना का रूप बनाकर उसे खोजने पृथ्वी पर आई तो किसी जादूगर ने मुझे देख लिया और मुझ पर मंत्र चला दिया। कामरूप देश में मन्त्र लगने से मेरी उड़ने की शक्ति नष्ट हो गई। मैं अपने देवरूप को खोकर रो रही थी। पृथ्वी पर चलती हुई मैं घबड़ा रही थी। एकदिन एक ब्राह्मण ने आपकी महिमा सुनाई। उसने काशी में आकर आपका चमत्कार देख लिया था। मैं आपका दर्शन करने की इच्छा करके आपका नाम रटने लगी। दैवयोग से यह सेठ उसी मार्ग से निकले, इनकी कन्या ने खेलने के लिए मुझे पकड़ लिया। मैंने सेठजी से आपके पास चलने के लिए प्रार्थना की थी। अब आपका दर्शन कर आपके द्वारा जल-सिंचन होते ही मुझे अपना दिव्यरूप प्राप्त हो गया। मेरा हृदय-कमल भी खिल गया अर्थात् दिव्य-ज्ञान हो

गया, अब मैं भगवान की आराधना करूँगी। ऐसा कहकर वह अपने लोक को चली गई। बेचारी सेठ-कन्या देखती रह गई। उसका मैना से बड़ा प्रेम हो गया था। सेठजीने आचार्य भगवान का प्रत्यक्ष प्रताप देखा तो बड़ी श्रद्धा हुई। वह परिवार सहित शरणागत हुआ। विधिवत् दीक्षा ली। इस प्रकार प्रभु निरन्तर लोक-कल्याण के कार्य करते थे। ऐसे सैकड़ों चरित्र नित्य होते थे। देवता स्वर्ग में आपका सुयश गान करते थे, और नित्य दर्शन करने आते थे। जैसे चन्द्रमा को देख समुद्र उमड़ता है, ऐसे ही दर्शनार्थ ऋषि और देवता उमड़ते थे। श्रीअनन्तानन्दजी आदि अनेकों शिष्य आपके हुए जो बड़ी भक्तिसे सेवा करते थे आज भी वे भक्त धन्य हैं, जो श्रीरामानन्दाचार्यजी का ध्यान हृदय में करके सब सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं।

श्रीकृपाशंकर पर कृपा

एक कृपाशंकर नाम के बहुत बड़े योगी थे, वह धवलागिरि नाम के पहाड़ पर रहते थे और सिद्धि के बल से आकाश-मार्ग में चलते थे। वे समाधि का अनुभव करने वाले थे। वह आकाश-मार्ग से अपने साथियों के साथ आकर आश्रम के ऊपर मँडराने लगे। श्रीअनन्तानन्दजी भी उनका स्वागत करने के लिए योगबल से आकाश में उड़ गये। और अधर में ही उनके बैठने के लिए आसन बिछा दिया। गर्मी के दिन थे, दोपहर का समय था। वहीं शर्बत आदि ले जाकर उनकी पहुनाई की। ऐसा विचित्र सत्कार देख वह योगी कहने लगे—धन्य! धन्य! आचार्य के शिष्य भी सिद्ध हैं। श्रीकृपाशंकरजी ने कहा—आप अब कृपा करके आचार्य भगवान का दर्शन कराइये। श्रीअनन्ता-नन्दजी ने कहा—दर्शन में तो बहुत विलम्ब है, आपको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। वे योगी प्रतीक्षा करने लगे। बहुत देर हो गई।

घबड़ाने लगे—तब आचार्य भगवान ने उनका प्रेम देखकर द्वार खोलकर दर्शन दिया तथा अपना दिव्य-प्रकाशमय रूप दिखाया। वह योगीराज आचार्य भगवान का तेज देख आश्चर्य से चकित होकर पृथ्वी पर उतरे और साष्टांग प्रणाम किया। तब आचार्य भगवान ने उनको अपने समीप बैठाया। योगीराज ने प्रिय वाणी में कहा कि—मेरे मन में बड़ा-भारी संशय उत्पन्न हो गया है वह कृपा करके दूर कर दीजिये। वह संशय यह है कि—योग, ज्ञान और कर्मों का भेद तथा आगम आदि शाखाओं के सहित वेदों का—तथा अनेक मतों का विचार करके मेरी बुद्धि भ्रमरूपी दल-दल में फंसती जाती है। अब तक मेरा भ्रम किसी ने दूर नहीं किया है। आप कृपा कर यह भी बताइये कि—यह ब्रह्म कैसे विस्तार को प्राप्त हुआ? तब आचार्य भगवान मधुर वाणी से बोले–असम्भूति (कुछ न होने का अनुभव) सम्भूति (होने का अनुभव) यह दोनों धारायें एक में मिली हैं। जो इसका मर्म जान लेता है वही भवसागर से पार हो जाता है। असम्भूति के विचार से मुनिजन आवागमन नष्ट कर देते हैं और सम्भूति के द्वारा मोक्ष का ब्रह्मानन्द पाकर सुखी होते हैं। यह सारी सृष्टि बदलने वाली है, जैसे छाया के चित्र बनते-बिगड़ते हैं। आंखों की पुतली में आंखें मिलाकर और मन से मन मिलाकर माया जीवों को खेल खिलाती रहती है। सब कार्यों में उसका चरित्र कोई समझ नहीं पाता, भ्रम से अपनी ही करनी जीव मानता है। कभी कुछ जानता भी है तो भी समझ नहीं पाता। इसलिए बिना ईश्वर-भक्ति के यह अज्ञान दूर नहीं होगा ब्रह्म का विस्तार और विलास विचारते रहो पर बिना ईश्वर की कृपा के यह रहस्य द्रष्टा की भाँति देख नहीं सकते। जब तक प्रभु के चरणों में अनुराग नहीं होगा, तब तक माया मन

को छोड़ नहीं सकती। यह सुन्दर रहस्य सुनकर सारा सन्देह दूर हो गया। तत्काल श्रीरामजी के चरणों में प्रेम उत्पन्न हुआ। ज्ञान के अभिमान वाले जो सोने के कपाट लगे थे, वह कपाट खुल गये। भगवान के धाम का मार्ग मिल गया। वह प्रेम से विह्वल होकर आचार्य भगवान के चरणों में गिर पड़े। उन योगीराज श्रीकृपाशङ्करजी के ऊपर आपने तत्काल कृपा की। और श्रीराम-नाम का रहस्य सुनाया कि—श्रीराम-नाम की ध्वनि से ही यह सारा संसार प्रकट हुआ है। इसलिए श्रीराम-नाम में ही मन लय करो। तब श्रीकृपाशङ्करजी ने राम-नाम में मन लगाकर समाधि लगाई।

श्रीसुखानन्द-चरित्र

आचार्य की कृपा से वह ऐसे नाम में लय हुए कि शरीर ही अदृश्य हो गया, और दिव्यरूप धारण कर दिव्य-विमान पर बैठ भगवान के लोक को चले। चलते समय आचार्य की बहुत विनती की और धाम को चले गये। अन्य सिद्ध-योगी जय-जय ध्वनि करने लगे। अब दूसरा चरित्र और सुनिये। काशी में एक हरिपावन नाम के पण्डित रहते थे। उनकी कन्या बड़ी सुन्दर थी, वह बड़ी भक्ति से शिवजीकी पूजा करती थी। उसका विवाह उज्जैन में हुआ था, किन्तु उसे कोई पुत्र नहीं होता था। उसे पुत्र की बड़ी लालसा थी। वह शङ्करजी को प्रसन्न करने के लिए व्रत, तप करने लगी। उसके उपवासों से प्रसन्न होकर आशुतोष भगवान शंकर प्रकट हो गये। मस्तक पर चन्द्रमा चमकने वाला शिवजी का मुखचन्द्र देख वह बहुत आनन्दित हुई। श्रीशिवजी ने कहा—जो इच्छा हो, वरदान मांग लो। तो वह चरणों में पड़कर बोली—हे नाथ! मेरे मन में और कोई इच्छा नहीं, केवल पुत्र की इच्छा है, सो हाथ जोड़कर वही

माँगती हूँ। परन्तु, एक प्रार्थना और है कि–पुत्र आपके समान सुन्दर होना चाहिए। श्रीशिवजी वरदान देकर अन्तर्ध्यान हो गये। कुछ दिनों के पश्चात् उसके पुत्र हुआ। उस बालक की सुन्दरता देख सबको बहुत आश्चर्य हुआ। गोरा रङ्ग था, चौड़ा मस्तक था, भाल पर अर्धचन्द्रमा का चिह्न था। सुन्दर बाल-लीलायें करके जब वह बालक चौदह वर्ष का हुआ, तब एक दिन गङ्गा में स्नान करने गया। पण्डितों ने कहा था कि–इस बालक को अपना मुख दर्पण में नहीं दिखाना और नदी-स्नान नहीं कराना। इसीलिए दर्पण देखना तथा गङ्गा-स्नान इन्हें नहीं करने दिया जाता था। एकदिन यह संयोगवश गङ्गा नहाने चले गये। गङ्गाजी में अपने मुख की छाया देखी। अपना मुख देखते ही दिव्य-ज्ञान हो गया। उसी समय से वह किसी से सीख कर शम, दम, प्राणायाम आदि साधन करके समाधि लगाने लगे। उन्हें योग में सिद्धि थोड़े ही समय में मिल गई। वह साधु होकर काशी आये और नीची-बाग में ठहरे। उनके आते ही वहाँ बिना ऋतु के ही फूल खिल गये और फल लग गये। यह सिद्धि देखकर उनके दर्शनार्थ जनता की भीड़ एकत्रित हो गई। एकदिन वह बाग में अपनी सिद्धि से प्रफुल्लित हुए फूलों को घमण्ड से देख रहे थे कि उसी समय एक प्राचीन ऋचीक नाम के ऋषि प्रकट हो गये। वह ऋषिराज एक फूल पर बैठकर सुन्दर उपदेश देने लगे कि—सिद्धि के अभिमान में जो फूला रहता है, उसे तप-फल भोगने के बाद फिर गर्भवास के झूले में झूलना पड़ता है। तुम्हारी तो चौथे ही दिन अब मृत्यु होने वाली है। तुम मान-प्रतिष्ठा में फूले-फूले फिरते हो। जैसे मेंढ़क मुख फैलाकर मक्खी खाने को दौड़ता है और पीछे सर्प आकर मेंढ़क को खाना चाहता है, पीछे की ओर उसका ध्यान ही नहीं

होता। वह स्वयं मारा जाता है। यदि तुम जीवित रहना चाहो तो जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी की शरण में जाओ। वह तुमको आयु-प्रदान कर सकते हैं। यह उपदेश सुनते ही और चौथे दिन अपनी मृत्यु जानकर वह लज्जित और सचेत हो उठे। घबड़ाकर आश्रम पर आये और जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी से प्रार्थना करके दीक्षा ली। कृपा करके आचार्य भगवान ने बहुत बड़ी आयु भी प्रदान कर दी। तथा उनका सुखानन्द नाम रक्खा और सरस श्रीराम-प्रेम भी प्रदान किया। ज्ञान की सात भूमिकायें समझाकर कर्म-अकर्म-विकर्म की गूढ़ गतियों का मर्म भी समझाया। तेरह प्रकार के त्याग और चार प्रकार के विशाल विज्ञान सिखा दिये। ग्यारह प्रकार की भक्ति तथा रसमय सर्वश्रेष्ठ अनुपम ब्रह्मतत्व भी सुना दिया। काल के भेद तथा तत्सुख सुखित्व भाव वाला सिद्धांत भी कृपा करके समझाया। अब श्रीसुखानन्द परम वैष्णव-वेष (पंच-संस्कारयुक्त) धारण कर ऐसे लगते थे जैसे तेजोमय सूर्य हो।

श्रीसुखानन्द-चरित्र

एकदिन एक परम सुन्दर ब्राह्मण का बालक आया। वह गान-कला में अत्यन्त कुशल था। हाथों में उसके वीणा थी। अनेकों स्त्री-पुरुष उसके गान के चमत्कार पर मुग्ध होकर उसके साथ आये थे। जब वह आश्रम पर आया तो गान के अभिमान में भरकर गन्धर्व के समान मीठे स्वर से गाने लगा। लोगों के आग्रह से दीपक-राग गाने का विचार किया। घृत और बत्तियों से सजाकर बहुत से दीपक देहली पर रखवाये गये। जब गाते-गाते वह सम पर पहुँचा तो अपने आप दीपक जल उठे। यह दृश्य देख सब लोग आश्चर्य करने लगे और उस बालक की बड़ाई करने लगे। तब श्रीआचार्य भगवान ने उसे बड़ा सुन्दर

उपहार भीतर से शंख बजाकर दिया। मधुर-ध्वनि से शंख के बजते ही—उस गायक बालक की समाधि लग गई। उसकी हृदय की वीणा बजने लगी। वह अब दिव्य गान-ताल स्वर के समुद्र में डूब गया। वह मूर्च्छित दशा में दिव्य-लोकों में गया। वहाँ न सूर्य था, न चन्द्रमा। किन्तु दिव्य - प्रकाश छाया हुआ था। जब कुछ देर में उसकी समाधि खुली, तब आचार्य भगवान ने द्वार खोलकर दर्शन दिया। श्रीआचार्य भगवान का मुखचन्द्र दर्शन करते ही उसे अपने पूर्वजन्म का ज्ञान हो गया और अत्यन्त प्रेम से आचार्य के चरणों को पकड़कर आर्त्त हो प्रार्थना करने लगा कि—हे अनाथों के रक्षक प्रभो! मुझे अब अपनी शरण में ले लीजिये। ऐसे हठ करके उसने दीक्षा ली तथा अपने पूर्वजन्मों की सब गुप्त बातें सुना दीं। आचार्य ने जान लिया कि यह श्रीनारदजी के अवतार हैं, इसलिए इन्हें श्रीसीता-रामजी की शृङ्गार-रसमय मानसी-सेवा करने की आज्ञा दी—श्रीसुरसुरानन्द नाम रक्खा। इनके रागों के बीच में अब वैराग्य भी भर दिया। अब यह निरन्तर श्रीशेषजी के समान भगवान का गुणगान करने लगे, ज्ञान-वैराग्य भरे गीत गाते थे। पश्चात् एक समय श्रीसुरसुरानन्दजी ने आचार्य भगवान से प्रश्न किया कि—श्रीराम-मन्त्र का अर्थरूपी रस मेरे मनरूपी भ्रमर को पान कराइये। तब श्रीजगद्गुरु ने कृपा कर अमृत से भी मीठी वाणी में कहा—श्रीराम-मन्त्रराज का अर्थ तो अपार है। वाणी तो पूर्ण-रूप से वर्णन ही नहीं कर सकती। षड्क्षर मंत्रराज की महिमा महान् है। मन्त्र के प्रथम अक्षर को बीज कहते हैं। उस बीज में ॐकार के सहित (ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह) त्रिमूर्ति भी विराजमान हैं। उस बीज की ध्वनि से ही यह ब्रह्माण्डरूपी वृक्ष प्रकट हुआ है। इसी बीज से सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का तेज

प्रकट होकर जगत् को प्रकाशित कर रहा है। और राम-नाम के तो अनन्त अर्थ हैं। राम-नाम वेदों का सार परम-तत्व है और मोक्षस्वरूप है। यही ब्रह्माण्डरूपी संपुट में रत्न के समान विराजमान है। यहीं राम-नाम शिवजी का हृदय-धन है और समस्त दुःखों का नाश करने वाला है। श्रीप्रह्लादजी, श्रीनारदजी आदि इस नाम की प्रत्यक्ष महिमा बताते हैं। सभी ग्रन्थ राम-नाम को सब पुण्यों से श्रेष्ठ और प्रकृति से परे तथा माया-जालरूपी रुई को जलाने में इसे अग्नि के समान बताते हैं। इस राम-नाम में तीन मात्रायें (र. अ. म.) हैं। रकार तो अग्नि का बीज है। इसी ध्वनि का योगीजन ध्यान करते हैं। इसी ध्वनि से ज्योति प्रकट होती है। और जगत् को उत्पन्न करने वाला बीज अक्षर अकार है। यही चैतन्य-तत्व का आश्रय है। और 'मकार' चन्द्रमा तथा शंकरजी का बीज है। यही मुक्ति सुख का दाता तथा रसमय और लीलामय है। इन्हीं तीन मात्राओं में बीज, ब्रह्म, माया का ऐश्वर्य भी सम्मिलित है। और मन्त्र में जो आय शब्द आया है—उसका भाव शरणागति है। यह जीव भगवान के लिए ही है। भगवानको अपना समर्पण करने का चिन्तन कराके अभिमान की अग्नि बुझाता है तथा वैराग्य बढ़ाता है। और 'नमः' भगवान की कृपा को उत्पन्न करती है। बिना परिश्रम किये वाणी से भगवान को केवल नमस्कार करने से ही महान् सेवा हो जाती है। कल्पतरु के समान यह 'नमः' है। यह अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष तो देती ही है, और सबसे श्रेष्ठ भक्ति-फल भी यह प्रदान करती है। और इस श्रीराम-मंत्रराज में अर्थपञ्चक ज्ञान भी भरा हुआ है। (अर्थ-पञ्चक का रहस्य आगे के प्रसङ्गों में आयेगा) यह मंत्र भगवान का साक्षात्कार कराके समस्त योगक्षेम भी करता है। इस मन्त्र

की अनन्त महिमा है, इसके मर्म को कहकर शङ्कर और शारदा भी पार नहीं पा सकते। जो इसे सर्वश्रेष्ठ मानकर जप करते हैं वह सर्वश्रेष्ठ हो जाते हैं। इस प्रकार श्रीमन्त्रराज का अर्थ सुनकर सुरसुरानन्दजी ने अपना जन्म सफल माना। क्योंकि ऐसा दिव्य-मंत्र प्राप्त हुआ जो दुर्लभ है। बड़े प्रेम से वे मंत्र जपने लगे। हृदय में ध्यानरूपी लता प्रफुल्लित होने लगी।

श्रीयोगानन्द-चरित्र

काशी में एक योगेश नाम के पण्डित निवास करते थे और वे श्रीशिवजी की उपासना करते थे। वह न्याय-शास्त्र के विजयी विद्वान् थे। योगी भी थे और परम धैर्यवान ज्ञानी सज्जन थे। जल की धारा पर नित्य-प्रति सिद्धासन से बैठकर गङ्गाजी के पार जाते ओर प्रातःकाल की नित्य-क्रिया करके फिर वैसे ही योगबल से जल पर चलकर आते। उनके मस्तक पर लक्ष्मी और कण्ठ में सदा सरस्वती निवास करती थीं। उनके हृदय में शिव-पार्वती का ध्यान रहता था तथा उनके घर में बहुत धन आता था। किन्तु वह सब दान कर दिया करते थे। सन्तों के सङ्ग में उनका बहुत अनुराग था। उनको समस्त जगत् से वैराग्य था, किन्तु केवल एक अपनी पतिव्रता पत्नी में कुछ प्रेम अवश्य था। उनकी पत्नी अनुसुइया देवी के समान महान् पतिव्रता थीं। प्रातःकाल एकदिन वह जब गङ्गा पार जाने लगे तो पत्नी ने कहा—आज उत्सव का दिन है, पार जाकर शीघ्र लौट आइयेगा। श्रीयोगेशजी ने हँसी में कहा—पार जाकर नहीं लौटूंगा। ऐसे कह चले गये। संयोगवश पार में कुछ प्रेमी-महात्माओं का सत्सङ्ग मिल गया। शास्त्रों की ज्ञान-चर्चा में रात हो गई। इधर पतिव्रता पत्नी प्रतीक्षा करते-करते विकल हो गई। हँसी में न लौटने की बात को सब

मान लिया। यह सोचकर कि वे अब नहीं आयेंगे—विरह-दुःख में उसने पति का ध्यान करके शरीर त्याग दिया। जब संध्या के बाद श्रीयोगेश पण्डित के घर आये तो पत्नी को मृतक पड़ी देख बड़े दुःखी हुए। जैसे हृदय में अचानक बाण-सा लगा हो, ऐसे पृथ्वी पर गिरकर मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छित दशा में दिव्य लोक देखा। वहाँ अपनी पत्नी को सुन्दर शृङ्गार धारण किये देखकर, सब शोक भुलाकर मिलने के लिए दौड़े। इन्हें दौड़ते देख पत्नी भी हँसती हुई भागी। यह पकड़ नहीं सके। बहुत परिश्रम किया, पर प्यारी हाथ नहीं आई। अत्यन्त भय और श्रम से व्याकुल हो रहे थे, तब भगवान शङ्करजी वहाँ प्रकट हो गये। श्रीशङ्करजी ने कहा—तुमने मेरी बहुत पूजा की है। मैंने तुम्हारी सेवा स्वीकार करली। मेरी सेवा का यही फल है कि सब सुखप्रद श्रीराम-भक्ति प्राप्त हो जाय। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर श्रीराम-मंत्र की दीक्षा ले लो। जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी को अपना गुरु बनाओ और प्रेमभक्तिरूपी अमृत-रस पान करो। वह श्रीरामानन्दजी आचार्यरूप में साक्षात् भगवान ही हैं। जगत् के कल्याण के लिए इस समय पृथ्वी पर थोड़े दिनों के लिए आये हैं। ऐसे कह श्रीशिवजी अदृश्य हो गये। श्रीयोगेशजी ने उठकर पत्नी का सब कृत्य किया और दुःख त्याग दिया। आश्रम पर आकर आर्त भाव से प्रार्थना की। आचार्य भगवान ने कृपा कर इन्हें शिक्षा-दीक्षा देकर कृतार्थ किया। तथा प्रेमयोग प्रदान करके इनका नाम श्रीयोगानन्द रखा। साथ ही श्रीरामजी की अष्टयाम सेवा की सरस विधि भी इस प्रकार समझाई कि—एकाग्र मन से प्रातःकाल ध्यान में बैठकर प्रथम प्रहर में श्रीसीतारामजी को जगावे। स्नान कराके शृङ्गार करे। दूसरे प्रहर में वन में भ्रमण-मृगया आदि

लीलाओं की विचित्र झांकी का ध्यान करे। सभा में जाकर प्रजा का सत्कार करके राजभोग (भोजन) करते हैं। पश्चात् शयन करते हैं, मध्याह्न तीसरे प्रहर तक। चौथे प्रहर में सखाओं के साथ जाकर सुन्दर फुलवाड़ियों में नाना प्रकार के खेल खेलते हैं। सन्ध्या समय श्रीसरयू-जल में नौका-विहार करते हैं। फिर रथ में सवार हो राजमार्ग से आते हैं। पुरवासियों को दर्शनानन्द देते हुए अपनी माताओं के महलों में जाते हैं। फिर प्रमोदवन में जाते हैं। सङ्गीत आदि सुनते हैं। रात्रि में सुन्दर शय्या पर शयन करते हैं। शयन-आरती सखियाँ करती हैं। इस प्रकार नित्य ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर ध्यान लगा कर बैठो। मन के द्वारा अपने दिव्य-सेवकरूप का चिंतन करके श्रीसाकेत-धाम में जाकर यह लीलायें ध्यान करते हुए सेवा करो; दास्यभाव, सखाभाव, वात्सल्यभाव अथवा सखीभाव आदि किसी भी भाव से भगवान के चरणों की सेवा भक्तजन कर सकते हैं। यह 'मानसिक-सेवा' का रहस्य परम दुर्लभ है। बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी इसे नहीं प्राप्त कर सकते। इसमें प्रभु की और गुरु की कृपा से ध्यान में कल्पना करते-करते सिद्धि हो जाती है। इस सेवा के फल से श्रीसीतारामजी हृदय में प्रत्यक्ष प्रकट हो जाते हैं। ऐसे ध्यान में सेवा करते-करते दिव्य-दृष्टि हो जाती है। फिर दिन-रात प्रभु के साथ वार्तालाप होने लगता है। इस लिए प्रभु की सेवा आसक्तिपूर्वक करो। अन्त समय में शरीर छूटने पर सेवा में मन रहने से जीव प्रभु के पास ही पहुँचता है। यह रहस्य सुनकर श्रीयोगानन्दजी ने इस मानसी-सेवा-ध्यान में मन लगाकर सिद्धि प्राप्त करली। हृदय-कमल खिल गया। दिव्य-दृष्टि हो गई तथा अपने पूर्वजन्म के चरित्रों का ज्ञान हो गया तथा अपने पूर्वजन्म के चरित्रों का ज्ञान हो गया। और

उन्होंने गुरुदेव की सेवा में ऐसा मन लगाया, जैसे दरिद्र पारस की पहिचान कर पाने से सोना बनता चला जाता है। उन्होंने सिद्धि प्राप्त की।

श्रीसेन भक्त

परम ज्ञानी एक जंगम स्वामी नाम के संन्यासी थे। वह पैदल अनेकों तीर्थों में वनों में भ्रमण करते हुए काशी आये। जब वह नाई से मुण्डन कराने लगे तो नाई ने बड़ी चतुरता दिखलाई। उसने स्वामीजी के सब सिर का मुण्डन करते समय शिखा छोड़ दी। नाई से उन्होंने कहा—इस चोटी को क्यों रख दिया? इसे भी मूड़ दो। नाई ने कहा–महाराज! मैं ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ? आपको हिन्दू से मुसलमान नहीं बनाऊँगा। यदि आपको चोटी कटानी ही हो तो किसी दूसरे मूर्ख नाई से कटवा लेना। मुझे तो आशीर्वाद दीजिये। अब और कहीं जाकर कुछ काम करूँ। संन्यासीजी अपनी हँसी करने वाले नाई से बिगड़े नहीं, तनिक भी क्रोध नहीं आया। वे इन्द्रियजित, शांत-ज्ञानी थे। उन्होंने प्रसन्न मन से नाई को उत्तर दिया—भाई! हम जो चोटी कटाते हैं, इसका मतलब मुसलमान बनना नहीं है। जगत् से सम्बन्ध तोड़ मुक्त होने का चिह्न है। और मुसल-मान भी तो चोटी रखते हैं—वह सिर पर न रखकर ठोढ़ी पर रखते हैं। इसी प्रकार नाई भी उत्तर-प्रतिउत्तर करने लगा। नाई ने कहा–यहाँ काशी में प्रसिद्ध जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी भी संन्यासी हैं, पर वे चोटी रखते हैं। झगड़ते हुए दोनों आश्रम पर न्याय के लिए चले। फिर संन्यासीजी ने कहा—जो संन्यासी होगा, वह चोटी नहीं रखेगा। चलो हमें दिखाओ। वह कैसे जगद्गुरु हैं जो चोटी रखते हैं। नाई ने कहा–चलो हमारा आपका न्याय वही करेंगे। आश्रम में आये तो दर्शन में देर थी।

दोनों बैठे रहे। जब आचार्य भगवान ने दर्शन दिया तो दोनों के मन की जानकर बिना प्रश्न किये ही हंस की भाँति क्षीर-नीर विवेक की सी वाणी बोले। आचार्य भगवान ने कहा—केवल चोटी कटाने से ही किसी को मुक्ति नहीं मिला करती। किन्तु ज्ञानी के लिए तो चोटी सिर पर हो चाहे न हो, दोनों में समान दृष्टि रहती है। परन्तु, जिसके गुरु की जैसी आज्ञा हो, उसे उसी मार्ग पर चलने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। हमारे गुरु वैष्णव संन्यासी हैं, उनकी आज्ञा है—चोटी रखो, सगुण भगवान की उपासना करो। तो हम वैसा ही करते हैं। इन संन्यासीजी के गुरु निर्गुण उपासक हैं चोटी नहीं रखते हैं, इनको वैसा ही करना चाहिए। यह वचन सुनते ही दोनों का भ्रम दूर हो गया। दोनों का मन आचार्य-चरणों का अनुरागी बन गया। उस नाई ने तो आचार्य भगवान को ही गुरु बनाने का निश्चय किया। उसने आर्त हो, प्रार्थना करके हठपूर्वक दीक्षा ली। उसने दीक्षा लेकर सन्त-सेवा का व्रत धारण किया। नाई का नाम सेन भगत था। यह अपने नगर से कमाने-खाने काशी आये थे, फिर दीक्षा लेकर अपने देश में चले गये। फिर राजा ने इनकी भक्ति की महिमा देखी तो वह राजा भी इनका शिष्य हो गया। और जंगम स्वामी संन्यासीजी ने आचार्य भगवान के शरण हो भक्ति का वरदान माँग लिया।

श्रीकबीर-चरित्र

अब श्रीकबीरजी के पवित्र चरित्र सुनिये जो कि भक्तों के हृदय को आनन्दित करने वाले हैं। श्रीकबीरजी ब्रह्माजी की तरह कमल से उत्पन्न हुए थे। किसी स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य से उनकी उत्पत्ति नहीं हुई थी। लहरतारा नाम का निर्मल जल वाला काशी में एक सरोवर था। जिसमें अनेकों कमल प्रफुल्लित

थे। उसी में एक विशाल कमल बहुत सुन्दर खिल रहा था उसी कमल के दलों पर एक सुन्दर बालक प्रकट हुआ। प्रातःकाल में स्नानार्थ उसी सरोवर पर एक जुलाहा अपनी पत्नी के साथ आया। उसके कोई पुत्र नहीं था, वह दोनों बड़े दुःखी रहते थे। अनेकों उपाय करके हार चुके थे। दिन-रात ईश्वर से प्रार्थना करते थे, पुत्र के लिए। वे दोनों मुसलमान होते हुए भी बड़े धर्मात्मा थे। उनका पुण्य बहुत था पूर्वजन्मों का। उन्होंने देखा कमल के ऊपर नन्हा-सा लेटा हुआ सुन्दर बालक खेल रहा है। ऐसा सुन्दर शिशु यहाँ कहाँ से आया, यह आश्चर्य करने लगे। सोचने लगे—जल पर कमल है, कमल के पतले दलों पर बालक कैसे ठहरा है? बालक खेलता-हँसता अपनी चञ्चलता से चरण का अँगूठा पकड़कर चूस रहा है। बालक के मुख पर अद्भुत प्रकाश छाया हुआ है और कमल हिल-हिलकर टेढ़ा होता है फिर भी बालक जल में नहीं गिरता है। जुलाहे की स्त्री ने समझा कि—हमें यह पुत्र ईश्वर ने ही दिया है। दोनों स्त्री-पुरुष प्रसन्न होकर उस बालक को गोद में लेकर अपने घर आये। कमल पर दिव्य-बालक मिला है—यह समाचार सुनकर देखने को लोगों की भीड़ लग गई। बालक को जब बकरी का दूध लाकर पिलाने लगे तो नहीं पिया। भैंस-गऊ का दूध पिलाया तो भी नहीं पिया। अन्न, दूध, जल आदि कुछ भी खाता-पीता नहीं था। फिर भी चन्द्रमा का सा तेज था, मानो चन्द्रमा ही अवतार लेकर पृथ्वी पर आ गया हो। इस प्रकार बिना अन्न-जल के तीन वर्ष का वह बालक हो गया, फिर भी शरीर मोटा-ताजा था। बालक हर समय प्रसन्न और गम्भीर मुद्रा में बैठा रहता था। जब और कुछ बड़े हुए तो एकदिन आकाशवाणी हुई कि—श्रीरामानन्दाचार्यजी से दीक्षा लो, उन्हें गुरु बनाओ।

यह आकाशवाणी सुनकर कबीरजी ने गुप्तरूप से दीक्षा ली। वह ऐसे कि—गङ्गा किनारे घाट पर रात्रि में सीढ़ियों पर लेट गये। श्रीरामानन्दाचार्यजी रात्रि में तीन बजे स्नानार्थ आये तो अँधेरे में उनका चरण लग गया। उन्होंने श्रीराम-नाम उच्चारण किया। कबीरजी उसे ही दीक्षा मान श्रीराम-राम जपने लगे और श्रीरामानन्दजी के शिष्यों जैसा वेष बना लिया। वैसे ही तिलक लगा लिए तथा गले में तुलसी-माला पहन ली। और काशी की गलियों में विचरते हुए 'जय हो गुरुदेव श्रीरामानन्दजी की' बोल-बोलकर श्रीराम-नाम कीर्तन करने लगे। काशी के विद्वानों ने जब यह सुना तो आश्रम पर आकर कहने लगे कि—एक मुसलमान लड़का कबीर है। वह कहता है कि—हमारे गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी हैं। उसने तुलसी-माला भी पहन ली है। क्या आपने उसे मन्त्र-दीक्षा दी है? ऐसे मुसलमानों को यदि आप दीक्षा देंगे, तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। यह अपवित्र म्लेच्छ कुमार्ग पर चलने वाले हैं। इनको मन्त्र-दीक्षा का अधिकार नहीं है। यह सुनकर आचार्य भगवान ने कहा—श्रीरामजी की आराधना में तो सबका समान अधिकार है। जीव-मात्र श्रीरामजी का भजन कर सकता है। जैसे पवित्र गंगाजल पर सब का अधिकार है। सभी गंगाजल ले सकते हैं। वाराह-पुराण में वर्णन आता है कि—मरते समय एक मुसलमान ने हराम कहा था तो उसे (ह) निकाल कर राम-नाम कहने का फल मिला था। वह संसार से मुक्त हो गया था, यह इतिहास प्रसिद्ध है। और शुक आदि पक्षी भी तो राम-नाम लेकर तर जाते हैं। परन्तु बिना श्रद्धा विश्वास के विद्वान् विचारे भ्रम में भटकते रहते हैं। कबीर को हमने दीक्षा नहीं दी फिर भी वह अपनी ओर से हमें गुरु मानकर रामजी की उपासना करता है तो सेव

दूर होते हुए भी चातक को कभी न कभी स्वाति बूंद देता ही है। ऐसे कहकर आपने शंख बजा दिया। सबको दिव्य-ज्ञान हो गया। सब मन ही मन पश्चाताप करने लगे कि—हम क्यों उसकी शिकायत ले के आये। जैसे कोई ब्रह्मर्षि धोखे में शराब पीकर पीछे लज्जित होता है। वे सब ब्राह्मण से क्षमा मांगकर अपने घरों में चले गये। उधर जब कबीरजी ने यह समाचार सुना कि आचार्य भगवान ने मुझे स्वीकार कर लिया है तो वे बड़े प्रसन्न हुए। और एक दूसरा चरित्र वर्णन करते हैं कि काशी में एक बड़ा धनवान व्यापारी लखन सेठ आया। उसका व्यापार समुद्र पार विलायतों में भी होता था। उसके पास अरबों की सम्पत्ति थी, परन्तु उसके पुत्र न होने से वह बड़ा दुःखी था। वह पत्नी के सहित आश्रम पर आया, जैसे रोहिणी देवी के साथ चन्द्रदेव ही आये हों वह ऐसा जवाहरात पहने चमक रहा था। उसने थाल भरकर हीरा-मोती मणियां आचार्य भगवान के भेंट करके कुटी के द्वार पर रक्खीं। आचार्य भगवान ने भीतर से ही आज्ञा देकर श्रीअनन्तानन्दजी के द्वारा वह हीरा जवाहरात सब उसके देखते-देखते गंगाजी में फिकवा दिये। पांच दिन वह बैठा रहा पर आचार्य भगवान का दर्शन नहीं मिला। तब उसका धनी होने का जो (घमण्डरूपी प्रेत था) वह उतर गया। तब आर्त्त होकर दीनता से प्रार्थना करने लगा कि हे नाथ! मेरा अपराध क्षमा करें। मेरी भूल को भुलाकर कृपा पूर्वक दर्शन दीजिये। उसकी दीन-वाणी सुन आचार्य भगवान ने दयावश दर्शन दिया। दर्शन करते ही उसका मोह अज्ञान दूर हो गया। उसके हृदय में ज्ञान-ज्योति जल उठी हृदय-कमल खिल गया। बार-बार आचार्य भगवान का सुन्दर मुखचन्द्र देखकर तृप्त नहीं होता था। ऐसा वह प्रभु के रूप का पुजारी

बन गया। आचार्य भगवान ने कहा—तुम्हारी जो इच्छा हो वरदान माँग लो, तब सावधान हो वह लखन धनी बोला—हे नाथ ! हम पुत्र की कामना से आपके पास आये थे, किन्तु आपका दर्शन करते ही हमारी कामना ही नष्ट हो गई। अब तो यह सारा संसार ही झूंठा झगड़ा मालुम होता है। अब तो आप कृपा कर मुझे अपना शिष्य बनाकर भव-सागर से पार कर दीजिये। आचार्य भगवान ने कृपा कर उसे दीक्षा दे दी। वह सेठ श्रीरामजी की उपासना करता हुआ अपने बल्लभी नाम की नगरी में चला गया। पति-पत्नी भक्त हो गये। दो वर्ष के भीतर ही उनको पुत्र प्राप्त हुआ। उनकी मनोकामनाएँ सभी पूर्ण हो गईं। सेठजी ने पुत्र का नाम श्रीरामानन्ददास रक्खा। श्रीरामानन्दाचार्यजी की ऐसी ही महिमा है। आज भी कोई श्रीरामानन्दाचार्यजी का ध्यान करते हैं उनकी भी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अब दूसरा चरित्र सुनिये—काशी में दो गन्धर्व एक ऋषि के शाप के कारण गुप्तरूप से रहा करते थे। वे बड़े विलासी थे वे दिन-रात विषय भोगों की इच्छा करते रहते थे। काम की अग्नि उनकी कभी बुझती ही नहीं थी। उनमें एक तो, एक सुन्दरी वैश्य कन्या पर मोहित था और दूसरा ब्राह्मण की कन्या पर आसक्त था। दोनों कन्या बड़ी सुन्दरी थीं, उनके पास छिप-छिपकर गन्धर्व जाते और प्रेम दिखाते हुए दिव्य-वस्तुएँ ला-लाकर देते थे। वे फूलों से घर भर देते थे और मिठाइयां लाते थे पर वे कन्या डर के मारे कोई वस्तु नहीं लेती थीं। जहां-जहां वे कन्या जातीं वहीं-वहीं वह गन्धर्व भी गुप्तरूप से साथ जाते थे। और जिस दूल्हा के साथ सगाई निश्चित की जाती थी। उसे वे सर्प से डसा कर समाप्त कर देते थे। बड़े-बड़े मंत्र-तन्त्र वाले सब उपाय करके हार चुके थे। कन्याओं के

पिता बड़े दुःखी थे। दोनों परिवार एक ही प्रकार के दुःख से दुःखी होने के कारण परस्पर विचारकर उपाय किया करते थे। किसी के कहने से वे आश्रम पर आये और अपनी विपत्ति करुणा पूर्वक सुना दी। दोनों कन्याएँ परिवार के सहित आकर प्रार्थना करने लगीं तब—दया करके आचार्य भगवान ने दर्शन दिया और कृपा-दृष्टि करके उनका कष्ट हरण कर लिया। और आकाश की ओर देखा—वे दोनों गन्धर्व प्रकट हुए उन गन्धर्वों के शरीर में जलन होने लगी। वे देवतापन का गर्व त्यागकर क्षमा मांगने लगे। आचार्य के दर्शन करते ही उनकी काम-वासना का समुद्र सूख गया। समुद्र में जैसे मगर, मछली आदि होते हैं वैसे ही पाप भी वासना के साथ नष्ट हो गये। वे दोनों अब मुक्ति मांगने लगे। हे प्रभो ! हमने देव शरीर पाया परन्तु इस सुखमय शरीर में दिन-रात गन्दी कामदेव की पीड़ा बनी रहती है हम देवताओं को और सब कुछ प्राप्त हो जाता है, परन्तु वैराग्य नहीं प्राप्त होता। नर्क के कीड़े की तरह सदा बुद्धि काम से मलिन रहती है। पीछे पुण्य क्षीण होने पर पृथ्वी पर फिर जन्म लेना पड़ता है। हमारे इस जीवन को धिक्कार है। हमें सच्चा सुख तो एक क्षण के लिए भी नहीं मिलता। हे जगद्गुरु ! आप ही सच्चा सुख दे सकते हैं। आप कृपाकर हमें अपना शिष्य बनाकर वही ब्रह्मानन्द प्रदान कीजिये। उनकी विनती सुन आचार्य भगवान प्रसन्न हो गये और दीक्षा देकर तत्वज्ञान का उपदेश दिया। दिव्य-साकेत धाम का रहस्य बताया और उस नित्य सुखमय धाम के मिलने का उपाय यही मन्त्रराज है। श्रीराम-मन्त्र के आधार से ही सूर्यमण्डल भेद कर भक्तजन परमधाम साकेत जाते हैं। इस प्रकार वे दोनों गन्धर्व जब चले गये तब विप्र कन्या और वैष्णव कन्या दोनों

सुखी हो गई। परिवार सहित सब वैष्णव हो गये। दुःख दूर हो गया और महान् धन के समान मन्त्र उपदेश भी मिल गया। जैसे किसी रोगी का रोग भी मिट जाय और खजाना भी मिल जाय।

श्रीनरहर्यानन्द-चरित्र

एकदिन एक अत्यन्त सुन्दर सुकुमार बालक आया, उसके साथ बहुत से ब्राह्मण भी थे। जैसे कमल के साथ भ्रमर उड़े चले आये हों। उन ब्राह्मणों ने आचार्य भगवान से कहा—इस बालक को स्वीकार कर इसे दीक्षा दीजिये। यह मंत्र-दीक्षा का अधिकारी है। इस बालक ने जन्म लेते ही भजन प्रारम्भ कर दिया था। यह ज्ञानी बालक हठ-पूर्वक ईश्वर का भजन सदा करता रहता है। आचार्य भगवान ने उस बालक पर कृपा करके दीक्षा दी और श्रीअनन्तानन्दजी को बुलाकर कहा—इसे मैंने दीक्षा दे दी, किन्तु इस बालक को अपने पास रखकर समस्त शिक्षा आप दें। आपका यह बालक नया नहीं प्राचीन बालक है। यह सनत्कुमार का अवतार है तब श्रीअनन्तानन्दजी ने दिव्य उपदेश दिया। वह बालक आश्रम पर रहकर अखण्ड साधना करने लगा। उसके साथ जो ब्राह्मण आये थे वह सब लौट गये। उनकी व्याकुलता कहने में नहीं आती। उस बालक का नाम नरहर्यानन्द रखा गया। एकदिन उस ज्ञानी बालक ने हाथ जोड़कर आचार्य भगवान से प्रश्न किया कि—हे प्रभो! श्रीरामजी के चरण-कमलों में प्रेम किस साधना से उत्पन्न होता है। यह सुन प्रसन्न मन से आचार्य भगवान ने कहा—तुम्हारी बुद्धि सराहनीय है और वचन अनमोल हैं।

अर्थपञ्चक उपदेश

ऐसा ही प्रश्न एकबार श्रीहनुमानजी से श्रीअगस्त्य

ऋषि ने किया था। वही गुप्त रहस्य मैं तुम्हें सुनाऊँगा। उसे अर्थपंचक ज्ञान कहते हैं। पहले 'प्राप्य' का रूप जानना चाहिए फिर 'प्राप्ता' का शुद्ध रूप समझे और 'प्राप्ति के उपाय' तथा चौथा 'प्राप्ति का फल' और पांचवां 'प्राप्ति के विरोधी' तत्वों को जाने। इन्हीं पांच रहस्यों को अर्थपंचक ज्ञान कहते हैं इस रहस्य को समझाने से श्रीरामजी के चरणों में प्रेम उत्पन्न हो जाता है। इसके बिना नियम साधन करने वालों को प्रेम प्राप्त होना दुर्लभ होता है। अब पहले 'प्राप्य' रूप मैं सुनाऊँगा। जिसे समझने से मोह नष्ट हो जाता है। 'प्राप्य' अर्थात् पाने के योग्य अनादि ब्रह्म श्रीरामजी हैं वही रसमय सच्चिदानन्द पूर्ण भगवान हैं। वेदों से जानने योग्य वही हैं सबके साक्षी, सबके ईश्वर, सबके पूज्य, स्वतन्त्र परात्पर ब्रह्म हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के रचने वाले, ब्रह्मा-विष्णु-महेश के द्वारा वन्दनीय, सबको गति देने वाले हैं। वही जानकीनाथ, नित्य किशोर रूप में रहने वाले, दो भुजा वाले, धनुषधारी, सन्तों के रक्षक, चतुर्व्यूह के स्वामी, स्वामी बनाने के लायक, परम सुन्दर प्रेम-समुद्र में रहने वाले, परम कोमल हैं। वह प्रभु देने वाले औरों को दुर्लभ हैं, सबमें व्यापक, अनाथों को शरण देने वाले, रक्षार्थ अवतार लेने वाले, दयालुता, सुशीलता, उदारता आदि गुणों के भण्डार, पुरुषोत्तम, सब दोषों से रहित अविनाशी हैं। ऐसे कमल-लोचन भगवान श्रीरामजी साकेत धाम में सदा रहते हैं। उनको पाये बिना जीव को कभी विश्राम नहीं मिलता। करोड़ों कल्प तक चाहे संसार के चक्र में पड़ा रहे। अब 'प्राप्ता' श्रीरामजी की प्राप्ति करने वाले जीव को कहते हैं। यह जीव मोक्ष का इच्छुक है, साक्षी ब्रह्म के लायक है, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर और स्थूल शरीर, इन तीनों शरीर के भीतर रहते हुए भी अल

में कमल की तरह सबसे अलग रहता है। यह इन्द्रियों से और पञ्चतत्वों में पर आत्मा है। यह चैतन्य है, अणु है, और विकार रहित है, अक्षय है यह जागृत अवस्था, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं से परे है। यह दिव्य-शक्तियों से पूर्ण पवित्र है। यह सच्चिदानन्दघन प्रभु का अंश है, दो भुजा वाला, प्रभु का सदा पार्षद (सेवक) सदा किशोर रूप में रहने वाला नित्य प्रभु की सेवा का अधिकारी है। यह जलने-कटने वाला नहीं एकरस प्रभु के प्रेम का आनन्द अनुभव करने योग्य है। यह जीव सदा ईश्वर के आधीन है। जैसे हार आदि आभूषणों को मनुष्य चाहे जैसे धारण करे, वैसे ईश्वर जैसे चाहे इनसे सेवा ले। यह जीव माया के चक्र में पड़कर अपना स्वरूप भूलकर भगवान से विमुख होकर अपनी चतुरता लगाता हुआ विषयों में दुःख पा रहा है। इस प्रकार अपने स्वरूप को जानकर भ्रम अन्धकार के अभ्यास को त्याग दे, बिना स्वरूप ज्ञान के श्रीराम-मिलन की प्यास नहीं लगती। अब प्राप्ति का उपाय मन लगाकर करे तो श्रीरामजी मिल जायें और सब भ्रम-जाल कट जाय। जीव को चाहिए कि सब जीवों पर दया रक्खे तथा सबको भगवान का रूप ही देखे। कभी किसी की निन्दा नहीं करे। अपने प्रभु के प्रेम में विरह-दशा बढ़ावे, गुरु को साक्षात् भगवान ही समझे तथा गुरु की आज्ञा कभी न टाले। भगवान की और भक्तों की सेवा निष्काम-भाव से सदा करे। भेद-भाव न करे। सन्तों के भक्तों के दोष न देखे। भगवान के प्रसाद के बिना और कुछ कभी न खाये। श्रद्धापूर्वक सुन्दर भक्तिमय ग्रन्थों को मन लगाकर पढ़े। इस प्रकार दृढ़ नियम बनाकर नवधा-भक्तिको प्रेमपूर्वक अपनावे। फिर राम-नाम जप करे। नाम और प्रेम की महान् रगड़ लगने से श्रीरामजी प्रकट हो जाते हैं। जैसे लकड़ी की रगड़ से

अग्नि उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार निश्चय दृढ़ करके प्रभु-प्राप्ति का उपाय करे, इस रहस्य को जाने बिना अन्धे की तरह मनुष्य अनेकों साधनों के वन में भटकता रहता है। अब श्रीराम जी की प्राप्ति का फल कहता हूँ। कोई श्रीराम-मन्त्र या श्रीराम-नाम जप-तप करके प्रभु का साक्षात् दर्शन करले तो फिर उस दर्शन का फल क्या होगा ? संसार के भोग, सुख-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र आदि प्रभु से नहीं माँगना चाहिए। उसे तो संसार में जब तक जीवन रहे, भजन करते हुए अन्त में सूर्यमण्डल भेद कर—प्रकृति-मण्डल को लांघकर विरजा नदी में स्नान कर कारण, सूक्ष्म आदि शरीरों को त्याग के श्रीसाकेतलोक में जाने का वरदान प्रभु से माँगना चाहिए। साकेत धाम में सात आवरणों से युक्त श्रीराम-भवन है। वहाँ कल्पवृक्ष के नीचे, मणियों के मण्डप में, दिव्य-सिंहासन पर सीताजी के सहित श्रीरामजी विराजते हैं। वहाँ के भक्तों के आनन्द के लिए अनेक लीलाएँ करते रहते हैं। सर्वदा ऐसे धाम में प्रभु के साथ रहकर सेवा करना ही भक्त को ब्रह्मानन्द से अधिक सुख प्रदान करता है। ऐसे सुख की इच्छा ब्रह्मा और शङ्करजी भी करते हैं, पर नहीं पाते। उसी साकेत में सर्वदा सुख से निवास होता है। महाप्रलय में भी कभी फिर विनाश नहीं होता। किन्तु, ऐसा सुखद फल अन्य तपस्याओं से नहीं मिलता, केवल श्रीगुरुदेव तथा प्रभु की कृपा से सुगम होता है। प्रभु-प्राप्ति के बाद के इस फल को जाने बिना मनुष्यों को नर्कवत् संसार का जन्म-मरण ही प्रिय लगता है। अब प्रभु-प्राप्ति में जो विरोधी हैं, उन बाधा देने वालों को भी समझ लो। माया और अहंकार से मिलकर मन और बुद्धि बिगड़ कर जीव अपने को ही ब्रह्म मान बैठते हैं। अथवा अपने को शरीर मान लेते हैं। आत्म-तत्व को समझ

ही नहीं पाते। यह बाधक विचार है। भगवान के भक्तों से शत्रुता करना, सन्तों के अपराध करना, अपमान करना, बड़ों की आज्ञा न मानना। अन्य देवी-देवताओं को इष्ट बना लेना, भगवान को साधारण समझ, त्यागकर देवता की पूजा में लगना। ससारी असत् भक्ति से विमुख करने वाले ग्रन्थों से प्रेम करना, वेदों की निन्दा करना। अपने गुरुदेव को मनुष्य मानकर पूजा-प्रणाम न करना। मनमानी करना, ममता रखना, असत्य बोलना, एकादशी व्रत न करना, खोटे कर्म करना। यह सब अधर्म ही विरोधी हैं—भगवान के मिलन में। इनको पहिचान कर इन्हें त्याग देना चाहिए। जैसे युद्ध में क्रोध करके वीर-पुरुष शत्रुओं का नाश करता है, वैसे ही भक्त इन विरोधियों का विनाश करे। यह पाँच रहस्य 'अर्थपंचक' ज्ञान हैं। इन्हें समझकर इन पर हृदय में दृढ़ नियम बनाकर चले तो शीघ्र ही अक्षय (अविनाशी) वृक्ष के समान प्रभु के चरणों में प्रेम उत्पन्न हो जायगा। यह मर्म सुनकर श्रीनरहर्यानन्दजी प्रेमामृत समुद्र की धारा में निमग्न हो गये। किन्तु उसी समय प्रभु के दर्शनों की प्यास भी लग पड़ी। चातक के समान व्रत धारणकर श्रीराम-दर्शनरूपी स्वाति बूंद के लिए व्याकुल हो उठे।

लययोगी पर कृपा

एकबार बहुत से सन्तों के साथ श्रीहरिनाथ नाम के एक लययोगी आये। उनको पहले कुछ समाधि लगाने से दिव्य दृष्टि हो गई थी। किन्तु हृदय की आँखों में किसी दोष से दीखना बन्द हो गया। वे अब आँखें खोल नहीं पाते थे। उनको रात-दिन बड़ी वेदना होती थी। जैसे शूरवीर घायल होके तड़पता हो। उन्हें कोई हृदय के नेत्रों का वैद्य नहीं मिलता था। वह खोजते-खोजते थक चुके थे। कहीं महात्माओं से आचार्य की

महिमा सुनी और इस आश्रम पर आकर विनय करने लगे कि—हे नाथ ! दर्शन दीजिये । उनको अत्यन्त आर्त्त जानकर आचार्य भगवान ने दर्शन दिया । आचार्य भगवान का दर्शन कर श्रीहरिनाथ बोले कि—प्रभो ! आपका नेत्रों से तो दर्शन किया, किन्तु वे दिव्य-नेत्र अब कहाँ हैं कि जिनसे आपकी दिव्य-छवि देखकर जन्म सफल करूँ । आचार्य भगवान ने कहा—आपके दिव्य नेत्र कैसे नष्ट हुए, इसका रहस्य सुनो । जो भीतर के बांये नेत्र से अधिक देखता है उसके फूली रोग हो जाता है । और जो दाहिने नेत्र से अधिक काम लेता है, उसके मोतियाबिन्द हो जाता है । किन्तु जो दोनों नेत्रों से बराबर देखता है उसकी दृष्टि नहीं जाती है । बांया नेत्र खुलने पर वैराग्य बढ़ता है, दाहिना नेत्र ज्ञान-विज्ञान बढ़ाता है । जागृत में, स्वप्न में, सुषुप्ति में बराबर दोनों नेत्रों का दिव्य प्रकाश बना है । उसी दृष्टि से तुरीयावस्था में श्रीरामजी की दिव्य-धाम की लीलाओं का दर्शन भी होता है । ऐसे कहकर आपने श्रीहरिनाथ मुनि के मस्तक पर हाथ रख दिया । तत्काल उनके दिव्य-नेत्र खुल गये । उन्होंने अपना सद्गुरु आचार्य भगवानको बनाकर उपदेश लिया और सनाथ होकर अपने आश्रम पर चले गये । एकबार आकाश मार्ग से एक परम सिद्ध महात्मा गोहिननाथजी आये । वे आकाश से ऊपर से फूल ऐसे वर्षाने लगे—जैसे मेघ बूंदों की वर्षा करता है । वह अत्यन्त प्राचीनकाल (कई सौ वर्ष) के योगी थे । हिमालय में रहकर, विषयों से पूर्ण विरक्त होकर साधना करते थे । उनकी जटायें बड़ी-बड़ी थीं, जैसे घटायें छाई हों । उनकी आँखों की पलकें इतनी लम्बी थीं कि गालों तक लटक रही थीं । वे ध्यान में आचार्य भगवान के अवतार का रहस्य जानकर दर्शनार्थ आये थे । किन्तु दर्शन में विलम्ब देखकर वे द्वार पर बैठकर प्राणा-

याम करने लगे। सहित प्राणायाम, शीतली, उज्यायी, सूर्यमर्द, भस्त्रिका, भ्रामरी आदि सभी प्राणायाम क्रम-क्रम से करके समाधि लगाई कि उसी समय आचार्य भगवान ने शंख भीतर से बजा दिया। शंखध्वनि सुनते ही उनको ध्यान में दिव्य-प्रकाश का दर्शन हुआ और दिव्य-लोक देखा। जब आश्चर्य करते हुए आँखें खोलीं तब आचार्य भगवान ने दर्शन दिया। और आज्ञा दी कि—योगबल से जो बड़ी लम्बी आयु ही चाहते हैं, उनको मुक्ति मिलना वैसा ही दुर्लभ है जैसे मूर्ख मनुष्य स्वर्ग का अमृत नहीं प्राप्त कर सकता। कोई योगी—योग-सिद्ध करके और बड़े-बड़े कार्य चाहे करले, पर भक्ति के बिना मन कामनाओं से रहित नहीं होता। बिना निर्मल मन के परमात्मा नहीं मिलता। बिना उसके मिले पूर्ण आनन्द नहीं प्राप्त होता। अपनी साधना के बल से जो सिद्धि पाता है, वह साधना के ही आधीन रहती है। किन्तु जो श्रीरामजी की कृपा से सिद्धि होती है, वह स्थिर होकर मोक्ष देती है। तब मुनिराज श्रीगोहिननाथजी ने आचार्य भगवान के चरणों में मस्तक रख दिया और बोले—आप साक्षात् श्रीरामजी का ही स्वरूप हैं। मैंने अपने ध्यान में सब रहस्य जान लिया है। आप कृपा करके वही प्रेम की सिद्धि दे दीजिये। मेरा मन भी भक्ति अमृतरस का पान करना चाहता है। अपना मन्त्र देकर आप मुझे शिष्य बना लीजिये। मेरा यह योग ही अब मुझे रोग-सा लगता है, इसे छुड़ा दीजिये। श्रीआचार्य भगवान ने विनय मानकर तारक श्रीराम-मन्त्र प्रदान किया। माया का भ्रम-यन्त्र टूट गया। वे प्रेम-रस के वश में हो गये। श्रीगोहिन मुनिजी तत्काल भक्ति प्राप्त करके श्रीगुरुदेव से प्रश्न करने लगे कि—महाराज! भक्तों के लक्षण कृपा करके और सुनाइये तो मैं वैसे ही अपने आचरण बनाऊँ।

भगवान ने कहा—भक्तों के लक्षण समुद्र के समान अपार हैं। भक्त लोग सोने को मिट्टी समझते हैं। चिन्तामणि को पत्थर मानते हैं। चक्रवर्ती सम्राट् को कंगाल नौकर-सा समझते हैं, कल्पवृक्ष को लकड़ी का ढेर-सा समझते हैं। भक्त-लोग सूर्य को जुगनू-सा और महासमुद्र को चुल्लुभर जल-सा समझते हैं। वे संसार को तिनका-सा समझते हैं तथा अपना शरीर भी उन्हें बोझ-सा लगता है। और भक्तों के हृदय में भगवान श्रीरामजी ऐसे विराजते हैं जैसे सरोवर में हंस, तथा आकाश में जैसे चन्द्रमा शोभित होता है। ऐसे भक्तों के दर्शन से ही भक्ति उत्पन्न होती है। उनके दयारूपी कण्ठी गले में तथा मस्तक पर शान्ति-रूपी तिलक होता है और राम-नाम जपरूपी भस्म सारे अंगों में लगाते हैं तथा मन की स्थिरतारूपी मृगछाला और वियोग ही उनका योग तथा विरह ही सिद्धि और सर्वदा प्रेमी भक्तों के सत्सङ्ग में रहते हैं। भक्तों के हृदय में महान् दीनता रहती है तथा उनके ऐसे अनन्त लक्षण होते हैं जिन्हें कहना ही असम्भव है। यह सुन श्रीगोहिननाथ मुनि बड़े प्रसन्न हुए और आज्ञा लेकर अपने स्थान पर चले गये।

बीनी—उद्धार

काशी में एक बीनी नाम की ब्राह्मण कन्या थी। उसने यन्त्र-मन्त्र में बड़ी सिद्धि प्राप्त कर ली थी। यक्षिणी को उसने वश में कर लिया था। वह सुन्दरी भी थी और जवानी के मद में मस्त रहती थी। रोज नया-नया सुन्दर पुरुष खोजा करती थी। रात में एकबार वह पक्षी का रूप बनाकर आकाश में घूम रही थी। उसने एक राजा के महल को देखा। छत पर बड़ा सुन्दर राजकुमार सो रहा था। वह उसे देख मोहित हो गई और यक्षिणी की सहायता से वह पलंग सहित उसे उठाकर

अपने बगीचे में ले गई और उसे जगाकर प्रेम दिखाकर उसके साथ रमण करने लगी। इधर पाँच दिनों तक राज-परिवार के सब लोग खोज-खोजकर थक गये। वे आचार्य भगवान की महिमा सुनकर दुःखी हो रोते हुए आये और अपनी सब विपत्ति सुना दी। तब आचार्य भगवान ने दया करके सारा रहस्य बता दिया कि—बीनी नाम की स्त्री सिद्धिबल से पलँग सहित उसे ले गई है। उसके स्थान का पता बताकर कहा कि—दिन में तो वह राजकुमार को सुला देती है और रात में औषधि सुंघाकर जगा लेती है। दिन में वह बीनी घूमने चली जाती है, उसी समय उसके बगीचे के बीच बनी कोठरी में जाकर जगा लाना। किन्तु, ऐसे नहीं जगेगा। उसकी शय्या के सिराहने की ओर बिछौने के नीचे एक दिव्य फूल रक्खा होगा। जब वह उसे सुंघायेगा तब जगेगा, और कोई उपाय नहीं है। राज-परिवार के लोग उसी बगीचे में गये और दिन में जाकर देखा तो वहीं राजकुमार सो रहा था, फूल भी बिछौने में मिला उसे सुंघाकर जगा लाये। बड़ी प्रसन्नता से खूब धन दान किया और बाजे बजाये तथा गीत गाये जाने लगे। उधर जब बीनी बगीचे में आई तो राजकुमार को न देखकर यक्षिणी से पता लगा कि श्रीरामानन्दाचार्यजी ने सब भेद बता दिया, तो वह क्रोधित हो उठी। आश्रम पर आकर उसने मारण-मन्त्र का प्रयोग किया। किन्तु जगतारण भगवान का तेज देखकर मारण-मन्त्र का देवता स्वयं कुरोग से मरने लगा। उलटे उस बीनी के तन-मन में बड़ी भयानक जलन होने लगी। वह रोने चिल्लाने लगी और उसकी आंखों के आगे नर्क के सब दृश्य प्रत्यक्ष दीखने लगे। भयङ्कर यातनायें देखीं—पापों का कष्ट भोगना पड़ेगा। अपने कुकर्मों का परिणाम बड़ी पीड़ायें देख रक्षा-करो रक्षा-करो ऐसे पुकारने

लगी। जैसे गर्भ में जीव रोता है। वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि—हे जगद्गुरु प्रभो! दुष्टता को क्षमा कर दो। हे नाथ! इस बार मुझे इस कष्ट से बचा लो। अब कभी ऐसा पाप नहीं करूँगी। उसे आर्त्त हो विनती करते देख आचार्य ने दया की और उनकी शरीर की जलन को दूर कर दिया। तब वह शान्त होकर बोली—हे प्रभो! मुझे उपदेश देकर मेरा उद्धार कर दीजिये। तब आचार्य भगवान ने कहा—तूने दुष्ट आचरण किया है। तुझे पता नहीं, ऐसे कुकर्मों से जो सुख होता है वह मीठा जहर पीने के समान है। विषयों में जो क्षणिक सुख मालुम होता है, उसके परिणाम में बहुत वर्षों तक नर्क यातना भोगनी पड़ती है अब तू विन्ध्याचल पर्वत पर जाकर तपस्या कर और अखण्ड राम-नाम जप कर। तब तेरे जन्म-जन्म के पाप नष्ट होंगे। और भगवान की भक्ति करके मनकी वासना दूर कर, यह वासना बहुत दुःख देती है। बीनी आज्ञा मानकर राम-नाम जपती हुई विन्ध्याचल पर जाकर तप करने लगी।

श्रीविट्ठल वेदान्ती

एक विट्ठलजी वेदान्ती आचार्य भगवान की महिमा सुनकर दर्शनार्थ काशी आये। उनको दो दिनों तक दर्शन नहीं मिला तब आर्त्त स्वर से सामवेद का गान करने लगे। आर्त्त ध्वनि सुनकर आचार्य भगवान ने दर्शन दिया। तब श्रीविट्ठल पण्डितने प्रणाम करके प्रश्न किया कि—हे प्रभो! परमात्मा ने संसार को रचकर उसमें प्रवेश किया और सत्य तथा विनाशशील होकर सबके हृदय में साक्षीरूप से कैसे रहते हैं। इन वेद की ऋचाओं पर ज्यों-ज्यों विचार करता हूँ त्यों-त्यों मेरी बुद्धि कुंठित होती जाती है। ऐसे शरीर के लक्षण तथा आत्मा के लक्षणों पर विचार करके भ्रम में पड़ रहा हूँ। आचार्य भगवान ने कहा—

आपने पक्ष-विपक्ष को लेकर गुण-दोष बुद्धि में रखकर बुद्धि को बिगाड़ डाला है। अपनी प्यारी बुद्धि का मोह त्यागकर सत्य तत्व का साधन करके अनुभव कीजिये। जो निर्गुण निराकार ब्रह्म था, उसे भक्तोंने भक्तिके बलसे सगुण बना दिया। लीलामय भगवान की रचना यह संसार है। भक्त और भगवान का यह विनोद है। मनुष्यों के जीवन का फल भगवान की सेवा है ऐसा उपदेश अपने आचरण द्वारा श्रीहनुमानजी और शेषजी दे रहे हैं। देही और देह को धारण करने वाला जीव दोनों का भेद वाणी से कहा जाता है और जीव को अणु तथा ब्रह्म को महान्, वेदों में बताया गया है। लौकिक तर्क और न्याय शास्त्र श्रीगौतम ऋषि की विचित्र रचना है। ज्ञान की दृष्टि में वह भ्रम जाल है। यह सुनकर श्रीविट्ठलजी ने हाथ जोड़कर कहा–हे प्रभो! एक शङ्का मेरी और है। यह सारा संसार जब भ्रममय है तो इसे ईश्वर ने बनाया ही क्यों? हम सब जीवों को ऐसी विपत्ति और बन्धन में क्यों डाला? यह सुनकर आचार्य भगवान ने हँसकर कहा—तो इसका रहस्य भी सुनो। जब पहले प्रलय हुई थी तब समस्त जीव विराट् ब्रह्म के पेट में सो गये। वे जीव कर्म आसक्ति से अनेकों स्वप्न देखते हुए बड़े दुःखी थे। तब भगवान की दासी के समान वेद की ऋचायें मूर्तिमान होकर प्रभु को जगाने लगीं। जीवों की दशा देख दयावश वे सब व्याकुल हो रही थीं। वे बोलीं–हे विराट् भगवान! आप कृपा कर जागिये। और सुन्दर संसार की रचना कीजिये। निद्रा त्यागकर आंखें खोलिये। यह सब जीव सोते–सोते भी आपके उदर में भ्रमित होकर व्याकुल हो रहे हैं। यह जीव बेचारे कष्ट पा रहे हैं। इनके लिए संसार रचकर इन्हें सुखी कीजिये। यह मनुष्य का शरीर पाकर पुण्य करें तथा ज्ञान और

भक्ति प्राप्त कर आत्मा की उन्नति करें और मुक्त होकर अक्षय आनन्द करें। तब भगवान यह विनय सुन जागे और सुन्दर संसार की रचना की तथा जीवों के उद्धार के लिए कृपा की दृष्टि करके सब पदार्थ रचकर उन्नति के लिए सब व्यवस्था कर दी। अब कोई भी जीव नास्तिक-पन त्यागकर श्रीरामजी की शरण में आता है तो भगवान संसार की रचना कर अपने महान् परिश्रम को सफल मानते हैं। जगत् की रचना का यही उद्देश्य है कि जीव भगवानको प्राप्तकर अक्षय सुख मुक्ति पावे। भगवान शरणागत जीव को देखते ही प्रसन्न हो जाते हैं। वह उसके प्रेम को ही महान् भेंट-पूजा मान लेते हैं। जैसे कोई राजा को भेंट में अनमोल मणियों की माला दे तो वह प्रसन्न हो उठते हैं। कोई महात्मा यदि एक जीव को ज्ञान सिखाकर ईश्वर के सन्मुख कर देते हैं तो उन्हें कौस्तुभमणि के दान का फल प्राप्त होता है। यह विशाल संसार जीवों के कल्याण के लिए प्रभु ने बनाया है। यह अनादि सृष्टिचक्र सदा ही चलता रहता है। फिर प्रलय और फिर रचना होती है इसका कोई आदि अन्त नहीं है। हाँ संसार के स्वार्थमय काम को छोड़कर जो केवल श्रीसीताराम की उपासना करते हैं। वे प्राणी परमधाम को प्राप्त होते हैं। वह साकेत आनन्दमय धाम है। प्रलय होने पर नाश नहीं होता, वहीं सदा सुख से रहा जा सकता है। वहीं नित्य मुक्त भक्त रहते हैं। अक्षय अविनाशी आनन्दमय प्रभु की लीला का आनन्द उन्हें मिलता है। वहाँ का आनन्द समुद्र के समान है। और सारा आनन्द एक बूंद के समान है। और विशाल वैभव में यह साकेत तीन भाग तथा चौथाई भाग में सारा ब्रह्माण्ड है यह सब रहस्य सुनकर कि—जीवों की उन्नति के लिए सृष्टि हुई तो श्रीविट्ठल पण्डित का सारा सन्देह दूर हो

गया। चरणों में पड़कर प्रेम से बोले—हे नाथ ! मुझे अपने ज्ञान-विज्ञान का बड़ा घमण्ड था किन्तु जैसे ऊँट पहाड़ के नीचे जब तक नहीं जाता तब तक वह समझता है कि मुझसे ऊँची कोई चीज नहीं होती। कृपा करके मुझे अपनी शरण में लेकर दीक्षा दीजिये और अब सदा सेवा में रखकर चरणों से अलग मत कीजिये। प्रार्थना स्वीकार कर दयालु आचार्य भगवान ने दीक्षा देकर सभी फल (मुक्ति-भक्ति) आदि दिये। पूर्ण कृपा करके इनका श्रीभावानन्द नाम रक्खा। इन भावानन्दजी ने अपने देश में आकर भक्ति का प्रचार कर लाखों जीवों का कल्याण किया। इन्हीं के पुत्र विश्व विख्यात श्रीज्ञानदेवजी हुए जिन्होंने ज्ञानेश्वरी गीता बनाई। अब दूसरा चरित्र सुनिये।

श्रीधन्ना भक्त

एक खीरी जिले का रहने वाला जाट था। उसका पुत्र बड़ा ही सुन्दर तथा समस्त दिव्य-गुणों से युक्त था। उसका नाम था—'धन्ना' वह ऐसा सुकुमार और मनोहर था मानो कामदेव का अवतार हो। उस ग्राम में एक ब्राह्मण तीर्थयात्रा करता हुआ आया। उसके पास धन्ना बालक खेलता हुआ जा पहुँचा। ब्राह्मण ने शालिग्राम भगवान को भोग लगाया पूजा की धन्ना पूजा आरती देख बड़ा प्रसन्न हुआ और वह मूर्ति माँगने लगा। बालक का हठ देखकर ब्राह्मण बोला—यह भगवान हैं यह बड़े नटखट हैं इनको लेकर क्या करोगे। रोज इन्हें भोजन कराना पड़ेगा। धन्ना बालक ने कहा—इनको रोज बड़ी मोटी-मोटी बेझर की रोटी खिलाया करूँगा। बालक को रोते और हठ करते देख ब्राह्मण को दया आ गई उसके पास दो शालिग्राम थे एक उनमें से दे दिया और वह चला गया। जब धन्ना घर में लाकर रोटी भोग लगाने लगा। तो शालिग्राम ने कुछ भी

नहीं खाया। बालक भी भूखा रह गया। रोज भोग थाल रख प्रार्थना करता था। ऐसे पांच दिनों तक धन्ना बालक ने अन्न-जल नहीं लिया। पांचवें दिन शालिग्राम के सामने रोटी रखकर बहुत व्याकुल हो जब वह रोने लगा, और प्रेम उमड़ा, तब भगवान का सिंहासन हिलने लगा। प्रेम-निधान भगवान धन्ना के सामने साक्षात् प्रकट हो गये। बालक को बड़े प्रेम से मिलकर प्रसन्न किया और रोटी खाने लगे। भगवान को बेझर की रोटियों में ऐसा स्वाद आया, जैसा विदुरानी के केले के छिलकों में या शबरी के बेरों में आया था। अब तो नित्य धन्ना के भोग लगाने पर भगवान आते, भोजन करते, यहाँ तक कि उनकी गऊयें भी दुहते और उसके साथ बालरूप में खेलते, जैसे ब्रज में सखाओं के साथ श्रीकृष्ण खेलते थे। दोनों बड़े आनन्द से खेलते थे। अनेकों मनोहर लीलायें करते, कभी कोई रूठ जाता, तो दूसरा मनाता। कभी वन के फूल लाकर हास्य-विनोद करते। मालायें बनाते और पहनते-पहनाते। सरोवर से कमल तोड़कर लाते, उन फूलों से गेंद बनाकर खेलते। इस प्रकार ऐसे खेलते जैसे वृन्दावन में श्रीकृष्ण श्रीदामा के साथ खेलते थे। इतने में वही ब्राह्मण यात्रा से लौटकर वहाँ आ गये—जिन्होंने शालिग्राम दिये थे और कहा था कि बिना भोग लगाये कुछ अन्न-जल मत खाना। उनको देखते ही धन्ना बालक प्रसन्न हो दौड़ा। आकर चरणों में पड़ा, और कहने लगा कि आपकी ही कृपा से मुझे भगवान मिले हैं। पहले तो पाँच दिन कुछ खाया नहीं, फिर आये-भोजन किया और अब मेरे साथ खेलते हैं। ब्राह्मण आश्चर्य कर कहने लगा-मुझे भी उनका दर्शन कराइये। धन्ना ने कहा—वह देखो, आपके सामने ही तो बैठे हैं। ब्राह्मण ने कहा-मुझे सन्मुख नहीं दीखते। चलो, उनके चरणों को मुझे

पकड़ा दो। उसे दर्शन नहीं होते थे तो धन्ना की प्रार्थना से प्रभु ने उसे दिव्य-दृष्टि देकर दर्शन कराया। वह चकोर की भाँति रूप देखने लगा। एकबार धन्ना के पिता ने खेत में गेहूँ बोने के लिए दिये। बोने को धन्ना ले जा रहे थे। मार्ग में कुछ भूखे महात्मा मिल गये। उन्हें सब गेहूँ खिला दिये और सबके देखते-देखते बिना बीज के ही हल चलाकर घर आ गये। भगवान की कृपा से बिना बीज के ही खेत जम गया। और इतना अन्न हुआ कि औरों के खेतों से कई गुना अधिक निकला। भगवान की कृपा से क्या नहीं हो सकता? जल से भी घी निकालते देखा गया है कहीं-कहीं। एकदिन धन्ना भगत से भगवान ने कहा—तुमने गुरु नहीं बनाया इसलिए दीक्षा-मन्त्र लेना कर्तव्य होता है मानव जन्म लेकर। काशी जाकर श्रीरामानन्दाचार्यजी को गुरु बनाओ। धन्ना ने कहा—प्रभो! जब आप मिल ही गये तो मन्त्र-दीक्षा की अब क्या आवश्यकता है? भगवान ने कहा—लोक-मर्यादा का पालन करना कर्त्तव्य है। श्रीरामानन्दाचार्यजी मेरा ही रूप हैं। उनसे भक्तिपूर्वक दीक्षा लो। बिना गुरु के मेरा साकेत धाम नहीं प्राप्त होता, ऐसा मैंने नियम बना रक्खा है। प्रभु की आज्ञा से धन्नाजी काशी आये और आचार्य भगवान को अपनी सब कथा सुनाकर दीक्षा देकर दिव्य-रहस्य सुनाकर प्रेमामृत पिला दिया। ऐसा श्रीधन्ना भगत का चरित्र सर्वत्र प्राप्त है। जैसे सूर्य और (जलजात) चन्द्रमा जगत् में चमक रहे हैं फिर श्रीगुरुदेव ने आपको दीक्षा देकर भक्ति-प्रचार के लिए आज्ञा दी। धन्नाजी ने कथा-कीर्त्तन तथा दिव्य चमत्कारों द्वारा संसार में भक्ति का प्रचार किया। एकदिन आचार्य भगवान के पास आकर श्रीरैदास ने कहा कि—हे प्रभो। मैंने पूर्वजन्म में आपकी सेवा में बड़ा अपराध किया था, सो कृपा कर अब क्षमा

कर दें। उनकी करुण वाणी थी, गद्गद कण्ठ था, आँखों से अश्रु बह रहे थे। बार-बार क्षमा माँग रहे थे। कृपानिधान आचार्य भगवान ने आर्त्त वाणी सुनी और बाहर आकर दर्शन देकर कृतार्थ किया। गुरुदेव की आँखों में भी अपने शिष्य की दीनदशा देख आँसू भर आये। शरण में लेकर दीक्षा-उपदेश आदि देकर सान्त्वना दी कि—दुःख मत मानो तुम्हें इस नीच जाति में जन्म लेने पर भी समस्त दिव्य-ज्ञान-भक्ति और प्रभु के दर्शन का आनन्द प्राप्त होगा। विधाता सबका कल्याण चाहता है। नीच जाति के स्त्री-पुरुषों का तुम्हारे द्वारा उद्धार करना है। सबको ज्ञान-वैराग्य-भक्ति का प्रचार कर तारो। इसलिए ऐसा बानक बनाकर तुमको नीच जाति में जन्म दिलाया गया है। यह सुन रैदासजी के मनकी ग्लानि दूर हो गई।

श्रीनिजगुण योगीराज

श्रीरैदासजी का चरित भक्तमाल आदि ग्रंथों में बहुत विस्तार से वर्णन है ही। इसीलिए यहाँ विशेष नहीं लिखा गया एकबार श्रीशङ्करजी के उपासक श्रीनिजगुणजी योगी काशी आये। जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी की प्रसिद्धि सुनी। आश्रम पर आकर दर्शन किया तथा प्रार्थना करते हुए विचित्र प्रश्न किया कि—हे नाथ! अत्यन्त मनोहर एक सुन्दरी है। वह दिव्य रमणी कभी सामने नहीं आती। उसे खोजने पर गूलर के फूल की तरह वह नहीं मिलती है। और वह वैराग्य के सिंहासन पर बैठे पुरुषों का मन रोज मथती रहती है। तप-तेज को मक्खन की तरह निकालकर खा जाती है उसकी कथा कहाँ तक कहें। उस सुन्दरी के साथ बहुत-सी सेना भी रहती है। वह सब बलवान उसके साथी ज्ञानियों के हृदयरूपी घर में छिपे रहते हैं और अवसर ताकते रहते हैं। घात लगाकर ज्ञानरूपी धन

चुरा ले जाते हैं। हे नाथ! वह सुन्दरी किस उपाय से पत्थरकी पुतली बनेगी तथा साधक बलवान होकर इन वीरों का वध किस प्रकार करे। श्रीआचार्य भगवान ने कहा—वास्तव में माया-सुन्दरी सदा दुःख देती है। अनेक स्त्री-चरित्र रच-रचकर साधकों को वश में कर लेती है। बड़े-बड़े ज्ञानियोंके मनको भ्रम में डालकर नचाती है। हाँ, जो गुरु-कृपा से ज्ञान के आँगन में उसे नङ्गा करके उसका अङ्ग-अङ्ग देखते हैं (अर्थात् पंचतत्व के सब देह हैं तथा सब विषय परिणाम में सुखद हैं—ऐसा जान लेते हैं) उनको वह सुन्दरी छोड़कर भागी जाती है। पर ऐसा देखना उन्हें ही सम्भव है जो हृदय की आँखें खोल लेते हैं। और जो उस माया के साथी डाकू हैं उनका नायक मोह है। वह साधकों की आँखों की पुतली में रहकर मित्र बनकर सदा सोता रहता है। मनुष्य की सारी आयु उसकी एक नींद है। नींद में ममता, तृष्णा आदि स्वप्न भाषित होता रहता है। उस स्वप्न में यह संसार के सब खेल हो रहे हैं। जीव अनेक विपत्तियाँ भोग रहा है। अन्य डाकू द्वेष आदि अनेकों घात-प्रतिघात करके मोह की सहायता करते हैं। इसी से जीव स्वप्न की सीमा से पार नहीं जाने पाता है। हाँ, श्रीराम-मन्त्र जप के, बल से वह माया पत्थर की पुतली बन जाती है अन्य साधन योग, यज्ञ आदि इस युग में होना कठिन है। राम-मन्त्र से बढ़कर कोई उपाय और नहीं है। और श्रीराम-नाम की दिन-रात रगड़ लगाने से ऐसी आग उत्पन्न होती है कि—उसमें सब माया के साथी द्वेष, मोह आदि जल जाते हैं तब जीव इस स्वप्न से जाग कर भगवान की ओर बढ़ता है। श्रीरामजी की कृपा के बिना अपना बल लगाने वाले साधक जो साधना करते हैं। वह कपट के कपाट हैं जो योगी जग भी जाते हैं कुछ योगादि साधनों से।

वह भी दिव्य-धाम का मार्ग नहीं पाते हैं। हृदय के बाजार में वह भ्रम में पड़ जाते हैं। यह उत्तर सुनकर श्रीनिजगुणजी योगी का सब सन्देह दूर हो गया उन्होंने अहङ्कार त्यागकर श्रीराम-भक्ति में मन लगाया। और आचार्य भगवान से श्रीराम-मन्त्र प्राप्त कर भक्ति के आनन्द के अधिकारी हुए। एकबार एक पण्डित श्रीझोटाजी जब अपने गाँव प्रयाग से काशी को आचार्य की महिमा सुन दर्शनार्थ चले। तो उनकी धर्मपत्नी हँसती हुई बोली—पतिदेव ! आप भले ही सन्तों के पास काशी जाइये। परन्तु घर और वन के बीच में जो हवा चलती है वह बड़ी भयङ्कर है।

पण्डित झोटाजी

महान् विद्वान् श्रीझोटा पण्डित पत्नी की इस बात का मर्म नहीं जान सके। वह हँसकर काशी चले आये और आश्रम पर आकर आचार्य के दर्शन कर बड़े प्रसन्न हुए। तथा अपने अन्तर में अनेकों विकार हैं, ऐसा विचार, प्रणाम कर प्रार्थना की कि—हे नाथ ! मुझे अब राग-द्वेषादि सब रोगों से रहित कर दीजिये। तब आचार्य भगवान ने उनके हृदय की सब बातें सर्वज्ञता से जानकर कहा—यों तो वेदान्ती ग्रन्थों को पढ़कर ज्ञान का संचय किया, किन्तु वह मस्तक में ही रहा। हृदय के अनुभव रूपी हाथों में नहीं आया। चलते समय तुम्हारी पत्नी ने जो बात कही—उसे समझ नहीं सके। आप बुद्धिमान तो बहुत बनते हैं। इसलिए आप घर जाकर अपनी पत्नी को यहाँ लाइये उसके साथ आपको मुक्ति का उपदेश दिया जायगा। श्रीझोटा पण्डित अपने घर लौट गये और अपनी पत्नी को लेकर आश्रम पर आये। आचार्य के दर्शनकर पण्डितानी बड़ी प्रसन्न हुई और आरती करके मेवा फल आदि बहुत भेंट किये। उसने बड़ा भक्ति

भाव दिखलाते हुए चरणोदक लिया। तब आचार्य भगवान ने उससे पूछा—काशी चलते समय तुमने जो पण्डितजी से कहा था कि—घर और वन के बीच में भयङ्कर वायु है। सो घर और वन के बीच में क्या रहस्य है। और वह कौन-सा लोक है ? जहाँ पर सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता है। यह सुनते ही पडितानी बहुत लज्जित हो गई और बिना बोले ही इशारों में उत्तर देने लगी—पहले प्रश्न के उत्तर में अपनी आँख का काजल पोंछकर दिखाया तथा दूसरे प्रश्न के उत्तर में खाली हथेली चमका कर दिखला दी। इन इशारों का मर्म कोई नहीं समझ सका। उसका रहस्य केवल आचार्य ने समझा। तब आपने शङ्ख बजा दिया, उस ध्वनि को सुनते ही पण्डितानी पागल-सी हो गई। वह चिल्ला उठी कि—हे महाराज ! मैं आपकी शरण में हूँ मेरा भेद मत खोलिये। मुझे क्षमा करें। तब आचार्य भगवान ने कहा कि—तुमने बड़ी अनीति कर रखी है। ऐसा विलासता का जाल फैलाया। इस जाल से ज्ञानी और ध्यानी तथा मोक्ष के इच्छुक भला कैसे बच सकेंगे। तूने इतना भ्रम डाल रखा है। हे देवाङ्गना अब तू बेचारे इस पण्डित को छोड़ कर अपने लोक को चली जा। यह सुनते ही तत्काल वह देव कन्या—दिव्यरूप धारण कर प्रार्थना करती हुई अपने लोक को चली गई। वह अप्सरा थी मनुष्योंका-सा रूप बनाकर पण्डितजी की साधना बिगाड़ने आई थी। एक सन्तानहीन ब्राह्मण को तीर्थ में मिली और श्रीझोटा पण्डित के साथ उस ब्राह्मण ने उसका विवाह कर दिया था। पण्डितजी का नशा अब उतर गया। सारा भेद समझकर श्रीझोटा पण्डित ने आचार्य भगवान से दीक्षा ली और दिव्य-ज्ञान प्राप्त किया। उनका नाम आचार्य ने श्रीराघवशरण रखा और उपदेश किया कि— वास्तव में

'अविद्या' से मोह अज्ञान उत्पन्न होता है तथा 'विद्या'से अभिमान आता है। और 'महाविद्या' रूपी स्त्री के प्रेम से सुखासक्ति उत्पन्न होकर साधकों को बांधती है। ज्ञानियों को नित्य ही यह (अविद्या, विद्या तथा महाविद्या) माया तीन रूप धरकर फँसाये रहती है (अविद्या से) साधक गिरता है (विद्या से) उठता है तथा (महाविद्या) से डूब जाता है। इस भ्रम के समुद्र में साधक ऐसे डूबता उछलता रहता है। श्रीराघवशरणजी ने पूर्ण ज्ञान की सिद्धि प्राप्त करके तथा श्रीराम–भक्ति को पाकर सर्वत्र ज्ञानाभक्ति का प्रचार किया। ऐसे ही एक ब्राह्मण की कन्या थी जिसका मुख बकरीका-सा लम्बा था। उसका व्याह नहीं होता था। माता-पिता बहुत दुःखी थे। वह परिवार सहित आश्रम पर आये। रो-रोकर अपनी सब विपत्ति सुना दी। आश्रमवासी सब उस कन्या की बकरीकी-सी मुखाकृति देख आश्चर्य कर रहे थे। तब आचार्य भगवान ने मीठी वाणी से कहा–पूर्वजन्म की अपनी बात सुन। हे विप्र कुमारी ! पहले जन्म में तू बकरी थी। गङ्गा किनारे चर रही थी। उसी समय गङ्गा में बाढ़ आ गई और तू बह चली बहुत निकलना चाहा पर निकल नहीं सकी। फिर जङ्गल की एक झाड़ी में जब पहुँची उसमें तू अटक गई और मरते समय मुख पर ध्यान रहा। श्रीगङ्गाजी के प्रभाव से मनुष्य तो हुई परन्तु मुख वैसा ही फिर मिला है। अच्छा अब इसे सुन्दर रूप प्रदान करूँगा ऐसा कह मन्त्र पढ़कर उस कन्या पर जल छिड़क दिया। जल पड़ते ही उसका चेहरा बदल गया। वह देव-कन्या के समान सुन्दर हो गई। सब लोग यह दृश्य देख आश्चर्य करने लगे। उस ब्राह्मण परिवार ने आचार्य भगवान की शरणागति स्वीकार कर दीक्षा ली। वे सब आनन्दित होकर अपने घर चले गये।

कन्या का विवाह कर बहुत धन खर्च करके आश्रम पर आकर सन्तों का भण्डारा किया।

श्रीचन्द्रचूड़मुनि और पद्मा

ऐसे चरित्र निरन्तर होते रहते थे। आचार्य का प्रताप रूपी सूर्य सभी के कष्टरूपी अन्धकार को नाश कर देता था। एकबार काशी में बड़े यज्ञ का आयोजन किया। बड़े समारोह से विशाल यज्ञशाला बनाई गई। उस यज्ञ को कराने के लिए दक्षिण देश के चन्द्रचूड़ मुनि बुलाये गये। वे कर्मकाण्ड में बड़े प्रवीण थे और देश-देश में उनका श्रेष्ठ याज्ञिक नाम प्रसिद्ध था। उन्होंने यज्ञ बड़े गर्व से कराया। किसी जमीदार ने सकाम भावना से वह यज्ञ कराया था। श्रीचन्द्रचूड़ मुनि बड़े विद्वान् थे। काशीवासियों ने उनका बड़ा ही सम्मान किया। उन्होंने काशी में श्रीरामानन्दाचार्यजी की महिमा भी सुनी। हाथी पर चढ़कर दर्शनार्थ आश्रम पर आये। किन्तु आचार्य भगवान कुटी के भीतर द्वार बन्द करके समाधि में ही प्रातः रहा करते थे। किसी अत्यन्त भक्त के लिए समाधि से उठकर द्वार खोलकर दर्शन देने कभी-कभी निकलते थे। कभी-कभी दो-दो चार-चार दिनों तक कुटी के भीतर से बाहर ही नहीं आते थे। मुनिजी को दर्शन नहीं मिला तो बैठ गये। उसी समय भीतर से आचार्य ने शङ्ख बजा दिया। श्रीराम-मन्त्र से रमी वह शङ्ख ध्वनि सुनते ही मूर्च्छित होकर मुनिजी पृथ्वी पर गिर पड़े। हृदय में ध्यान द्वारा दिव्य स्वर्गलोक देखा। कर्मकाण्डमय यज्ञ का फल स्वर्ग सुख और पुण्य क्षीण होकर फिर नर जन्म गर्भवास का दुःख अनुभव किया। जब वह जगे तो आश्चर्य करने लगे। उसी समय आचार्य भगवान ने दर्शन दिया। आचार्य का तेज प्रताप देखते ही उनका गर्व दूर हो गया। वे बड़प्पन त्यागकर आचार्य

भगवान के चरणों में पड़ गये। पश्चात् सुन्दर प्रश्न किया कि कर्म का मर्म मैं नहीं समझ सका। हे प्रभो! कृपा कर कर्म का रहस्य मुझे समझाइये। वेदों का मत विचारते-विचारते सदा भ्रम ही बना रहा। मनको यह भ्रम बन्दर की तरह नचा रहा है। तब आचार्य भगवान ने कोमल वाणी में कहा—यज्ञ तथा दान आदि कर्म यदि सकाम भाव से किये गये हैं तो वह स्वार्थ भरे व्यापार के समान हैं। कर्मों की गति बड़ी गहन है। ऐसी सकामता से कर्म का भ्रम नहीं मिटेगा। पाप-पुण्यरूपी दो बीज बोते रहने से, दुःख सुखरूपी दो बीज बोते रहने से दुःख-सुख रूपी फल भोगते हुए कभी रोना कभी हँसना पड़ेगा ही। कर्म का यह कराल चक्र सदा घूमता ही रहता है। यह मायाजाल कर्म और काल ऐसा ही है। जैसे कोई १०० यज्ञ करके इन्द्र बन जाय पर वहाँ भी अतृप्ति बनी रहती है। वहाँ भी विषयों का क्षणिक सुख है। नहीं तो अहिल्या के पास इन्द्र क्यों आते। कोई महान् तप करके ब्रह्मा भी बन जाय परन्तु जगत् की रचना करते-करते वह भी दुःखी रहता है इस जगत् में अनेकों ब्रह्मा और इन्द्र काल के द्वारा नष्ट हो चुके हैं। जब कर्मों में लगा जीव इस काल की करालता का ज्ञान प्राप्त करता है। तब वह मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है। उसे स्वर्ग का सुख तब भ्रमजाल मालूम होता है। यह सकाम कर्म तो सुन्दर अज्ञान-सा है। पहले अमृत पीछे जहर बन जाता है। जो बहुत पढ़ गये वह बहुत उलझ गये। जैसे समुद्र को प्राप्त किया परन्तु खारा पानी पाकर प्यासे ही रहना पड़ रहा है। चतुराई व्यर्थ हो रही है। श्रीचन्द्रचूड़ मुनि आचार्य के वचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। भ्रम दूर होकर पूर्णतत्व का बोध हो गया। वे बारम्बार प्रार्थना करके उपदेश लेकर अपने देश चले गये। उन्होंने आचार्य की

आज्ञानुसार दक्षिण देश में श्रीराम-भक्ति का प्रचार किया। अब और एक चरित्र सुनिये। 'त्रिपुरा' नामक नगर में एक ब्राह्मण श्रीप्रभाकरजी रहते थे। वह लक्ष्मी के उपासक थे। रात-दिन अखण्ड रूप से श्रीलक्ष्मीजी का पूजन छोड़कर दूसरा कार्य नहीं करते थे। वे लक्ष्मीजी का साक्षात् दर्शन चाहते थे। हृदय में पूर्ण साधुओंकी-सी वृत्ति आ गई थी। एकबार स्वप्न में उन्हें श्रीलक्ष्मीजी ने साक्षात् दर्शन दिया और बोलीं—जो इच्छा हो शीघ्र वरदान मांग लो। श्रीप्रभाकरजी ने कहा—मुझे और कोई इच्छा नहीं है अब केवल आपकी लीला का आनन्द देखने की इच्छा है। तब श्रीलक्ष्मीजी ने कहा—मैं आपके घर में आकर जन्म लूं तभी आप हमारी लीला का सुख पा सकते हैं इसलिए मैं आपके यहां कन्या बनूंगी। प्रातःकाल जब लक्ष्मीजी की पूजा करने आये तो वहां एक दिव्य कमल पड़ा हुआ देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अपनी पत्नी को बुलाकर कमल दिखाया। उस पतिव्रता पत्नी ने वह विलक्षण कमल जब उठाया तो—छूते ही वह फूला हुआ कमल संकुचित हो गया। जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर कमल संकुचित हो जाता है। वह चन्द्रमुखी पण्डितानी इस समय सचमुच चन्द्रमाकी-सी हो गई। साथ ही उस कमल से सोनेकी-सी कान्ति वाली कन्या उत्पन्न हो गई। अपनी ही कन्या मानकर वे पण्डित-पण्डितानी उत्सव मनाने और धन दान करने लगे। उस कन्या के अङ्ग में एक ऐसी चमक थी कि रात में बिना दीपक के प्रकाश-सा रहता था। सभी लोग इस पर बड़ा आश्चर्य करने लगे। वह विचित्र कन्या बड़े सुन्दर खेल-खेलकर माता-पिता को सुख देती थी। माता-पिता ने उसका नाम पद्मा रखा। अनेकों विनोद करती, माता-पिता के गोद में खेलती हुई महान् मोद भरती, बाल-

लीलायें दिखाकर कृतार्थ कर दिया। जब वह कन्या पाँच वर्ष की हुई तो बोली—मुझे लेकर काशी चलिये। वह पर गुरुरूप में साक्षात् अविनाशी भगवान ही प्रकट हुए हैं। आप लोग भी मेरे साथ ही दीक्षा लेना। आप भी मुक्ति प्राप्तकर जीवन-सफल करें। मैं भी पृथ्वी पर तप करने आई हूँ। संसार के सुख लेने नहीं आई। जैसे चाँदनी चन्द्रमा को छोड़कर आवे वैसे ही मैं अपने लोक को छोड़कर भक्ति का सुख लेने आई हूँ। पण्डितानी यह बात सुन आश्चर्य करने लगे और तत्काल काशी चल पड़े। जब आश्रम पर आये तो छोटी-सी ५ वर्ष की सुन्दर सोनेकी-सी कन्या देखकर सब चकित हो गये। कन्या की उत्पत्ति तथा सब बातें माता-पिता से सुनकर आश्रमवासी कहने लगे—भगवान की लीला विचित्र है। जब कन्या ने दर्शनार्थ प्रार्थना की तो गुरुदेव ने उसे लक्ष्मीजी का अंशावतार जानकर शीघ्र दर्शन दिया। वह कन्या तोतली वाणी से बोली—हे नाथ! हे तपोनिधि! प्रभो! मुझे दीक्षा दीजिये। उसकी विनती मानकर आचार्य भगवान ने दीक्षा देकर सब रहस्य उपदेश किये। कन्या ने बड़ी श्रद्धा से ग्रहण किये। जैसे मूर्तिमान भक्ति ने भगवान को रिझाकर दिव्य भूषण लिए हों। वह कन्या माता-पिता के साथ काशी रहने लगी मन्त्र-जप तथा तप में उसका बड़ा अनुराग था जब वह पद्मा आठ वर्ष की हुई तो अन्न-जल त्यागकर महान् तपस्या प्रारम्भ की। वह दिन-रात राम-मन्त्र जप करती थी। उसको हृदय में दिव्य प्रकाश का दर्शन होता था। जैसे खट्वाङ्ग राजा ने थोड़े ही समय में महान् तप कर मोक्ष पाया था। वैसे ही पद्मा कुमारी की सर्वत्र बड़ाई होने लगी। वह अत्यन्त दुर्बल हो गई थी। परन्तु तप का तेज अपार बढ़ रहा था। वह गुरुदेव के समीप एकदिन आई। गुरुदेव ने कृपा कर दर्शन दिया।

वह भाग्यशालिनी चरणों में पड़कर आँसुओं की माला भेंट करने लगी। तब आचार्य भगवान ने कृपा कर कहा—अब तुम्हारा तप पूर्ण हो गया। अब अपने धाममें जाइये। हे पद्मे! तुम धन्य हो संसार की समस्त कन्यायें तप में तुम्हारे समान नहीं हो सकतीं! आचार्य भगवान ने आवाहन किया, वहाँ पर सबके देखते-देखते दिव्य विमान प्रकट हुआ। उस पर बैठकर पद्मा परमधाम को (गुरुदेव की स्तुति करती हुई) चली गई।

श्रीविनय मुनि

एक सुन्दर जटा-जूट बनाये हुए श्रीविनय मुनिजी आश्रम पर दर्शनार्थ आये यहाँ आते ही उनको बड़ी शान्ति का अनुभव हुआ। आचार्य भगवान के सहस्रों शिष्य देखे। सब सिद्ध और विद्वान् थे। आश्रम में सत्सङ्ग चर्चा जो हो रही थी। उस प्रश्नोत्तर के गम्भीर रहस्यों पर वे आश्चर्य करने लगे। जैसे ऋषियों के आश्रम सतयुग में सुने जाते हैं, वैसा कलियुग में प्रत्यक्ष देख वे गद्गद हो गये। उन्होंने जगद्गुरु के दर्शनार्थ बहुत प्रार्थना की, तब कृपा कर प्रभु ने दर्शन दिया। दर्शन कर श्रीविनय मुनि प्रेम से स्तुति करने लगे। फिर प्रश्न किया कि—मेरे मन में एक बड़ा सन्देह है। हे नाथ! मुझे ब्रह्म के जानने की इच्छा है। मैं बहुत देशों में भटक कर आ रहा हूँ। जहाँ-जहाँ प्रश्न किया, किसी ने मुझे संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया। मेरे हृदय में कृपा कर आप ब्रह्म की स्थापना कर दीजिये। मेरा भ्रम दूर हो जाय। परन्तु मैं ग्रन्थों के प्रमाण नहीं चाहता और युक्तियों के प्रमाण भी नहीं चाहता यह सब मैं व्यर्थ समझता हूँ। मैं सिन्धु देश का रहने वाला हूँ। मैं इसी रहस्य को जानने के लिए आपका नाम सुनकर काशी आया हूँ। यह सुन आचार्य भगवान ने कहा—हे मुनिजी! आप सुन्दर रहस्य सुनिये। सर्व

प्रथम आप श्रीविश्वनाथजी के मन्दिर में जाकर शिवजी का दर्शन कर आइये। फिर आपके सन्देह का उत्तर दिया जायगा। श्रीविनय मुनिजी ने कहा–हे प्रभो ! यह आप कैसी आज्ञा दे रहे हैं। मैंने आज तक किसी देवी-देवता की उपासना नहीं की है। मैं देवी-देवता के मन्दिरों में नहीं जाता। ऐसी पूजा से द्वैत नहीं तो जीव को भ्रम कैसा ? ब्रह्म को भ्रम-सन्देह नहीं हुआ करता। तब विनय मुनि ने कहा–अच्छा हमें श्रद्धा तो नहीं है पर आपकी आज्ञा से मन्दिर में चला जाऊँगा। ऐसे कहकर श्रीविश्वनाथजी के दर्शनार्थ गये। मार्ग में दो बेलपत्र माली से माँग कर ले आये थे—बेलपत्र जब शिवजी पर चढ़ाने लगे तो—शिवजी को छूते ही बेलपत्र बोलने लगे। उस शब्द को सुन मुनिजी ऐसे चौंक पड़े, जैसे छोटा-सा गोद का बच्चा सहसा नफीरी बाजे को सुनकर चौंक पड़ता है। वह बेलपत्र बोले कि ब्रह्मतत्व उसके हृदय में कभी भी प्रकाशित नहीं होता। जो कि द्वैत-अद्वैत के विवाद में पड़कर हठपूर्वक पक्ष ले लेता है और ईश्वर की उपासना को त्याग देता है। वैसे तो ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। किन्तु बिना भजन किये वह मिलता नहीं। वह ज्ञानी भी अज्ञानी ही है। जो मुक्तिदाता ईश्वर के चरणों की शरण नहीं लेता। जब बेलपत्रों ने इस प्रकार कहा तो मुनिजी ने समझा मानो श्रीशिवजी ने यह संदेश पत्र द्वारा भेजा है। पूजा करके जब आचार्य भगवान के पास आये तो बड़े आश्चर्य पूर्वक कहने लगे कि—हे प्रभो ! शिवजी पर चढ़ाते ही बेलपत्तियाँ ऐसे बोलने लगीं जैसे कोई बड़ा उपदेश देता है। अब आचार्य भगवान ने कहा—हाँ अब आप फिर से अपनी शङ्का ठीक-ठीक कहिये तो उत्तर दिया जाये। यह सुन मुनिजी ने कहा–अब कोई शङ्का नहीं, अब तो कृपा कर मुझे अपना शिष्य

बना लीजिये। हे प्रभो ! बेलपत्र की वाणी सुनते ही मेरी सब शङ्कायें निवृत हो गईं। अब तो श्रीरामजी के चरणों में जिस प्रकार प्रेम हो वैसा भजन मैं दिन-रात करना चाहता हूँ। वही भजन विधि मुझे कृपा कर बताइये। मैं बार-बार आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। वैसे तो मैं अपने को बड़ा-बूढ़ा मानकर घमण्ड करके आया था। यह मेरा अपराध क्षमाकर दीजिये क्योंकि मैं आपकी शरण में आया हूँ। अब मुझे संसार की व्याधि से मुक्ति दीजिये। आचार्य भगवान ने उनको तारक मन्त्र की शिक्षा देकर श्रीराम-भक्ति प्रदान की। उनका भ्रमरूपी भवन बालुका की दीवाल की तरह ढह गया। श्रीविनयमुनिजी ने कृतार्थ हो अपने सिन्धु देश में श्रीराम-भक्ति का प्रचार किया। और आचार्य भगवान की कृपा से उनको सब शक्तियाँ तथा अन्त में मुक्ति प्राप्त हुई। ऐसे चरित्र नित्य ही होते रहते थे अब वह चरित्र सुनिये कि जिस प्रकार श्रीशुकदेवजी का जगत् में फिर जन्म हुआ।

श्रीगालवानन्दजी

पयावा नाम के नगर में एक ब्राह्मण श्रीसाम्बमूर्तिजी रहते थे। वह वेदान्त के आचार्य और यज्ञ कराने में महान् निपुण थे तथा भगवान की उपासना में कथा-कीर्तन में साक्षात् नारदजी के समान प्रेमी थे। उनकी पत्नी बड़ी पतिव्रता और सुशीला थी। उसके कोई पुत्र नहीं हुआ तब उसने पुत्र प्राप्ति के लिए चन्द्रायण व्रत किया। प्रभु कृपा से बड़ा सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, मुनियोंके मनको लुभाने वाला यह गम्भीर पुत्र था। उस तेजोमय बालक को देखकर माता-पिता बड़े आनन्दित हो रहे थे। यह बालक जब बोलता था तो ज्ञान की ही बातें बोलता था। संसार के तारने को जहाज के समान वे शब्द होते थे। फूल से

बरसते थे बोलने में—वह बालक नित्य बाल-क्रीड़ा में भी भगवान की लीलायें ही खेलता था। उसके विचित्र चमत्कारों को देख सभी स्त्री-पुरुष चकित हो जाते थे। जब वह कुमार ८ वर्ष के हुए तो पिता ने यज्ञोपवीत कराया। कुमार ने जब जनेऊ के साथ गायत्रीमन्त्र का उपदेश पाया तो उसने गायत्री का अनुष्ठान करने को हठ किया। घर वालों के मना करने पर भी केवल दुग्ध पर ही रहकर जप आरम्भ कर दिया। घर के द्वार पर एक वट का वृक्ष था उसके नीचे चबूतरा बनवाकर उसी पर बैठ गये। आनन्द पूर्वक जप करने लगे। नेत्र बन्दकर तैलधारावत अखण्ड ध्यान करते हुए दिन-रात बैठे जप करते रहते थे। जप करते हुए श्वांस भी रोकते रहते थे। जप के प्रभाव से कुछ महीनों बाद एक आश्चर्य हुआ। उनका शरीर भूमि से एक हाथ ऊपर उठने लगा। अधर में बैठे हुए ध्यानमग्न कुमार को देख दौड़-दौड़कर स्त्री-पुरुष दर्शनार्थ आने लगे। अब तो नित्य आसन ऊंचा उठ जाता और दूर-दूर देशों के लोग कौतुक देखने आते थे। इस प्रकार तीन वर्ष जप-तप समाधि आदि रूप से साधना चली। फिर जब यह ध्यान में लीन हो जाते तो मुख के चारों ओर प्रकाश का मण्डल बनने लगा। जैसे चन्द्रमा के चारों ओर कभी-कभी आकाश में प्रकाश का घेरा दीखता है। तब एकदिन मुनिवर वेदव्यासजी ने प्रकट होकर कुमार को दर्शन दिया। वेदव्यासजी ने कहा—पुत्र शुकदेव मैं तुम्हारा पिता वेदव्यास हूँ। तुम अपने स्वरूप का ज्ञान करो। कुमार अपने पिता वेदव्यासजी को पहचान कर चरणों में पड़े। श्रीव्यासजी ने फिर कहा—कि हे पुत्र ! अपने जप-तप की सिद्धि का अभिमान त्याग दो। अब तुम काशी जाकर श्रीरामानन्दाचार्यजी को गुरु बनाकर जन्म का फल प्राप्त करो। वे साक्षात् श्रीभगवान ही हैं। उनसे तारक-

मन्त्र प्राप्त कर साधना करो। बिना गुरु के मुक्ति नहीं मिलती, यह वेद की आज्ञा है। जैसे बिना प्रेम के प्रियतम का सुख नहीं मिलता। तब कुमार ने हाथ जोड़कर पूछा—हे महाराज! एक शका मेरे हृदय में उठ रही है—कि गायत्री मन्त्र को सब वेदों का सार बताया जाता है। गायत्री के समान कोई मन्त्र नहीं ऐसा सुना है। हमको जिस पण्डित ने गायत्री मन्त्र बताया है, उसे ही हम गुरु मानते हैं। मुझे दूसरा गुरु करना अच्छा नहीं लगता। जिस मन्त्र के प्रताप से मेरा आसन एक हाथ ऊँचा उठ गया फिर उस मन्त्र को मैं कैसे छोड़ दूं। मुझे तो ऐसा प्रिय लगता है यह मन्त्र जैसे चकोरको चन्द्रमा प्रिय है। तब ऋषिराज वेदव्यासजी ने कहा—गायत्री वेद मन्त्र है पर वह श्रीराम-तारक मन्त्र वेद से भी परे महान् मन्त्रराज है। इसी छिपे हुए रहस्य को प्रकट करने के लिए स्वयं प्रभु पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं गायत्री बुद्धि तथा तेज प्रदान करती है। गायत्री जप ब्रह्मलोक तक के सुख दे सकता है। किन्तु मोक्ष पद देने वाला तो तारक मन्त्र ही है, साथ ही तारक के जप से ईश्वर के चरणों का प्रेम भी प्राप्त होगा। श्रीब्रह्माजी, श्रीशिवजी, श्रीनारदजी आदि ऋषि तारक मन्त्र का जप करते हैं और गुरु वह भी माना जायगा जो जनेऊ के साथ गायत्री मन्त्र देता है, संसार के व्यवहार में प्रवृत्त कराता है। दूसरा गुरु वह जो अध्यापक विद्या पढ़ाता है, तथा तीसरा गुरु वह जो संसार से तरने को तारक मन्त्र देता है। वही गुरु श्रीराम भक्ति प्रदान करके भगवान से मिलाकर सदा के लिए संसार दुःख से छुटा देता है। जो सांसारिक विषयों से वैराग्य करावे, श्रीरामजीकी भक्ति दे, ज्ञान दे, मुक्ति दे, ऐसा गुरु करना प्रत्येक जीव को आवश्यक है—भवसागर से पार होने के लिए उसी महात्मा को परम गुरु बनाओ जो तत्वरूपी अमृत

पिला सके। तामसी साधु, कठोर हृदय वाला, कर्मकाण्ड में सकाम बुद्धि वाला गुरु करने से अज्ञान बढ़ावेगा। किसी का योग बल से आसन आकाश तक भले ही ऊँचा उठ जाय परन्तु मुक्ति पाना हँसी-खेल नहीं है। यह माया ऋषि-सिद्धि देकर ज्ञानियों को भी मदान्ध करके भ्रम में फँसाती है। इस समय जीवों के कल्याणार्थ भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी काशी में प्रकट हुए हैं। तुम शीघ्र ही जाकर उनकी शरणागति स्वीकार करो। तुम्हारा माया-भ्रम दूर हो जायगा। श्रीवेदव्यासजी की आज्ञा सुन सब शङ्का हट गई और श्रीजगद्गुरु के दर्शनार्थ काशी आये। माता-पिता के साथ आकर काशी में गङ्गाजी की धारा के दर्शन कर बड़े प्रसन्न हुए। श्रीरामानन्दाचार्यजी की शरण में आश्रम पर जाने के पहिले ही प्रभु ने परीक्षा ली। रम्भा नाम की अप्सरा ने आकर रात्रि में बहुत लुभाना चाहा। उसने विहङ्गम नामक नृत्य करके इनका मनमोहित करना चाहा। परन्तु, यह विचलित नहीं हुए। जैसे उर्वशी अर्जुन के पास आके निराश चली गई थी वैसे ही रम्भा भी अपना-सा मुंह लेकर लौट गई। पश्चात् जब आश्रम पर आये तो दर्शन मिलने में बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब बहुत प्रार्थना की तो आचार्य ने दर्शन दिया। कुमार ने बड़े हर्ष से श्रीराम तारक-मन्त्र की दीक्षा ली। वैराग्य की नदी रस से भरी हुई इनके हृदय में बहने लगी। श्रीआचार्य भगवानने इनका नाम श्रीगालवानन्दजी रक्खा। ज्यों ही आचार्य ने मन्त्र सुनाया कि मन्त्र सुनते ही इनको दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो गई। भृकुटि के मध्य में चन्द्रमा के समान प्रकाश का गोला-सा दीखने लगा। तब श्रीगालवानन्दजी ने मधुर वाणीसे प्रश्न किया कि—हे प्रभो! सभी लोग श्रीराम-भक्ति को दुर्लभ बताया करते हैं। वह श्रीरामभक्ति अज्ञानी जीवों को किस प्रकार प्राप्त हो

सकती है ? श्रीआचार्य ने कहा—हाँ, भक्ति को मुनिजन दुर्लभ बताते हैं। परन्तु, सात साधनों से भक्ति प्रकट हो जाती है। १. असंतोष (प्रेम-प्राप्ति के लिए बढ़ते ही चले जाना कभी सन्तोष न मानना), २. अभ्यास (इष्टरूप का ध्यान विरह-दर्शन की प्रतीक्षा में बैठना), ३. अदैन्य (कभी कुछ माँगना नहीं, कोई वस्तु की चाह नहीं), ४. कल्याण (सबका उपकार करना, सबके प्रिय रहना), ५. क्रिया (कथा सुनना, कीर्तन, जप, पाठ, पूजा आदि करना), ६. विवेक (अपने दास स्वरूप का और उनके पर-ब्रह्मरूप का ज्ञान तथा संसार की नश्वरता का यही विवेक है), ७. विमोह (सबसे मोह हटाकर जीवन्मुक्त की तरह रहना) इन सात रहस्यों को समझकर सदा इन्हें हृदय में धारण करे। इनका मर्म विचारता रहे। दृढ़ व्रत धारण करनेसे भक्ति उदय हो जाती है। इन साधनों से भक्ति निश्चय ही होगी इसमें सन्देह नहीं। जैसे बीज से वृक्ष होता है। और भक्ति तो निरभिमानी भोले-भाले अज्ञानी जीव शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं। हाँ, ज्ञानी तथा वैज्ञानिक तो भक्ति से वंचित रह जाते हैं क्योंकि उनको अपनी बुद्धि का चातुर्य हृदय को सरस तथा कोमल नहीं होने देता। भक्ति से ज्ञान उत्पन्न होता है तथा भक्ति से मुक्ति भी मिल जाती है और भक्ति से रहित जो भी पुण्यकर्म किये जाते हैं। यह सुन श्रीगालवानन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और गुरुदेव के चरणों में लिपट गये। आश्रम पर रहकर भजन-सत्सङ्ग का आनन्द प्राप्त करने लगे। उन्हीं दिनों काश्मीर में यवनों का शासन होने से हिन्दुओं पर बड़ा अत्याचार होने लगा। तब श्रीआचार्य भगवान ने दिव्य शक्ति देकर हिन्दुओं की रक्षा के लिए गुप्त रहस्य समझाकर श्रीगालवानन्दजी को शीघ्र काश्मीर भेजा। योगबल से जाकर काश्मीर के यवन-शासकों को परास्त करके वहाँ के हिन्दुओं का

धर्म बचाया। गुरुदेव के प्रताप से चमत्कार दिखाकर सब धर्म-ग्लानि दूर कर दी।

श्रीपीपाजी

अब दूसरा सुन्दर चरित्र सुनिये। गागरौनगढ़ के राजा श्रीपीपाजी बड़े धर्मात्मा थे। न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते थे। वे देवीजी को इष्ट मान बड़ी श्रद्धा से पूजा करते थे। श्रीपीपाजी ने देवीजीके दर्शनार्थ यज्ञ-अनुष्ठान किया। देवीजी ने साक्षात् प्रकट हो दर्शन दिया। देवीजी ने कहा—जो इच्छा हो, वरदान माँग लो। सुख-सम्पत्ति, ऐश्वर्य जो चाहो माँगो। श्रीपीपाजी ने विचार किया कि मुझे सब सम्पत्ति-ऐश्वर्य तो प्राप्त है, अब मोक्ष-सुख माँगूं राजा ने देवीजी से मोक्ष ही वरदान में माँगा क्योंकि सांसारिक विषय सुखों में तनिक भी शान्ति नहीं मिली। मुझे तो मोक्ष की अक्षय सुख-शान्ति अब प्रदान करके माया की बेड़ी काट दो, जिससे आगे गर्भवास का नर्क न भोगना पड़े। देवी कुछ सोच में पड़ गईं, बोलीं—हे राजन्! मैं और सब सुख दे सकती हूँ, पर मोक्ष तो भगवान श्रीरामजी ही दे सकेंगे। अब मैं मोक्ष-प्राप्ति का उपाय बताती हूँ। आप काशी जाइये। जगत् के मोह को हटाइये। काशी में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी साक्षात् भगवान ही इस समय प्रकट हुए हैं। वह मुक्तिरूपी सदाव्रत का भण्डार खोल बैठे हैं, वही तुम्हारे गुरु बनेंगे तो मुक्ति मिल जायगी। वह रोज अपने द्वार पर मुक्ति लुटाते रहते हैं। ऐसे कहकर देवीजी अपने लोक में चली गईं। श्रीपीपाजी सब कार्योंको छोड़ मुक्तिदाता के दर्शनार्थ काशी जाने के लिए आतुर हो उठे। परम प्रसन्न मनसे काशी आये। आश्रम के द्वार का दर्शन करते ही हृदय में प्रकाश झलकने लगा। दो दिनों तक बैठे रहे, परन्तु दर्शन नहीं मिला। आचार्य के दर्शनार्थ

बड़ी विरह-वेदना हृदय में होने लगी। आचार्य भगवान ने दर्शन देकर हृदय में विचार किया कि पीपाजी ने राजसुख छोड़ा है पर शरीर में आसक्ति है, उसको हटाने के लिए विचित्र आज्ञा दी कि—जाओ कुएँ में कूद पड़ो। यह कठिन परीक्षा ली—कि देखें आज्ञा-पालन में कितनी दृढ़ता है। आज्ञा पाते ही दौड़े। शरीर का मोह छोड़कर हंसते हुए कुएँ में कूद पड़े। जिसे मुक्ति की सच्ची चाह हो, वह इस प्रकार प्राण अर्पण करे तब मुक्ति मिल सकती है। उधर यह दृश्य देखने वाले आश्रम के तथा बाहर के सभी लोग हा-हाकार करते हुए दौड़ पड़े। कुएँमें झाँककर लोगों ने विचित्र दृश्य देखा। गुरुदेव की कृपासे कुएँ का जल सूख गया वहाँ दिव्य ऐश्वर्य-भोग वाला विमान प्रकट हो गया। उसी विमान पर बैठ श्रीपीपाजी बाहर आये। फिर वह विमान अदृश्य हो गया। श्रीपीपाजी विमान से उतरकर आचार्य भगवान के चरणों में जाकर लोट गये। श्रीगुरुदेव ने प्रफुल्लित मन से इनको दीक्षा दी और पूर्ण अनासक्ति की परीक्षामें पास करते हुए धन्य-धन्य कहकर प्रशंसा की। श्रीपीपाजी गुरुदेवके सत्सङ्ग में रहकर कुछ दिन काशी में दान-पुण्य करते रहे। तब गुरुदेव ने आज्ञा दी कि तुम अपनी राजधानी में लौट जाओ और कुछ दिन सन्त-सेवा करो। आज्ञा पाकर लौट आये और सन्त-सेवा करने लगे। चलते समय गुरुदेव ने कहा था कि मैं तीर्थयात्रा करने और भारत में नास्तिकों को परास्त करने के लिए दिग्विजय करते कुछ दिन में निकलूंगा तब तुम्हारे यहाँ भी आऊँगा। इसलिए इनको दर्शन की लालसा लगी रहती थी—चातक की तरह। और एक चरित्र सुनिये—एक वृन्दावन के निम्बार्क सम्प्रदाय के साधु काशी आये। आचार्य भगवान का दर्शन कर बड़े प्रसन्न मन से कहने लगे कि—हे नाथ ! मेरी कथा संक्षेप में ही सुन

लीजिये कि मैं जिस कारणसे आपके पास आया हूँ। मैंने वृन्दावन में निवासकर भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ तपस्या की। स्वप्न में एकदिन श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने दर्शन देकर आज्ञा दी कि—तुम काशी जाओ, तुम्हें सुन्दर रसमय दर्शन होगा। और आपका नाम बताकर आपके पास भेजा है। सो आपका दर्शन कर मेरा हृदय आनन्दित हो उठा है। अब आप कृपा करके श्रीराधा-कृष्ण का दर्शन कराके मेरी प्रतिज्ञा (दर्शन करूँगा, नहीं तो तन त्यागूंगा) पूरी करें। ऐसी प्रार्थना कर चरणों पर गिर रोने लगे। तब आचार्य भगवान के हृदय में कृपा का चन्द्रमा उदय हो गया। उस चन्द्र को देख प्रेमरूपी समुद्र उमड़ने लगा। प्रभु ने कृपा करके शङ्ख बजा दिया। उस शङ्खध्वनि को सुनते ही समाधि लग गई। उस साधु ने विलक्षण आनन्द का दर्शन किया, वह वर्णन नहीं किया जा सकता। मणिमय धाम, कुञ्ज, वाटिका, वृक्ष-लतायें फूल खिले देखे जिन पर भ्रमर गुंजार रहे थे। वहाँ दिव्य रासमण्डल में श्रीराधा-कृष्ण को रास करते देखा दिव्य सखियों के साथ, दिव्य-सङ्गीत मधुर स्वर से गान हो रहा था। बाजे बज रहे थे। वंशी की ध्वनि के साथ नूपुर ध्वनि, कङ्कण, करतल ध्वनि बड़ी मनोहर थी। श्रीकृष्णचन्द्र का मुख-चन्द्र देख सन्तजी वसन्त के समान प्रफुल्लित हो उठे। उस रूपसुधा को पानकर वह अघाते नहीं थे। इतने में रास करते-करते श्रीकृष्ण ने कौतुक किया। श्रीराधाजी तो श्रीसीताजी बन गईं और श्रीकृष्ण श्रीरामजी बन गये। श्रीरामजी को रासलीला करते देखकर संतजी बड़ा आश्चर्य करने लगे। ऐसा दिव्य-दर्शन देकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये जैसे देखते-देखते सूर्य अस्त हो जाता है। जब वह समाधि से जगे तो आचार्य भगवान ने हँसकर पूछा—कहिये सन्तजी, क्या देखा? क्यों इतना प्रेम उमड़

रहा है ? साधुजी बोले कि–हे नाथ ! मुझे जन्म का फल मिल गया। आपकी कृपा से मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई और प्रभु का दिव्य दर्शन पाया। जो कोई न देख सके ऐसा मैंने देखा। अब मेरे सब सन्देह मिट गये, जैसे सूर्य की किरणों के लगने से सब तारे अदृश्य हो जाते हैं। अब तो मैं कुछ दिन आपकी ही सेवा में रहना चाहता हूँ। जिससे आपका सत्सङ्ग करके मुझे परमानन्द की प्राप्ति हो। आचार्य भगवानने उनका प्रेम देख आज्ञा दे दी। वे रहने लगे और नित्य आचार्य के दर्शन करके वैसा सुख पाते जैसा चकोर चन्द्रमा को देख आनन्द पाते हैं। पश्चात् एक समय कछार देश में बड़ा अकाल पड़ा। वहाँ के रहने वाले सब इधर-उधर भूखे-प्यासे भागने लगे। वहाँ के एक महान् विद्वान् पं. चन्द्रशेखरजी विख्यात थे। वे भी अन्नके बिना अत्यन्त दुःखित होकर बहुत दिन उपवास करके किसी प्रकार अपनी पत्नी के साथ काशी आ पहुँचे। उनका शरीर बहुत दुर्बल हो रहा था, भूख-प्यास से सब वेदान्त-ज्ञान भूल गये। वह चल-फिर नहीं पाते थे। अपनी दुर्गति देखकर पण्डितों के समाज में आने पर उन्हें बड़ी लज्जा लगी तथा विधाता पर क्रोध आया, क्रूरता उत्पन्न हुई। वे लज्जावश आत्म-हत्या करने को उद्यत हो गये। तब उनके परिचित पण्डितों ने उन्हें बहुत समझाया और उनका दुःख दूर करने को उन्हें आश्रय दिया, भोजनादि का प्रबन्ध भी कर दिया। फिर भी उनकी ग्लानि नहीं जाती थी, तब उनको आश्रम पर लाया गया। आचार्य भगवान से अपने ऊपर बीती सब दुःखद कथा सुना दी। सुनकर अन्तर्यामी आचार्य महाप्रभु ने कहा–पण्डितजी ! धैर्य धारण कीजिये। आपका पुण्य अब आगे सहायता करेगा। ऐसे कह शङ्ख बजा दिया। शङ्खध्वनि सुनते ही समाधि लग गई, उनकी पूर्वजन्मों की स्मृति-ज्योति जल

उठी। उन्होंने पूर्वजन्मों के कर्मों का सब हाल प्रत्यक्ष देखा कि-जिस कारण यह दुःख आया था। वही अपना अपराध देखा कि पूर्वजन्म में दूसरे के हिस्से का धन हड़प लिया था। वही पाप अब उदय हुआ। उसी के फल से यह महान् दुसह दुःख मिला। जब सब रहस्य देख लिया, तब उनके मन में दीनता आई, नहीं तो विधाता को ही दोष देकर गालियां दे रहे थे। जब वे समाधि से जगे तो बड़े आश्चर्य में थे। जगद्गुरु की महिमा जानकर वे रक्षा करो, रक्षा करो-ऐसे कह चरणों में पड़ गये और रोने लगे। तब प्रभु ने कृपा कर कहा-कर्मों की गति बड़ी गहन है, कोई जान नहीं पाता। जो लोग दूसरों का हिस्सा नहीं खाते हैं, वे ही मनुष्य देवताओं के समान हैं। कर्मों की गति रथ के पहिये के समान घूमती रहती है, बार-बार कर्मों का फल लौट-लौटकर आता-जाता रहता है। परन्तु लोग इन रहस्यों को नहीं जान पाते। युक्तिपूर्वक यह मेरी शिक्षा हृदय में धारण करो और इसका सर्वदा स्मरण रखना कभी भूलना नहीं। तब पण्डितजी हाथ जोड़कर बोले-महाराज! युक्तिपूर्वक जो आपने कहा सो वही युक्ति मुझे बताइये। वही उपदेश दीजिये कि जिससे जन्म-कर्म का जाल कट जाय। तब आचार्य भगवान ने कहा-और कोई युक्ति नहीं, एकमात्र ईश्वर-भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ युक्ति है। पश्चात् मन्त्र-दीक्षा दी। ज्योंही श्रीराम-मन्त्र सुनाया कि उनका दुबला ढांचा शरीर हृष्ट-पुष्ट हो गया। गुरुदेव का चरणोदक लेकर पण्डितजी लौट आये और नियम बनाकर काशी निवास करने लगे। उन्हें दुर्लभ भक्तिरस प्राप्त हो गया। उन्हें सारा जगत् अब आनन्दमय दीखने लगा। आचार्य प्रभु ने उनका घोर कष्ट कर्मजाल काटकर भक्ति दी और मुक्ति का द्वार उनके लिए खोल दिया। एकबार आश्रम में आचार्य भगवान ध्यान-

मग्न थे। अर्धरात्रि के उपरान्त कोई बहुत डरता हुआ बोला—हे दीनबन्धो ! मुझ पर भी कृपा करो। मैं 'भास' नाम का कवि हूँ। मैं दूसरे को कष्ट पहुँचाने की इच्छा करके शत्रुता के कारण मरते समय द्वेष का चिन्तन कर प्रेत हो गया। बड़ा कष्ट पाया, मैं बहुत दिनों से आपके द्वार पर पड़ा हूँ। मैं घोर पीड़ा पा रहा हूँ, अब सहा नहीं जाता। इसलिए पुकार रहा हूँ, मेरा भी उद्धार कीजिये। श्रीराम-मन्त्र का जप आप दिन-रात करते रहते हैं, इसलिए मैं आपके तेज के कारण आपके चरणों तक नहीं पहुँच सकता। तब आचार्य भगवान ने कहा—आप कवि होकर भी इतना बड़ा अपराध कर बैठे, ईर्ष्या करके दूसरे की हानि चाहने से तुम्हें यह दण्ड दिया गया है। अब तुम पश्चात्ताप कर रहे हो। अच्छा, अब तुम्हें दुर्गति से छुड़ाये देता हूँ। ऐसा कह आपने कृपादृष्टि की और उस भास कवि का सारा कष्ट दूर कर दिया। वह दिव्य विमान पर बैठकर दिव्य-रूप धारण कर स्तुति करने लगा—वह जय-जयकार करता हुआ अपने पिछले पुण्य भोगने के लिए स्वर्ग में चला गया। वह महान् दुःखी था। वह तत्काल महान् सुखी हो गया। उसको विमान पर बैठकर जाते देख एक ब्रह्मराक्षस दौड़कर आया और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक—उस भास कवि से कहने लगा—मुझे भी स्वर्ग लिए चलो। तब कवि ने उससे कहा—तुम आचार्य भगवान के पास जाकर प्रार्थना करो। तुम्हारा भी उद्धार हो जायगा। परन्तु उस ब्रह्मराक्षस ने फिर भी नहीं माना, वह विमान पकड़कर हठ करने लगा। तब विमान चालकों ने उसे मार भगाया। मार खाकर हारकर वह गङ्गा-तट पर गिर पड़ा इतने में एक सेठजी का लड़का वहाँ शौच के लिए आया। उस लड़के के सिर पर चढ़कर वह ब्रह्मराक्षस उसके घर गया और

वह लड़का पागल होकर ऊधम मचाने लगा। घर की स्त्रियों को नङ्गा करके कपड़े इकट्ठे कर जला दिये। उस लड़के के पिता सेठ ने बड़े-बड़े उपाय किये। झाड़-फूंक करने वाले हार गये। पर कोई लाभ नहीं हुआ। तब एकदिन उसी ब्रह्मराक्षस ने उपाय बताया कि अगर तुम मेरा उद्धार करा दो, तो तुम्हारा दुःख दूर हो जाय। श्रीरामानन्दाचार्यजी के पास मुझे ले चलो। तब सेठ उस लड़के को लेकर परिवार सहित आश्रम पर आया आचार्य प्रभु ने उसकी प्रार्थना पर अपना चरणामृत देकर उसकी प्रेत-योनि छुड़ा दी। वह लड़का अच्छा हो गया। प्रेत-योनि से छूटकर वह ब्रह्मराक्षस अपने कर्म भोगने के लिए फिर जन्मा। सेठ ने सुखी होकर परिवार सहित आचार्य भगवान के शरण हो दीक्षा ली। ऐसे जगत् के उपहार में जगद्गुरु सदा लगे रहते थे। कैसा भी कोई पापी इस दरबार में आता और पुकार करता तो उसका कल्याण हो जाता। कोई कैसा भी मनोरथ लेकर आवे तो उसकी विपत्ति दूर करके मनोरथपूर्ण किया जाता। कल्पवृक्ष के समान कृपानिधान आचार्य भगवान के पास आकर कोई निराश नहीं जाता था। एकबार अरब देश के रहने वाले एक अमीर सत्य की खोज में भारत में आये वह परमार्थ के पथिक थे। सत्य उपासक महान् धनवान अमीर साहब काशी में भी आये। वह संस्कृत खूब बोलते थे। वे बाल-ब्रह्मचारी थे तथा पृथ्वी पर सदा सोते थे। उनको सत्सङ्ग में बड़ा प्रेम था और सन्तों के वचन पालन करते थे। अमीर साहब काशी में आचार्य भगवान की महिमा सुनकर आश्रम पर आये तो प्रभु ने शङ्ख बजा दिया। उस मोहक ध्वनि को सुनकर सभी दिव्य आनन्द-समुद्र में गोता खाने लगे। अमीर साहब उस ध्वनि में समाधिस्थ हो गये। दिव्य-लोकों का दर्शन कर आश्चर्य करते हुए जगे।

पश्चात् प्रार्थना करने लगे कि—हमें भी आचार्य भगवान दर्शन देने की कृपा करें। फिर रो-रोकर आँसू बहाने लगे। उनका सच्चा प्रेम पहिचान कर प्रभु ने द्वार पर आकर दर्शन दिया। पश्चात् अमीर ने चरणों में प्रणाम कर प्रश्न किया कि—वह दिव्य-ज्योति किस प्रकार प्रकट होती है और सच्चे प्रेमी राम के साथ तन्मयता किस प्रकार होती है? आचार्य भगवान ने उत्तर दिया—वह ज्योति अग्नि की ज्वाला की तरह (रगड़ से) उत्पन्न होती है। वह ज्योति ध्यान में प्रकट इसलिए नहीं होती कि कोई ध्यान ठीक से नहीं कर पाता। यही कठिन कार्य है। अगर गुरु की कृपा हो जाय तो ध्यान लग जाय और कलिकाल के विघ्नों का जाल कट जाय। नामध्वनि के ध्यान से नाद सिद्ध होता है और नाद के द्वारा चन्द्रमा के समान दिव्य-ज्योति प्रकट होती है। और सच्चे प्रेमी भगवान श्रीराम के साथ सच्चे प्रेम से ही तन्मयता होती है। जब कोई सच्चा प्रेम लगावे तो उसी क्षण तन्मयता हो जाय। ऐसा ही उपाय संसार में भी लोग करते हैं तब किसी से क्षणिक प्रेम का कुछ अनुभव पाते हैं। यही सबसे सुन्दर और सरल उपाय है। जहाँ-जहाँ जगत् में स्त्री और धन आदि में तन्मयता लोगों में देखी जाती है, वहाँ-वहाँ यही उपाय व्यवहार में लाया जाता है। यह सुन्दर उत्तर सुन वह अमीरजी बोले—हे नाथ! यह उपाय मुझे बहुत अच्छा लगा। मुझे बड़ा हर्ष हुआ। किन्तु यह और बताइये कि इस उपाय का आधार लेकर कहाँ-कहाँ लोग भवसागर से पार हुए हैं। यह समझाकर मुझे इसी उपाय में दृढ़ करने की कृपा करें। आचार्य भगवान ने कहा—भारत में तो सर्वत्र ऋषि-मुनि यही उपाय काम में लेते आये हैं। करोड़ों भक्त हो चुके हैं सबका चरित्र कहाँ तक सुनायेंगे, परन्तु तीस प्रेमी और गोपियों का

चरित्र इसमें मनन करने लायक है। प्रेमी भक्तों की तन्मयता से भरी हुई कुछ कथायें बड़े प्रेम से आचार्य भगवान ने सुनाई सो सुनकर वह अमीर प्रेम से विह्वल होकर आँसू बहाने लगा और फिर बोला—हे प्रभो ! मैं कुछ दिन काशी रहकर आपका सत्सङ्ग करना चाहता हूँ। मुझे यही वरदान दीजिये कि मैं आपके चरण-कमलों का भ्रमर बन जाऊँ। प्रभु ने कहा—ऐसा ही हो। तब वह अमीर काशी में ही सदा के लिए निवास करने लगा। अब एक और कथा सुनें। काशी में केदारनाथ के निकट एक रघु नाम के पण्डित रहते थे। उनकी स्त्री महान् पतिव्रता थी। वह सदा पति की बड़ी भक्ति से सेवा करती थी। वह पति के मनसे मन मिलाकर सदा ऐसे रहती थी जैसे दूध में मिलकर शक्कर रहती है। उसकी प्रशसा सभी काशीवासी करते थे और उसके पतिव्रत धर्म पर आनन्दित रहते थे। सभी कहते थे—यह बड़ा पुण्यफल पायेगी और शरीर सहित स्वर्ग जायगी। वह पतिव्रता कभी-कभी आचार्य भगवान के दर्शनार्थ आश्रम पर भी अपने पति के साथ आकर दर्शन कर जाया करती थी। एकबार अँधेरी रात्रि में उसके पतिकी मृत्यु का समय आ गया। उसको विषधर सर्प ने आकर डस लिया। वह हा-हाकार कर पृथ्वी पर गिरा और प्राण निकल गये। वह पतिव्रता अत्यन्त व्याकुल होकर मरे पति को देख विलाप करके मूर्च्छित हो गई। मानो वज्र-सा हृदय में लगा। फिर वह सावधान होकर उठी और श्रीरामा-नन्दाचार्य को पुकारने लगी। उसकी आर्त्त पुकार पर आचार्य भगवान तत्काल उसी के घर में प्रकट हो गये और उसे धैर्य धारण करने को कहा। पश्चात् अपना शङ्ख बजा दिया। शंख-ध्वनि सुनाकर मरे हुए ब्राह्मण को फिर जीवित कर दिया। समर्थ प्रभु ने उसको कराल काल के गाल से निकाल लिया।

वह पतिव्रता पत्नी हर्षित होकर उठी और आचार्य भगवान के चरणों में पड़ी, आरती की। किन्तु, रात्रि के समय शंखध्वनि होने से लोग जाग पड़े और दौड़-दौड़कर ब्राह्मण के घर आने लगे। तब आचार्य भगवान आकाश-मार्ग से तत्काल अपने आश्रम पर चले आये। यह समाचार काशी-भर में फैल गया। घर-घर स्त्री-पुरुष कहने लगे कि—जैसे विष्णु भगवान ने ग्राह को गज से बचाया था वैसे ही तत्काल एक गरीब के घर रात में प्रकट होकर आचार्य ने मरे को जिला दिया, यह सदा अपने भक्तों की ऐसे ही रक्षा करते हैं। जैसे सज्जन राजा अपनी प्रजा की रक्षा करते हैं। जिसके भाग्य में विधाता ने दुर्गति लिखी हो उसको भी आप सुगति देकर नया जीवन दे देते हैं। जो भी इनके चरणों में अनुराग करे तो उसके मस्तक पर विधाता की लिखी खराब रेखायें मिटने में देर नहीं लगती।

यवनों से रक्षा

एकबार काशी में श्रावणी पर्व के समय समस्त भारत के विद्वानों की सभा हुई। सभी नगरों से प्रमुख-प्रमुख महानुभाव एकत्रित होकर विचार करने लगे। अपने-अपने स्थानों की दुर्दशा सबने सुनाई कि अब हिन्दू-धर्म का रक्षक कोई नहीं है। मुसलमान बड़ा अन्याय करते हैं। कहाँ जायें, क्या करें? हिन्दुओं के जीने की अब आशा नहीं रही। यवन तो हमारा धर्म ही नष्ट किये डाल रहे हैं। इस प्रकार जब सब विचार कर रहे थे तब पण्डित महेन्द्रकुमारजी ने कहा—काशी में इस समय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी निवास कर रहे हैं। वह महान् सिद्ध पुरुष हैं। वह ऐसे दयालु हैं कि साक्षात् मानो भगवान ही हों। सब लोग मिलकर उन्हीं के पास चलो। वे सर्वज्ञ हैं, सब कुछ करने

में समर्थ हैं। वहीं हमारा दुःख दूर होगा। यह विचार सुन सभी हर्षित होकर आश्रम पर आये। आश्रम पर आते ही उन्हें बड़ी शान्ति का अनुभव हुआ। सब विद्वान् विनय करने लगे कि—हे प्रभो! दर्श दीजिये। जैसे दैत्यों के उपद्रव से दुःखी होकर देवता लोग श्रीब्रह्माजी के पास जाकर विकलता भरी विनती सुनाते हैं, वैसे ही विद्वान् प्रार्थना करने लगे। उनकी आर्त्त-वाणी सुन आचार्य भगवान ने दर्शन दिया। सब विद्वान् चरणों में पड़ कहने लगे—दया करो, दया करो! फिर गद्गद हो रोते हुए बोले—हे नाथ! यवनों की अत्याचाररूपी आँधी आई है और पापमयी रात्रि हो गई है। अब हिन्दू धर्म की नैया निर्बल होकर डूबी जा रही है। दिल्ली में और लखनऊ में जो हत्याकाण्ड (कत्लेआम) हुए हैं तथा सर्वत्र जो घोर उपद्रव हो रहे हैं, वह हम वाणी से कह नहीं सकते। हे कृपालु प्रभो! आप उनको दण्ड क्यों नहीं देते। अब उनका अत्याचार सहा नहीं जाता। आपकी महिमा जगत् में प्रसिद्ध हो रही है। आप समर्थ हैं, दीनों का दुःख दूर करने वाले हैं। उन सबकी दुःख से भरी दीन-वाणी सुनकर दयामय आचार्य भगवान सहसा क्रोधित हो उठे और वीरतापूर्ण वचन बोले—आप लोग मुझसे जो कुछ कहें, मैं वही करने को तैयार हूँ। कहो तो उन समस्त यवनों का यहीं बैठे-बैठे विनाश कर दूं। जिससे फिर संसार में मुसलमानों का नाम भी नहीं रह जाये। मैं अपने तपोबल से क्षणमात्र में सबको भस्म कर दूं और जो हिन्दू मारे गये हैं, उन्हें चन्द्रमा निचोड़कर अमृत वर्षा कर जीवित कर दूं। और जो नगर के नगर ध्वस्त कर दिये गये हैं उनको फिर से सृष्टि करके सब बसा दूं। आप लोग जो भी इस समय कहें हम वही करने को उद्यत हैं। शीघ्र बोलो! मैं उन गौओं की हत्या करने वाले मदान्ध सभी पापियों को आज

ही काल के गाल में भेज दूं। ऐसे कहते-कहते आचार्य प्रभु के नेत्र लाल हो गये। ऐसा लगता था मानो अभी प्रलय होने वाला है। उनका वह जाज्वल्यमान, रोषमय रूप देखते ही पृथ्वी काँपने लगी। पहाड़ हिलने लगे। दशों दिशाओं में दाह-सा होने लगा। सूर्य का प्रकाश फीका पड़ गया। वायु स्थिर हो गया। दिग्गजों के कम्पित होने से पृथ्वी उछलने लगी। प्रभु का ऐसा दुर्धर्ष रूप देख तथा पृथ्वी पर भूचाल आया देख वे सब विद्वान् भयभीत हो गये। वे सब हाथ जोड़कर फिर प्रार्थना करने लगे कि हे तपोनिधि! हे सर्व समर्थ! हे आर्त्त बन्धु! यद्यपि वह मुसलमान हमें महान् कष्ट दे रहे हैं फिर भी हम उन सबका नाश नहीं चाहते। आप कृपा कर इतना ही करें कि उनको कुछ दण्ड देकर समझा दें। वह हम पर अत्याचार करना छोड़ दें। हे प्रभो! हम हिन्दुओं के हृदय में अपार दया रहती है। हम किसी की हिंसा करना नहीं चाहते। इसलिए बारम्बार दुःख पाते हैं। अब आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय करें कि जिससे सारा संसार सुखी हो जाय, बस यही हम चाहते हैं। तब प्रभु शान्त हो गये और बोले अच्छा जाइये, आप लोग अब आनन्दपूर्वक निर्भय रहिये। मैं उन दुष्टों को दण्ड देकर उनकी नीति सुधारूँगा। मैं सारे देश में यवनों की निमाज ही बन्द कर दूंगा, फिर देखना क्या होता है? वे समस्त महानुभाव अपने-अपने देशों को आनन्दित होकर चल दिये। इधर आचार्य भगवान ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। सारे संसार के मुसलमानों की निमाज बन्द करदी। जब मुल्लाजी मस्जिद में जाकर ऊँचे चढ़कर बांग देकर सबको बुलाते तो उनका गला रूँध जाता। मस्जिद में निमाज पढ़ने कोई बैठता तो उसका गला कोई पकड़ लेता। कोई निमाज नहीं कर पाता। लकवा-सा मार जाता। सब देशों में यही हाल हो गया। सब

मुसलमान आश्चर्य करते हुए अब तो घबड़ाने लगे। जब सबकी निमाज बन्द हो गई तो सब शोर मचाने लगे। बादशाह के पास इकट्ठे होकर गये दिल्ली में। बादशाह ने दरबार लगाया। बड़े-बड़े मुल्ला-मोमिन, पीर-फकीर सब बुलवाये गये। जो बड़ी-बड़ी करामातें दिखलाने वाले थे। वह सब विचार करके लज्जित हो गये। तब बादशाह बिजली की तरह कड़ककर बोला—तुम लोग सब बड़े करामाती बनते थे, पर आज तुम्हारी पोल खुल गई। क्या तुम लोगों की सिद्धाई सब ढोंग थी। तुम लोगों को मौत की सजा दी जायगी अगर सब मुसलमानों की निमाज नहीं खुली। अब अपनी कुछ करामात क्यों नहीं दिखाते। ऐसा हुआ क्यों है ? इसका रहस्य क्यों नहीं बताते ? यह सुन सभी मुसलमान मुल्ला-मोमिन आदि घबड़ा गये। सबका घमण्ड चूर-चूर हो गया। थोड़ी देर में इन्ननूर नाम का फकीर बोला कि—ऐसा मेरे मन में कुछ विचार आ रहा है कि—काशी में कबीर नाम का एक सिद्ध फकीर है। उसका नाम आजकल बहुत हो रहा है। वह मुसलमान ही था, लेकिन अब किसी हिन्दू का चेला बन गया है। वह अब मुसलिम धर्म की खिलाफत कर रहा है। वह बड़ा करामाती है, उसको कोई सिद्धाई से जीत नहीं सकता। मेरी समझ में यह उसी की करामात है जो कि सभी मुसलमानों को निमाज के समय लकवा-सा मार जाता है। अब और कोई उपाय नहीं है। कबीर की खुशामद करके किसी प्रकार उसे राजी कर लिया जाय। वह जो माँगे वही उसे दे दिया जाय। यह सुनकर सबने सोच-बिचारकर काशी जाने का निश्चय किया। बादशाह की सलाह से कुछ सेना के लोग, कुछ मंत्री, कुछ मुल्ला आदि बहुत-सा उपहार लेकर कबीरजी के पास काशी आये। धन आदि भेंट सामने रखकर प्रार्थना की। सब बातें सुना के

मीठी वाणी से कहा—हे श्रीकबीरजी ! आप बड़े दयालु हैं, हमारे दुःख को दूर कर दो। सारे देश में नमाज बन्द हो गई है सो यह धर्म का काम है। आप भी मुसलमान हैं, इस धर्म के काम को कर देंगे तो खुदा आप पर खुश होगा। श्रीकबीरजी ने कुछ दुःखी होकर कहा—आप लोगों ने पानी में आग लगाई है। अपने धर्म पर जब विपत्ति आई तो आप धर्म की दुहाई दे रहे हैं और जब दूसरे के धर्म को नष्ट करते हो, तब यह बात क्यों नहीं याद करते। गरीब हिन्दुओं को पूजा-पाठ न करने देना, मन्दिर तोड़ना, जान से मार देना, यह सब कौन-सा धर्म है ? पानी में लगी आग अब कैसे बुझेगी ? भाइयो ! ईश्वर तो सबका है, ईश्वर ने ही तुमको यह सजा दी है। मैं अब क्या उपाय कर सकता हूँ। यह सुनकर सब मुल्ला-मोमिन व्याकुल होकर निराश हो गये। फिर कहने लगे—हे कबीरजी ! आप हम सब पर दया करें, नहीं तो बादशाह हमें फांसी दे देगा। उसने ऐसा ही हुक्म दे दिया है। तब कुछ सोचकर कबीरजी बोले—अच्छा, आप हमारे गुरुजी के पास जाइये। हमारे गुरुदेव बड़े दयालु हैं। उनका प्रताप और प्रभाव देखियेगा। उनके चरणों में प्रार्थना करना, रोना और वह जो आज्ञा दें, वही करना। तब सब मिलकर आश्रम के द्वार पर आ बैठे और रो-रोकर बना-बनाकर विनती करने लगे। तब भीतर से आचार्य भगवान ने शङ्ख बजा दिया। शङ्ख सुनते ही सब बेहोश होकर गिर पड़े और समाधि में धर्म का फल तथा अधर्म का फल प्रत्यक्ष देखा। दुःखी हो पछताने लगे। उस ध्यान में सब अच्छा-बुरा, आकाश-पाताल, नर्क आदि देखा। अनेकों दिव्य वस्तुयें देखीं, फिर खुदा की आवाज आई कि—मेरी बात सुनो, आचार्य भगवान जो कुछ कहें वही करो, इसी में भलाई है। जब ध्यान से सब जागे तब आँखें मींजते हुए

आश्चर्य करते उठे। आश्रम के द्वार की देहली पर प्रणाम कर जोर-जोर से अपनी सब विपत्ति सुनाकर निमाज खोलने के लिए प्रार्थना की। बार-बार अपना दुःख सुनाने लगे, तब कृपा कर आचार्य ने कहा—आप लोग सावधान होकर सुनो। हे भाइयो! आप लोगों ने हिन्दुओं के साथ बड़ा अत्याचार किया है। दुनियाँ में जितने भी हिन्दू और मुसलमान हैं, उन सबका ईश्वर तो एक ही है। वह सबमें व्यापक है, सब कुछ देखता है और सुनता रहता है। उस ईश्वर से सदा डरना चाहिए। मनमानी चाल मत चलो। क्योंकि वह ईश्वर किसी का पक्षपात नहीं करता। किसी को तुम दुःख दोगे तो वह ईश्वर तुमको भी कठिन दण्ड देगा। केवल मुसलमानों का ही खुदा नहीं, वह तो सबका है। जैसे सूर्य सबको समान प्रकाश देता है। ईश्वर ही तो सबको उत्पन्न करता है तथा बड़े प्रेम से पालन करता है। उसकी ही सब लोग अनेक नामों से तथा अनेक प्रकार की पूजा से उपासना करते हैं। आप लोग केवल पूजा में और नाम में फर्क देखकर व्यर्थ ही लड़ते मरते हैं (हिन्दू तो भगवान कहते हैं, मुसलमान उसी को खुदा कहते हैं। हिन्दू मन्दिर में मूर्त्ति बनाकर उसकी पूजा करते हैं, मुसलमान मस्जिद में ध्यान धरके निमाज पढ़ते हैं) हिन्दुओं पर जो कर लगवाकर उनके धर्म को रोकने का कानून बनाया है, वह तुम लोगों ने बहुत बुरा किया है। इसी से खुदा ने तुमको यह सजा दी है। जैसे सबको शरीर निर्वाह के लिए भोजन-वस्त्र की आवश्यकता होती है वैसे ही आत्मा की शुद्धि के लिए ईश्वर की उपासना करना जरूरी है। जिस किसी को जैसी रुचि हो वैसे ध्यान करे या कीर्तन, पूजा-पाठ आदि करे। अब यदि आप लोग अपना भला चाहते हैं तो मुसलमान अब हिन्दुओंसे मिलकर रहें। बारह शर्तें हमारी माननी होंगी। यह अत्याचार बन्द

करने होंगे। तब निमाज खुलेगी। तब वह सब हाथ जोड़कर बड़ी मधुर वाणी बनाकर बोले—हे प्रभो! आपकी इस पवित्र वाणी को धन्यवाद है कि जिसे सुनते ही हमारे दिलों में ज्ञान का पौधा पैदा होकर लहराने लगा। आपके उपदेश को सुन सारा भ्रम दूर हो गया। अब हम लोगों का हिन्दुओं के प्रति प्रेम हो रहा है। अब आप जो कुछ कहेंगे हम वही करेंगे। यह हम सच-सच प्रतिज्ञा करते हैं। तब आचार्य ने आज्ञा की कि—हमारी इन बारह बातों का पालन किया जाय। वह शर्तें यह हैं—
१. मन्दिरों को बनाने से न रोका जाय, नये मन्दिर बनवाने पर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है वह हटा दिया जाय। २. किसी भी हिन्दू को फुसलाकर मुसलमान नहीं बनाया जाय और न जबरन धर्म भ्रष्ट किया जाय। ३. मस्जिद के आगे दुल्हा-दुलहिन को पालकी से उतारकर कष्ट न दिया जाय (कहीं-कहीं दूल्हा से छीनकर धर्मपत्नी को जबरन शासक लोग अपने घरों में ले जाते थे) और ४. गऊओं की हत्या बिलकुल बन्दकर दी जाय। यह सबसे बड़ा पाप है। बिना गऊओं के घी-दूध भारत में कहां से आयेगा। घी-दूध से ही सब भोजन की वस्तुयें बनती हैं। साथ ही ५. संस्कृत का पढ़ना जो बन्द करा दिया गया है वह फिर शुरू किया जाय। हाकिम लोग संस्कृत पढ़ने से हिन्दुओं को न रोकें। संस्कृत तो सबको प्रिय लगने वाली सुखद भाषा है। ६. हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों को न जलाया जाय। वेद, गीता, रामायण आदि ग्रंथ जलाकर उनका दिल न दुखाया जाय। और ७. तुम्हारा मुहर्रम का समय हो तो उस समय हिन्दुओं के त्योहार क्यों रोके जाते हैं? हिन्दुओं के कोई उत्सव न रोके जायें। ८. हिन्दू स्त्रियों का जबरन सतीत्व नष्ट किया जाता है यह बन्द किया जाय। इस घोर पाप से तुम्हारा सर्वनाश हो

जायगा। और ६. कथा आदि में मन्दिरों में शंख घण्टा आदि बजाने पर रोक लगाई गई है सो हटा दी जाय। दूसरे के धर्म को मत रोको। १०. कुम्भ आदि मेलों में हिन्दुओं पर जो कर लगाया गया है वह हटा दिया जाय। ११. मुसलमान फकीर अब हिन्दुओं को बहकाना छोड़ दें। १२. अपने धर्म पर चलना ही सदा सिखाया जाय। परस्पर प्रेम-भाव का प्रचार किया जाय। बस, यही हमारी बारह शर्तें हैं,इन्हें मान लिया जाय तो निमाज खुल जायगी। बादशाह को हस्ताक्षर करना होगा। सदा इन शर्तों को पालन करनेकी प्रतिज्ञा करनी होगी। यह आज्ञा पाकर मुल्ला लोग बादशाह के पास दिल्ली गये और दस्तखत कराके ले आये। उसी दिन से सभी देशों में यही कानून बनाकर लागू कर दिया गया। नगर-नगर, गाँव-गाँव में ढिंढोरा पीटकर इन शर्तों पर चलने को यवनों से कहा गया। तब आचार्य भगवान ने बादशाह के मन्त्रियों से कहा कि इन शर्तों को अब कभी तोड़ना नहीं, अगर अपना भला चाहो तो। यह फिर अच्छी तरह कान खोलकर सुन लो। इन बारह शर्तों में से अगर कोई एक भी शर्त का तनिक भी उल्लंघन किया गया तो समझ लेना तुम्हारी बादशाहत नष्ट हो जायगी। भारत से शासन समाप्त हो जायगा। ऐसा कहकर उसी समय निमाज खोल दी, बोले—जाओ, आज से निमाज के समय किसी को लकवा नहीं मारेगा। वे सब मुसलमान बड़े आनन्दित हुए। उस दिनसे सभी मुसलमान हिन्दुओं से भाई-भाईका-सा व्यवहार करते हुए रहने लगे। आचार्य भगवान के डरके मारे मुसलमान तनिक भी उपद्रव नहीं करते थे। उत्सव, आनन्द-मङ्गल हिन्दुओं के घरों में फिर होने लगे। सब श्रीरामानन्दाचार्यजी की जय बोलते थे। उनके ही बल से सब सुरक्षित होकर निर्भय रहने लगे। उन दिनों भारत

में रामराज्यका-सा सुख चारों ओर हो गया था। अत्यन्त आनन्द एवं शान्ति छा गई। सब विपत्ति हटकर स्वर्गका-सा सुख प्राप्त होने लगा। इस प्रकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने सारा भारत सुखी कर दिया। समस्त हिन्दुओं पर हर समय जो प्राण-संकट रहता था, वह सब कष्ट मिट गया। आचार्य के सहस्त्रों शिष्य थे। सभी विद्वान् सभी सिद्ध और सभी परोपकारी थे। उनमें एक शिष्य चेतनदास नाम के महात्मा थे। वह बड़े गुरु-भक्त तथा योगी थे। वह सदा आचार्य की सेवा में रहकर बड़ी उमङ्ग से सब कार्य करते थे। वे ब्राह्मण थे और बड़े सुन्दर थे, फिर विद्या-अध्ययन करके वैराग्य हो गया तब आचार्य की शरण में आ गये। वह बड़े चतुर और चैतन्य थे। इसीसे उनका नाम गुरुदेव ने चैतन्यदास रक्खा था। वह कथा भी बहुत सुन्दर शुकदेवजी की तरह कहकर भक्ति का प्रचार करते थे। वे बड़ी मधुर वाणी बोलते तथा बड़े भक्तिमान और ज्ञानवान थे। गुरुदेव की आज्ञा-पालन में उनको बड़ा उत्साह रहता था, यहाँ तक कि समाधि का सुख छोड़ सेवा में लगे रहते थे। उनका शरीर सब विकारों से रहित निर्मल सूर्य के समान चमकता था। वह चेतन-दासजी आचार्य को बहुत प्रिय थे। कभी-कभी उनको सुनाने के बहाने से सब शिष्यों को गूढ़ रहस्य समझाया करते थे। एक दिन श्रीचेतनदासजी ने बड़े प्रेम से गुरुदेव से प्रश्न किया कि—इस जगत् में हजारों ग्रन्थ हैं, परन्तु प्रायः राम-नाम की महिमा तो सभी ग्रन्थ गाते रहते हैं। जगत्में जितने लौकिक व्यवहार हैं सबमें भगवान का नाम ही आधार है। शुभ कार्यों के आरम्भ में प्रभु का नाम ही उच्चारण किया जाता है और अन्त समय में भी राम-नाम ही सत्य कहते हैं। अन्य-अन्य में तो चाहे मतभेद हो, परन्तु राम-नाम की महिमा में किसीका मतभेद नहीं। मरते

समय जो राम-नाम उच्चारण कर ले तो साकेत धाम प्राप्त हो जाता है। वह मुक्त हो जाता है। हे प्रभो! सो ऐसा आश्चर्यमय वह राम-नाम है क्या वस्तु? श्रीशिवजी भी अपने परिवार सहित राम-नाम जपते हैं—सो यह है क्या? तब श्रीआचार्य भगवान ने कहा—जिनको दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है वही श्रीराम-नाम का ठीक-ठीक स्वरूप देख पाते हैं। श्रीराम-नाम ही तो सब कुछ है, भला राम-नाम क्या नहीं है? यह रहस्य जो जान लेता है, वही नाम-तत्व को समझेगा। श्रीराम-नाम जप से जीवों की जड़ता नष्ट हो जाती है। यदि गुरु की कृपा से राम-नाम का बीजमन्त्र मिल जाय तो चार प्रकार की गुप्त जप-विधियाँ सीखकर प्रेम-पूर्वक जप में लगन लगानी चाहिए। मन एकाग्र करके ध्यान करे—राम-नामरूपी सूर्य की किरणों का महान् आनन्द देखे। आँखोंमें दोरुखा शीशा लगा है (इधर जगत् और उधर जगदीश्वर दीखता है) राम-नामरूपी हीरा हृदय में चमक रहा है। और जगत् में जो भी सत्यता है वह श्रीराम से ही है। हृदय में भी श्रीराम-नाम की ध्वनि गूंज रही है। जैसे घण्टा की ध्वनि होती है ध्यान लगाकर सुनकर अनुभव करो। परन्तु, जब तक ध्वनि न सुन पड़े तब तक राम-नाम की रट लगाना आवश्यक है। राम-नाम ही नामी प्रभु श्रीराम को प्रकट करके दर्शन कराने वाला है, नामी में और नाममें तनिक भी भेद नहीं है। श्रीचेतन-दासजी इस रहस्य को सुन मनन करके प्रणाम करके बोले—हे नाथ! जप की गुप्त रीतियाँ भी कृपा करके बता दीजिये। तब आचार्य प्रभु मधुर वाणी से बोले—अब जप-रीतियाँ भी मन लगाकर सुन लो। मुख से जो जप किया जाता है, वह वैखरी-ध्वनि जप कहलाता है और हृदयसे जो जप होता है उसे मध्यमा वाणी कहते हैं। और नाभी से जो जप किया जाता है उसे

पश्यन्ती ध्वनि वाला कहते हैं तथा कान लगाकर अनहद नाद वाला अन्तर में जो अजपा जप करते हैं वह परावाणी वाला है। और एक जप श्वांस के साथ भी किया जाता है, श्वांस के साथ ध्यानपूर्वक जप करने से बिना परिश्रम के सिद्धियां प्राप्त होने लगती हैं। ऐसेही एक और जप-विधि है कि राम-नाम ही सर्वत्र चारों ओर भरा हुआ व्यापक है, ऐसे तन्मयतापूर्वक ध्यान करे, जैसे चकोर चन्द्रमा को देखता है। नाम-जप के कुछ यत्नों से श्रीरामजी प्रकट हो जाते हैं, वह यत्न भी सुनो। अपने मस्तकमें ध्यान करो, आंखें बन्द करके श्रीराम-नाम जैसे चमकते अक्षरों में लिखा है। एकाग्र मन से ध्यान करते-करते 'रा' अक्षर से रामजी और 'म' अक्षर से श्रीसीताजी प्रकट हो जाती हैं। यह भी दिव्य जप-विधियां हैं, इनको जानकर जो श्रीराम-नाम में ही मन की तन्मयता करते हैं वही सब वांछित फल पाते हैं। जो जगत् के स्वप्न से जगते हैं वही जगत् का मोह त्याग पाते हैं और जो लगन लगाकर नाम में लगते हैं वही प्रभु का दर्शन करते हैं। आचार्य प्रभु के उपदेश सुनकर चेतनदास पूर्ण चैतन्य हो गये। वे ऐसे प्रफुल्लित हो उठे मानो चातक को स्वांति-बूंद मिल गया हो। जैसे कोई प्राणी मेले की भीड़ में बार-बार धक्के और धूल पा रहा हो, वैसे ही मनुष्य बार-बार जन्म-मरण के चक्र में पड़कर बिना राम-नाम के दुःख पा रहा है।

धर्म-प्रचार

आचार्य श्रीरामानन्दजी जीवों के कल्याणार्थ अनेकों कार्य एवं उपदेश करते रहते थे, जैसे चातकों पर मेघ स्वांति की वर्षा कर रहा हो। चन्द्रमा जैसे पूर्ण कलाओं से उदय होता है आप वैसे ही आश्रम में विराजकर सन्तरूपी चकोरों को अमृत-पान

कराते रहते थे। साधनों को बताकर उपदेश-दान तो करते ही थे साथ ही साधन का फल (साध्य) भी देते जाते थे। एकबार आचार्य प्रभु ने अपने शिष्योंको देश-देशसे बुलाकर एकत्र किया। चारों ओर समस्त शिष्यगण आकर ऐसे बैठे थे जैसे चन्द्रमा को घेरकर तारागण सुशोभित हों। वे शिष्य सभी सिद्ध और ज्ञान-वान थे। सभी उपदेश करके राम-भक्ति का दान करने वाले थे। उस सभा में आचार्य भगवान ने जगत् के उपकारार्थ यह वचन कहा—मेरे प्रिय बच्चो! तुम सब हितकर एवं रुचिकर मेरी बात सुनो। तुम सभी सिद्ध, ज्ञानी और भक्त हो। यों तो तुमको कोई स्वार्थ नहीं है, न कर्म काटने हैं, न संसार का बन्धन ही रहा है। फिर भी लोक का उपकार (दूसरों को दुःख से छुटाने के लिए) करते रहो। माया से मोहित जगत्के जीव सभी संसार चक्र में भटकते हुए दुःखी हो रहे हैं। वे सब कर्म के समुद्र में पड़े डूबते-उतराते हैं। काम-क्रोध आदि ग्राह उन्हें बार-बार निगल लेते हैं। उन सब जड़ जीवोंको सचेत करने के लिए ज्ञान, वैराग्यका प्रचार करो। सब मिलकर उन्हें उपदेश द्वारा उबारो श्रीराम-मन्त्र, श्रीराम-नाम और श्रीराम-भक्ति प्रदान कर जीवो को भवसागर से पार करो। किन्तु किसी प्रकार का भी स्वार्थ न रखके जीवों का उपकार करते रहना। आसक्ति, अभिमान आदि विकार तनिक भी न आने पावें। मान-बड़ाई की इच्छा बड़ी दुःखदात्मक होती है उसे त्याग देना। शिष्यों से मोह बढ़ाकर भ्रम में मत पड़ जाना। जो साधु धन पाकर महन्त बन अहङ्कार में फँस जाते हैं और रजोगुण में पड़, प्रभुका भजन भूल जाते हैं, प्रभु के धन को सन्त-सेवा में न लगाकर जगत् के सुखों में बिगाड़ते हैं, उस धन से भक्ति का प्रचार नहीं करते उनको कुत्तेकी-सी गति प्राप्त होती है। बाल्मीकि रामायण के उत्तर-

काण्ड में कुत्ते की कथा पढ़कर देख लो। और कभी कुधान्य मत खाना तथा खराब स्त्री-पुरुषों के कुसंग में मत पड़ना। कुसंग से बुद्धि बिगड़ जाती है। इसीलिए सदा सत्सङ्ग में रहना चाहिए। इसीलिए मन लगाकर यह बात सुन लो कि भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का प्रचार तो करना परन्तु अपने ज्ञान को खो मत देना। निरंतर अखण्ड तैलधारा के समान प्रभु का भजन स्वयं भी करते रहना। जैसे परोपकारी कबूतर की कथा भागवत में लिखी है वैसे परोपकार करते रहना। यह सुन्दर उपदेश सुन सबने गुरुदेव की आज्ञा मस्तक पर धारण की। गुरुदेव के हृदय में माया से भूले जीवों के प्रति महान् करुणा देखकर सब गद्गद हो प्रेमाश्रु बहाने लगे। पश्चात् आचार्य महाप्रभु ने श्रीरैदासजी और श्रीकबीरदासजी को बड़े प्रेम से पास बुलाकर कहा—इस कलियुग में बड़े-बड़े महर्षियों ने जन्म लिया है, यह हम दिव्यदृष्टि से देख रहे हैं। किन्तु, उन्होंने नीच-जातियों में जन्म लिया है क्योंकि वे निरभिमान होके शान्ति से भजन करना चाहते थे। बड़े कुल का, धन का, रूप का, विद्या का अभिमान मोक्षमार्ग में बाधक होता है। नीच जाति में दीनता रहती है, दीन भाव ही मुक्तिप्रद है। हम देखते हैं कि ऋषियोंने तथा बड़े-बड़े भक्तोंने इस समय जन्म तो लिया है पर उनको अपनी स्मृति नहीं है। यदि उनको थोड़ा भी सत्सङ्ग मिल जाय तो उनका ज्ञान-वैराग्य बढ़े और भक्ति का रङ्ग चढ़े। श्रीराम-भक्ति के मार्ग में जाति-पाँति की कोई आवश्यकता नहीं है। श्वपच आदि भी पहले भक्त हो चुके हैं, पुराणों में कथायें प्रसिद्ध हैं। परन्तु, इस समय वर्णाश्रम के अभिमान में लोग उनका आदर नहीं करते। अब तुम सब मिल कर उन दीनों का ग्राम-ग्राम में जाकर उद्धार करो। श्रीराम-नाम सुनाओ। योग-यज्ञ आदि साधन तो इस युग में ऊँची जाति

वाले भी नहीं पाते हैं। दृढ़-भक्ति और पूर्ण शरणागति भी होना बड़ा दुर्लभ है। वह तो सरस हृदय के भक्त ही कर सकते हैं। दर्शनशास्त्र का ज्ञान आजकल के साधारण बुद्धि वालों की समझ में ही नहीं आता। तुच्छ बुद्धि के लोग चक्कर में पड़ जाते हैं। इसलिए नीचे कुल वालों के लिए तो यह मार्ग बहुत सुखद है कि वे 'रामनाम में मन लीन करें। उन सबको श्रीराम-नाम प्रेमपूर्वक प्रदान करो। जब नाम नाद सुनते-सुनते सुरति लग जाती है तब रोम-रोम में राम-नाम रम जाता है। इस साधन से शीघ्र ही मन भगवान में लय होकर मोक्ष मिल जायगा। अन्य वेद के मार्गों में चलने की आवश्यकता नहीं। श्रीराम-नाम में कोई भ्रम नहीं, समान रूप से इसका सब जातियों में प्रचार करो। ऐसी गुरुदेव की आज्ञा सुनकर श्रीरैदासजी, श्रीकबीरजी आदि समस्त शिष्यगण ऐसे सर्वत्र प्रचार करने लगे—जैसे मेघ जल-धारायें वर्षाते हैं। एकदिन श्रीवेदव्यासजी आये और बड़े प्रेम से आचार्य भगवान से कहने लगे कि—वेद, उपनिषद्, गीता के अनेक भाष्य हुए। ब्रह्मसूत्र पर अनेकों भाष्य हैं, वे सब ज्ञान, वैराग्य बढ़ाने वाले हैं परन्तु मुझे सन्तोष नहीं हुआ। क्योंकि परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी का परत्व ठीक से किसी ने वर्णन नहीं किया। श्रीराम पर से भी पर ईश्वर हैं पूर्णब्रह्म हैं, जिनका कि भगवान शङ्करजी तथा सर्वज्ञ ब्रह्मर्षि भजन करते हैं। आप कृपा कर ब्रह्मसूत्र आदि पर भाष्य रचकर अपनी लेखनी का भी कुछ प्रभाव दिखलायें। गुप्त रहस्य प्रकट करदें, छिपावें नहीं। श्रीनारदजी की प्रार्थना मानकर जगद्गुरुने कहा—ऐसा ही होगा। श्रीव्यासजी प्रसन्न होकर आचार्य के गुण गाते हुए ब्रह्मलोक चले गये। तब कुछ विचार कर आचार्य भगवान ने आनन्दभाष्य की रचना की। जिसमें विशिष्टाद्वैत तीन तत्वों का वर्णन बड़ी

विलक्षणता से किया गया। वह अमृत वर्षाने वाला भाष्य (चन्द्र और सूर्य दोनों के समान) था। अमृत प्रेम और प्रकाश (प्रभामय ज्ञान को देने वाला था, उस भाष्य को सर्वप्रथम अपने प्रधान शिष्य श्रीअनन्तानन्दजी को आपने कृपाकर पढ़ाया। उस भाष्य का शीघ्र ही सर्वत्र प्रचार होने लगा। उस भाष्य को देख सभी विद्वान् प्रसन्न हुए किन्तु कुछ कपटी लोग द्वेषवश उसे देख जलने लगे।

भाष्य रचना

एकबार काशी में विद्वानों की सभा हुई। उस सम्मेलन में देश-देश के विद्वान् एकत्रित हुए। उस समय बड़ा सूर्य-ग्रहण का पर्व था। बड़े-बड़े दार्शनिक उस सभा में विराजमान थे। उस सभा में प्रवचन में किसी ने अद्वैत का, किसी ने द्वैत का, किसीने शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया। किसी ने द्वैताद्वैत तथा किसी ने जड़वाद का पक्ष लिया। सबने अपने-अपने पक्ष को लेकर वाद-विवाद ऐसा आरम्भ किया जैसे कि युद्ध होता है। परन्तु विवाद में कोई निर्णय नहीं हो सका, सब झगड़ते-झगड़ते थक गये। तब कुछ लोगों ने कहा—श्रीरामानन्दाचार्यजी के पास चलो, वहाँ निर्णय होगा। तब सभी आश्रम पर आये। आचार्य भगवान का दर्शन कर तेज के कारण उनकी आँखों में चकाचौंध हो गई। सावधान होकर वे सब विद्वान् अभिमानपूर्वक ऐसे कहने लगे कि आप जगत् में सिद्धों में शिरोमणि हैं, आपकी भगवान के समान ईश्वरता भी देखी जाती है। आप कृपा कर अपने अनुभव से ब्रह्म का वर्णन कीजिये। तब जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने आज्ञा की कि—जिसको ब्रह्म जानने की इच्छा हो वह अपनी बुद्धि का घमण्ड छोड़ दे तो ईश्वर की कृपा से ही ईश्वरका मर्म जाना जा सकता है। ऐसा कहकर आपने अपना भाष्य विद्वानों

को दिखाया तथा अनेकों रहस्यमय अर्थ करके अपने सिद्धान्त का निरूपण किया। अब तो विद्वानों का विद्याभिमान दूर हो गया। जैसे वैराग्य के उदय होने पर जगत् का मोह नष्ट हो जाता है। फिर भी तर्क में प्रवीण पण्डितजन कहने लगे कि—क्या ब्रह्मसूत्र के रचने वाले वेदव्यासजी का यही मत था। हमें पूर्ण सन्तोष हो सके ऐसा कुछ उपाय कीजिये। आप हमारे तर्क पर अप्रसन्न मत होना। तब आचार्य भगवान ने हँसकर ध्यान लगाया और श्रीवेदव्यासजी का आवाहन किया। ब्रह्मसूत्र के रचने वाले श्रीव्यासजी साक्षात् प्रकट हो गये। उनके अङ्गों के तेज का प्रकाश वहाँ छा गया। श्रीव्यासजी का दर्शनकर वे सब आश्चर्य करने लगे और चरणों में प्रणाम करके वेदव्यास महर्षि की जय बोलने लगे। अपना जीवन सफल माना। आंखें और हृदय प्रफुल्लित हो गये। उस समय सब मौन थे। तब पण्डितों के सामने हाथ जोड़े और नम्र हृदय, अभिमानरहित देखकर स्वयं श्रीवेदव्यासजी बोले—कल्पवृक्ष के फलों के समान वह वाणी थी कि—वेदों का सार 'ब्रह्मसूत्र' रचकर मैंने अपने शिष्यों को दिया था। उसका भाष्य (अर्थ) अनेकों भाष्यकारों ने अनेक प्रकार से अपनी-अपनी रुचि के अनुसार किया है। और प्रत्येक मनुष्य का इष्ट (ध्येय) अपने पूर्व कर्म के संस्कारोंवश निश्चित होता है। इसीसे उसका स्वभाव और बुद्धि वैसी ही साधना और आराधना (पूजा) की ओर खिचती है। यही विचारकर विधाताने ऋषियों के हृदय में प्रेरणा करके भिन्न-भिन्न इष्ट परक भाष्य रच दिये हैं। अपने कर्मफलानुसार लोग उसी भावना वाले मत का पक्ष ले उसीमें रत हो सिद्धि पाते हैं। जैसे किसी मेले की भीड़ में जाने से पहिले दूर से केवल हो-हल्ला ही सुन पड़ता है, परन्तु वहाँ

जाने पर वैसा शब्द नहीं रहता, वहाँ की सब बातें प्रत्यक्ष देखने-सुनने में आती हैं। ऐसे ही तर्कों-विचारों की गड़बड़ी तब तक रहती है जब तक साधना के द्वारा ब्रह्म का अनुभव नहीं होता। जब उसको अनुभव नहीं होता। जब उसको अनुभव स्वयं होता है तब तर्क की बात नहीं करता। जिनका पूर्वजन्म का ईश्वर भजन है वे ही भगवान के चरण-कमलों में अनुराग करते हैं। वे भक्तजन भक्ति को प्राप्त करने के पश्चात् वाद-विवाद की ओर दृष्टि भी नहीं करना चाहते। ऐसा जानकर वाद-विवाद का हठ त्याग दो और सत्य तत्व के प्रत्यक्ष दर्शन करने का प्रयत्न करो। मुक्तिदाता परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी के चरण-कमलों को हृदय में धारण करो। आचार्य श्रीरामानन्दजी ने जो आनन्दभाष्य रचा है यह मुझे बहुत प्रिय लगा है साथ ही श्रीनारदजी को भी यही प्रिय है क्योंकि इसे उन्होंने ही लिखवाया है। इसमें जो कुछ भी लिखा है उसी सिद्धांत को सत्य मानकर वाद-विवाद की लड़ाई छोड़कर वास्तविकता की पहिचान करो। श्रीव्यासजी के इस अमृतमय सुन्दर भाषण को सुनकर सभी विद्वान् आनन्दित हो उठे। सब हाथ जोड़कर श्रीवेदव्यासजी की स्तुति करते हुए जय-जयकार करने लगे। पश्चात् श्रीव्यासजी अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर कहने लगे। कि—श्रीआनन्दभाष्य में यह विशेषता भी है-कि वेदों में कुछ ऋचायें अद्वैत तत्व का प्रतिपादन करती हैं। कुछ ऋचायें द्वैत का वर्णन करती हैं परन्तु जब कोई केवल अद्वैत का ही पक्ष ले उसे ही मान बैठता है तो द्वैत वाली ऋचायें बुरा मानती हैं और जब कोई द्वैत का पक्ष लेता है तो अद्वैत वाली ऋचायें दुःखी होती हैं। परन्तु इस विशिष्टाद्वैत से सबको प्रसन्नता हो जाती है तथा तीनों तत्व भी आनन्दित होते हैं क्योंकि विशि-ष्टाद्वैत ब्रह्म, जीव, माया इन तीनों तत्वों का तथा द्वैत, अद्वैत

दोनों का विरोध न करके समन्वय कर देता है। श्रीव्यासजी का यह वचन सुनते ही भक्तजनों का मन ऐसे आनन्दित हुआ जैसे मेघ का शब्द सुन मोर आनन्दित हो जाते हैं। आकाश से देवता जय-जय श्रीरामानन्दाचार्य की कहकर फूल वर्षाने लगे। उसी समय सहसा श्रीवेदव्यासजी अर्न्तध्यान हो गये। वे विद्वान् पंडित आचार्य की शरणागति स्वीकार कर अपने-अपने स्थानों को चले गये। एकदिन श्रीयोगानन्दाचार्यजी आकर आचार्य भगवान से कहने लगे—हे प्रभो ! इस समय संसार में बड़ा अधर्म बढ़ रहा है। अनेकों पाखण्ड मत फैल रहे हैं। आप कृपा कर उन दुष्टों का अन्याय दूर करने के लिए सारे भारत में दिग्विजय के लिए यात्रा करें। आप मुख्य-मुख्य नगरों में चलकर धर्म का झण्डा नीचा जो हो गया है उसे ऊँचा करें। तब श्रीरामजी की भक्ति जगत् में बढ़ेगी और पाखण्डियों के पन्थों से बचकर लोग सुमार्ग पर चलेंगे।

दिग्विजय यात्रा

उसी समय एक राजदूत आया और आचार्य भगवान के सामने एक पत्र रखकर उसने प्रणाम किया। फिर वह दूत मधुर वाणी से कहने लगा—हे प्रभो ! मैं गागरौनगढ़ के राजा श्रीपीपाजी का दूत हूँ। मेरा बड़ा भाग्य है जो मुझे आपके दर्शन हुए। जबसे श्रीपीपाजी यहाँ से गये हैं तबसे भक्तिभाव की वहाँ धारा बहा रहे हैं। निरन्तर भजन, कीर्तन, सन्तों का संग तथा श्रीरामजीकी कथा में ही लगे रहते हैं। जब माघ महीने में कृष्ण सप्तमी आई तो उस दिन आपका जन्म-दिवस जानकर बड़े धूम-धाम से जयन्ती मनाई। सारा नगर सजाया गया था। मङ्गल गीत गाये गये थे। बाजे बजाये गये थे। ऐसा महान् उत्सव किया कि वह वर्णन नहीं किया जा सकता। वे जो आपकी चरण-

पादुका ले गये थे, उनका उस दिन पूजन किया था। उनकी आपके प्रति अनन्य भक्ति है। दूसरों की वह आशा नहीं करते। उस दिन चरण-पादुकाओं के पूजन के समय उन्होंने जब आपकी स्तुति की थी तो गद्गद कण्ठ और अश्रुधारा बह रही थी। आपके दर्शन बिना वह बहुत व्याकुल रहते हैं। अब मैंने आपका दर्शन किया तो मुझे बड़ा हर्ष हुआ है। श्रीपीपाजी ने आपकी कृपासे ऐसी अद्भुत भक्ति प्राप्त की है। आपके दर्शन बिना उनका एक-एक पल कल्प के समान बीत रहा है। इसलिए कृपा कर आप नगर में शीघ्र पधारें और सबको कृतार्थ करें। श्रीपीपाजी ने जो पत्र भेजा था, उसमें बड़ी-भारी उत्कण्ठा दर्शनों के लिए प्रकट की थी। उसे पढ़कर आचार्य भगवान बड़े प्रसन्न हुए और नगर में आने के लिए पीपाजी को वचन भी दे दिया था सो विचार किया और जगत् के कल्याणार्थ दिग्विजय के लिए अपने प्रिय शिष्य श्रीयोगानन्दजी की विनय मानकर चलना ही निश्चय किया। हृदय में भक्तों को सुखी करने की भावना भी उदय हुई। मङ्गलमयी यात्रा के लिए तैयारियाँ की गईं। अनगिनती शिष्य साथ में चले। भक्त आचार्य के ऊपर छत्र लगाकर चँवर करते हुए चले। छत्र ऐसा था मानो आधा चन्द्रमा ऊपर चल रहा हो और आगे चँवर ऐसे थे मानो श्वेत हंस उड़ते चल रहे हों। चलते समय जगद्गुरु ने शंख बजाया जिस ध्वनि को सुन सज्जनों को बड़ा हर्ष हुआ और दुष्टों का हृदय उदास हो गया। मार्ग में विशाल सन्त-समाज ऐसे लगता था जैसे इन्द्र के साथ करोड़ों देवता चल रहे हों। ग्रामीण भक्तों ने जब सुना कि गुरुदेव आ रहे हैं तो मार्ग में चारों ओर से आकर मार्ग सुधारकर जल-फल आदि की व्यवस्था करने लगे। सेठ, साहूकार, सन्तों की सेवा कर बड़े आनन्दित होते थे। मार्ग में वन-पर्वत सब शोभायमान

हो गये। नदियां निर्मल अमृत-सा मधुर जल बहाने लगीं। तालाबों में सुन्दर कमल खिले थे, जिन पर भ्रमर गुञ्जार रहे थे। आचार्य भगवान को आते देख पृथ्वी ऐसी मनोहर हो गई जैसे किसी महान् साधु स्वभाव वाले राजा की कीर्ति हो। ग्राम और नगर में जहां-जहां जाते वहां महान् आनन्द उमड़ने लगता सभी जनता जय-जयकार करती थी। सहस्रों सन्त कीर्तन करते हुए चल रहे थे। सर्वत्र भक्ति का रङ्ग छा गया। सन्तोंका राम-नाम गर्जन सुनकर दुष्टजनों की दुष्टता का नाश होने लगा। सबसे पहले प्रयाग में आचार्य भगवान पधारे। वहां बड़े आनन्द से आपने त्रिवेणी संगममें स्नान किया। प्रयागके विद्वान् एकत्रित होकर आचार्य से मिलने आये तथा सबने बड़े प्रेम और आदर के साथ सेवा की। आचार्य के उपदेश सुने तथा प्रयाग की जनता में बहुत से नर-नारी शरणागत हुए। पश्चात् उज्जैन में प्रभु आये, वहां के राजा तथा ब्राह्मण दर्शनार्थ आये। वहां अनेकों विरोधी जो वैष्णव धर्म का खण्डन करते थे, वे सब शास्त्रार्थ करके हार गये। वहां की स्थापना करके अनेकों विधर्मी पाखण्डियोंको वैष्णव मतमें लाकर शङ्ख बजाकर चले मार्गमें ऐसे चलकर गागरौनगढ़के समीप आ पहुँचे। श्रीपीपाजी गुरुदेव का आगमन सुनकर मन्त्रियों के साथ स्वागत करने के लिए आगे आकर मिले और चरणों में साष्टांग प्रणाम कर आनन्द बटोरने लगे। बड़े समारोह के साथ गुरुदेव को राजधानी में लाकर खूब धन लुटाकर चरण धोकर चरणामृत लिया तथा एक मन्दिर जो गुरुदेव के ठहरने के लिए बगीचे में बनवाया था, उसी में ठहराया। बड़े प्रेम से आरती-पूजा की। साथ के हजारों सन्त उस वाटिका को देख बड़े प्रसन्न हुए। वहां सन्तों के लिए पहिले ही से सहस्रों कुटियां बनाई गई थीं। वहीं सन्तों को ठह-

राया गया। श्रीपीपाजी गुरुदेवकी पूजा करके स्तुति करने लगे। उनको प्रेमपूर्वक गुरु का हजारों प्रकार से सत्कार करते हुए तृप्ति नहीं होती थी।

जगद्गुरु—स्तुति

ऐसे स्तुति करके, आरती करके बार-बार फूल वर्षाने लगे। धन-रतन न्योछावर करके प्रेम में मस्त हो गये। श्रीपीपा राजा की फुलवाड़ी में विराजमान होकर आचार्य भगवान बड़े अच्छे लग रहे थे। फुलवाड़ी में बसन्तऋतु होने के कारण बड़े सुन्दर रङ्ग-रङ्ग के फूल खिल रहे थे। मन्द-सुगन्ध चन्दन वनकी शीतल पवन चल रही थी। गुलाब के नवीन फूल ऐसे लगते थे मानो कामदेव के मणि-मन्दिरकी चाबी हो। माधवी लता बड़ी मनोहर थी। गुच्छों पर भ्रमर गुंजन कर रहे थे। वृक्षों के नये-नये पत्ते ऐसे लगते थे मानो माला पहनकर पुरुष खड़े हों और लतायें ऐसी थीं मानो सुन्दरियां ओढ़-पहनकर खड़ी हों। आम के वृक्षों में बौर ऐसे लग रहा था मानो मौर पहनकर दूल्हे आ गये हों। पलाश के वृक्षों में लाल-लाल फूल ऐसे लगते थे मानो विरहीजनों के हृदय को जलाने के लिए अङ्गारे जल रहे हों। सुन्दर भ्रमरों की गुंजार और कोयलों की कूकन विरहीजनों के मनको मन्थन कर हृदय के टुकड़े किये डालता था। केसर के फूल ऐसे लगते थे मानो कामदेव के सुनहले छत्र हों। मौलश्री ऐसे फूल बरसा रही थी मानो राजा की विजय का उत्सव मना रही हो। पक्षीगणों की चहचहाहट से विरहीजनों को वियोग का दुःख बढ़ रहा था तथा योगियों को आनन्द बढ़ रहा था। लताओं के कङ्कणों की भांति कुंज मण्डल बने थे, मानो कामदेव ने धनुष तान रखे हों। वाटिका के बीच-बीचमें निर्मल सरोवर भरे हुए थे। जिनमें रङ्ग-रङ्ग के कमल खिले थे तथा सारस

और हंस जल में तैरते उड़ते बड़े सुन्दर पंख चमकाते कूंज रहे थे। सन्तों के कीर्तन के मृदङ्ग की ध्वनि सुनकर पंख फैलाये मोर नाच रहे थे फूलों की सुगन्ध चारों ओर भरी थी। उस बाग में बसन्तऋतु की शोभाको देख सब श्रीराम-भक्तिमें निमग्न सन्तजन बड़े आनन्दित हो रहे थे। अयोध्या के प्रमोदवन के समान उस बाग को देख सभी सन्त बड़े आनन्दित हो रहे थे। वे सब स्वच्छन्द होकर निरन्तर कीर्तन, कथा, सत्सङ्ग में तल्लीन हो गये।

श्रीराम-रहस्य और श्रीसीता-तत्त्व

आचार्य भगवान के दर्शनार्थ उस प्रान्त के लोग दूर-दूर से आने लगे। बड़ी भीड़ हो गई। सबको दर्शन देकर प्रभुने उपदेश भी दिया। उस सभा में उच्चासन पर गुरुदेव को विराजमान कर श्रीपीपाजी सबके हितार्थ अपने प्रेम की उमङ्ग रोकते हुए बोले—हे दयामय गुरुदेव ! आप परम तपोमय-तेजोमय हैं। कृपा करके मुक्ति का उपाय और मुक्ति का स्वरूप क्या है ? सो समझाइये। तब भाष्यकार भगवान प्रसन्न होकर बोले—इस रहस्य को सावधान होकर सुनिये। श्रीसाकेत लोक ही अविनाशी और आनन्दमय श्रीरामजी का निजधाम है। वहाँ जाने पर फिर कोई लौटकर नहीं आता। वहाँ सदा प्रभु की सेवा का आनन्द मिलता है। सब लोक प्रलय में नष्ट हो जाते हैं पर साकेत प्रलय में भी नष्ट नहीं होता। साकेत में जाना ही मुक्ति कही जाती है। जैसे अन्न गेहूँ आदि को भून डालने पर फिर बोने से अंकुर उत्पन्न नहीं होता। वैसे ही भक्तका फिर जन्म नहीं होता। अब मुक्ति का उपाय मन लगाकर सुनो, कभी भूलना नहीं। श्रीरामजीका कथारूपी अमृत रोज पान करो तथा प्रेमसे श्रीराम-नाम कीर्तन करो। सर्वदा श्रीराम-रूप का स्मरण करो। प्रभु के

चित्र या मूर्त्ति की सेवा करो। श्रीरामार्चा करो और कार्य कम करके प्रभु की वन्दना करते रहो निरन्तर। अपने सब अभिमानों को त्यागकर प्रभु के दास बनो तो वे दयालु भगवान तुमको प्रिय सखा सदृश बना लेंगे। अपना सर्वस्व अर्पण कर प्रेमरस उनसे माँग लो। श्रीरामजी के हृदय में महान् कृपा भरी हुई है। अपने निज भक्तों को वे दुःखी नहीं देख सकते। वे प्रेमी-भक्त की आर्त्त पुकार सुनते ही प्रकट होकर प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। सच्चे मन से जब कोई निष्काम भक्त उनकी शरण में आता है तो श्रीरामजी उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं,क्योंकि वह सदा प्रेम के आधीन हैं। जब प्रभु श्रीरामजी रीझते हैं तभी अपना आनन्दमय धाम दे देते हैं, वही मुक्ति है। बस, मुक्ति का और कोई उपाय नहीं है। जगत् के दुःख से छुटकारा पाना है तो प्रभु की उपासना करो। भजन की अग्नि में अपने पापों को जलाकर जीव दिव्यरूप धारण कर जब परमधाम साकेतमें जाता है तो वहाँ प्रभु की दिव्य लीलायें देखते हुए प्रभु के चरण-कमलों की सेवा करता है। रूप-माधुरी का पान करता है। इस सरस और सुखद उपदेश को सुनकर सभा के सभी लोग आचार्य श्रीरामानन्द भगवान की जय बोलते हुए अपने-अपने घरोंको चले गये। इस प्रकार नित्यप्रति सभा में प्रभु का प्रवचन उपदेश होता जिसे सुनते ही लोगों के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाता था। श्रीपीपाजी को जो आनन्द प्राप्त हो रहा था उसकी उपमा नहीं थी। भक्तिरूपी नदी उमड़कर सबको डुबाने लगी। जब श्रीराम नवमी का दिन आया तो उस दिन ऐसा अपूर्व उत्सव हुआ कि जैसा त्रेता में दशरथजी के भवन में हुआ था। सन्तों ने बड़ा सुन्दर साज सजाया, गान होने लगा। बड़ा मनोहर संगीत समाज हुआ। इतना गुलाल उड़ रहा था कि आकाश में बादलसे लाल-

लाल छा गये। नगाड़ों की ध्वनि इतनी हो रही थी कि दुर्बल लोग भयभीत से हो रहे थे। ध्वजा-पताका, वन्दनवार सर्वत्र लहरा रही थीं। केले के पत्ते व लताओं की शोभा अपार थी। कोई फूल वर्षा रहे थे, कोई धन, कोई आभूषण और कोई लड्डू लुटा रहे थे। उस समय महान् उत्सव की लीला को देखकर आनन्द का समुद्र उमड़ चला। पृथ्वी और सूर्य सहित सारा ससार स्तब्ध-सा हो रहा था। सन्ध्या समय विशाल सभा लगी। अपार जन-समूह था। वहाँ शिष्यों के सहित आचार्य भगवान विराजमान हुए। जैसे बारह सूर्यों के बीच में विष्णु भगवान शोभित हों। तब आचार्य भगवान ने उपदेश दिया कि—हे सज्जनो! आप लोगों ने जैसे आज श्रीरामनवमी का उत्सव मनाया है, ऐसा ही प्रतिवर्ष मनाते रहना। श्रीरामजी पूर्णब्रह्म हैं। सब अवतारों के अवतारी हैं अर्थात् सबके कारण हैं। शरणागतों को सुख देने वाले हैं तथा संसार से मुक्ति देने वाले हैं। मत्स्य, कूर्म, बाराह, नृसिह, वामन, परशुराम, वासुदेव, बुद्ध, कल्की आदि अंश कला हैं। परन्तु श्रीरामजी स्वयं पूर्णब्रह्म हैं। ऐसे प्रभु सच्चिदानन्द, परात्पर भगवान श्रीरामजी को इष्ट बना कर उनका ही तैलधारा के समान अखण्ड ध्यान और नाम-जप सदा करते रहो। उस सभा में श्रीपीपाजी का एक मन्त्री जो कि श्रीरामजी का भक्त था, वह कहने लगा—हे नाथ! हमारा मन बड़ा चञ्चल है। मेरे ध्यान में श्रीरामजी आते ही नहीं हैं तो फिर उनका ध्यान अखण्ड कैसे करूँ? तब आचार्य भगवान ने कहा—इसका भी सुन्दर रहस्य सुनो। इस जीवरूपी राजा का अभिमानरूपी प्रधानमन्त्री है तथा सेना के समान इन्द्रियाँ हैं। और जो भी जीवके मन्त्री तथा सैनिक हैं सब कपटी कुटिल हैं। सब मिलके राजा को दबाकर स्वयं स्वामी बनाना चाहते हैं। वे

सब सदा दाँव-घात का अवसर देखते रहते हैं। वे सब कमजोर करके राजा के पैरों में वासना की बेड़ी डालकर दुर्गति करते हैं और डाट बताते हैं। यह मनके सहित ११ दुष्ट हैं जो सदा दुःख देते रहते हैं। जब कभी इस जीवरूपी राजा को सच्चे संतों का सङ्ग मिल जाता है तो सब संकट मिट जाता है और सेना के सहित सब मन्त्री भी तब अनुकूल हो जाते हैं। जब श्रीगुरुदेव की कृपा पूर्णरूपसे हो जाय तो यह सब राजद्रोही कुटिलता त्याग कर सात्विक हो जाते हैं और चञ्चलता तभी इनकी छूटती है जब गुरुदेव बीजमन्त्र प्रदान करते हैं। बीजमन्त्र के जप से भक्ति का वृक्ष उत्पन्न हो जाता है। यह वृक्ष चारों फल देता है तथा सब ताप शान्त कर देता है। इस कलियुग में और कोई उपाय है ही नहीं। भगवान के दर्शनार्थ नामसे बढ़कर कुछ साधन नहीं है। श्रीराम-मन्त्र जप हो और गुरुदेव की दया हो तो सब मन का मैल और मायाका जाल नष्ट हो जाय। जिन्होंने बहुत स्थानों में मन लगा रक्खा है उनको सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती। जब मन केवल गुरुदेव के चरणों में प्रेमपूर्वक लग जाय तब स्थिर होकर श्रीरामजी के रूप का आनन्द अनुभव कर सकेगा, पर बिना सत्सङ्ग के ऐसी बुद्धि नहीं हुआ करती। इसलिए सबको चाहिए कि सन्तों का सत्सङ्ग करके उनके चरणों की सेवा करे। जैसे पारस छूते ही लोहे को कंचन बना देता है वैसे ही सन्तजन जगत् से पार कर जीव को निर्भय बना देते हैं तथा अनूठी भक्ति प्रदान करते हैं। ऐसे अनुभवसे युक्त हितकर उपदेश सुनकर सभा के लोग पीपाजी के सहित आनन्दित हुए। इस प्रकार नित्य आनन्द उमड़ने लगा। जैसे मेघ अमृत धारा बर्षा रहे हों ऐसे भक्तिरस की वर्षा होने लगी। सन्तों के मन में बड़ा हर्ष था। वहाँ भक्तिरूपी फुलवाड़ी प्रफुल्लित हो रही थी। श्रीरामनवमी

के एक महीने बाद वैशाख शुक्ल नवमी को श्रीजानकीजी का जन्मदिन आया। उस दिन भी श्रीपीपाजी ने बड़ा-भारी महोत्सव किया। जैसे पहिले श्रीरामनवमी का उत्सव हुआ था उससें सौ गुणा उत्साह फिर देखने में आया। सारा सन्त-समाज बहुत ही आनन्दित हो रहा था। श्रीसीताजी के जन्म के गीत ('जनम लियो जानकी जनकपुर उमगत आनन्द गली गली' तथा 'जनमी जनकनन्दिनी आज' आदि) गाते हुए सन्तवृन्द चारों ओर मग्न हो नाच रहे थे। कोई गुलाल उड़ाते, कोई केशर रंग भर पिच-कारी चलाते। कोई किसी के मुख में दही लगाकर हास्य करते थे। भगवान शंकरजी इस उत्सव को देखने आये और जैसा त्रेता में उत्सव देखा था, वैसा ही सुख फिर देखकर हँसते हुए आनंदित हो नृत्य करने लगे। पश्चात् सभा लगी। उच्च सिंहासन पर आचार्य भगवान को विराजमान कराया गया। श्रीपीपाजी प्रणाम करके बोले—हे नाथ! ऐसा अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ कि मैं अपनी वाणी से कह नहीं सकता। हे गुरुदेव! आप जगत् के जालका हरण करने वाले हैं। आप कृपाकर माता श्रीजानकीजी की कुछ महिमा सुनाने की कृपा करें। तब आनन्द में भरे हुए आचार्य प्रभु बोले—हे राजन्! आप परिकर सहित सुनिये। श्रीसीताजी आदिशक्ति हैं। वही सबकी स्वामिनी हैं। वह कृपा की समुद्र हैं। साथ ही वह बहुत भोरी भी हैं। उनको दिव्यदृष्टि वाले योगी, ज्ञानी, महर्षि पूजते हैं तथा ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि ध्यान में उनकी वन्दना करते हैं। उन्होंने केवल जीवों पर करुणा करके अवतार लिया था। उनका नाम लेने से ही जीव भवसागर से तर जाते हैं। उनका तेज देखकर उमा, रमा, शारदा, इन्द्राणी आदि सभी वन्दना करती हैं। श्रीसीताजी के नूपुरों की ध्वनि से ही इस जगत् का विकास होता है और सीताजी के चरण नखों

की ज्योति से ही सूर्य-चन्द्र का प्रकाश होता है। श्रीसीताजी ने अनेकों ब्रह्माण्डों की रचना की है वही धारण, पालन तथा लय करने वाली हैं। वह अत्यन्त कोमल हृदय होने से दीन-दुःखियों पर अपार दया करने वाली हैं। अपने अनन्य भक्तों को महान् सुखी करती हैं। तथा संसार में डूबते देख हाथ पकड़ कर पार कर देती हैं। वह भक्तों के अवगुणों को नहीं देखतीं। माता की तरह दुलार करके भक्तों के मस्तक पर कर-कमल की छाया रखती हैं। जो सीताजी का नाम जप करता है उस पर भगवान अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं। जो श्रीसीताजी की जय बोलता है, उसकी सदा विजय होती है। श्रीसीताजी की महिमा श्रीहनुमानजी जानते हैं और कोई नहीं समझ सकता। यहाँ तक कि जो सीताजी की सखियों की भी चरण-रज प्राप्त कर लेता है वह परमाभक्ति प्राप्त कर ब्रह्मा से भी बढ़कर हो जाता है। श्रीसीताजी लता के समान हैं श्रीरामरूपी कल्पवृक्ष के साथ सदा रहती हैं। अथवा श्रीरामजी समुद्रके समान हैं, श्रीसीताजी तरंग के समान हैं। अथवा श्रीरामरूपी तालाब में हंसिनी के समान तैरती रहती हैं अथवा श्रीसीताजी कमलिनी के समान प्रफुल्लित हैं, श्रीरामजी भ्रमर के समान हैं। वे दोनों सदा एक साथ रहते हैं। इस प्रकार श्रीसीता-तत्व सुनकर समस्त सभा में मधुर रस छा गया। सभी पुलकित हो प्रेमाश्रु बहा रहे थे। कोई उस रस में समाधिस्थ हो उछलते और डूबते थे। श्रीसीताजी की महिमा सुनते ही किसी-किसी को तो प्रेमावेश उमड़ पड़ा। इस प्रकार आचार्य भगवान उस देशमें घर-घर भक्ति का प्रचार करके चलने को उद्यत हुए। श्रीपीपाजी सोचने लगे कि—गुरुदेव से मेरी इतनी प्रीति हो गई है कि अब इनके वियोग में मेरे प्राण नहीं रह सकेंगे। वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि—हे प्रभो!

कृपाकर अब मुझे अपने साथ ही रखलें। ऐसे कह अत्यन्त व्याकुल हो रोने लगे। उनका कण्ठ गद्गद हो गया, आँसू बहने लगे। उनका महान् प्रेम देखकर गुरुदेव ने आज्ञा दे दी कि साथ चलिये। श्रीपीपाजी राजवेष त्याग साधु बनकर चलने लगे तो सब उनको जाते देख दुःखी हो दौड़े। रानियाँ भी व्याकुल हो दौड़ी आईं। हा नाथ ! हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं, ऐसे पुकारने लगीं जैसे चकवी रात्रि के आते समय रोने लगती है। तब श्रीपीपाजी ने जगत् को नाशवान बताकर रानियों के मन में वैराग्य उत्पन्न कर दिया। एक रानी श्रीसीतासहचरी साधुवेष धारणकर साथ चल दी। इस प्रकार श्रीपीपाजी गुरुदेव के साथ आनन्दित होकर चल पड़े। उनका तप तेज का बगीचा प्रफुल्लित हो उठा। आचार्य भगवान के साथ सन्तों की जमात चली जैसे समुद्र उमड़ चला हो। मार्ग में सन्तों की बड़ी शोभा थी, कीर्तन करते हुए चल रहे थे। कीर्तन में—'जय सियाराम जै-जै हनुमान। जै श्रीरामानन्द भगवान।' यह ध्वनि हो रही थी। कीर्तन सुनकर ग्रामनिवासी दौड़-दौड़ आते और दर्शन कर बिना साधन के ही वे भवसागर से पार जाने योग्य हो गये।

चित्रकूट-दर्शन

कुछ विचार कर आचार्य भगवान सर्वप्रथम चित्रकूटमें आये वहाँ मन्दाकिनी गङ्गा में स्नान कर कामद पर्वत का दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुए। चित्रकूट के तीर्थों में सन्त ऐसे आनन्दित हो विचरने लगे जैसे चातकों को स्वांति-बुन्द मिल गया हो। फटिक शिला, अनसूया, भरतकूप आदि सब स्थान देखकर परम सुखी हुए। वर्षाऋतु के दिन आ चुके थे। आकाश में मेघ मड़राने लगे। तब आचार्य भगवान ने कहा—चार महीने वर्षा-भर अब यहीं ठहरना उचित है। साथ में बहुत से धनी शिष्य भी चल रहे

थे। उन्होंने बहुत-सी कुटी सन्तों के लिए बनवा दीं। सारा प्रबन्ध हो गया। वन में वहाँ सन्तों का बड़ा नगर-सा बन गया। चित्रकूट में आचार्य आये हैं ऐसा सुनकर प्रयाग के बहुत से भक्त दर्शनार्थ आने लगे। नित्य बड़े-बड़े उत्सव और भण्डारे होने लगे। वन में महान् आनन्द उमड़ने लगा। वर्षाऋतु में चित्रकूट की बड़ी विचित्र शोभा हो गई। हरी-हरी लतायें और वृक्ष चारों ओर ऐसे लग रहे थे मानो पर्वत को हरे-हरे वस्त्र पहना दिये गये हों। रङ्ग-रङ्ग के पक्षी चहचहा रहे थे। उछलते हुए हिरण इधर-उधर जा रहे थे। वन में और शिखरों पर मोर नाच रहे थे और मेघों की गर्जना सुनकर बार-बार कुहक उठते थे। जब पर्वत पर मेघ छा गये तो बड़ी सुन्दर शोभा हो रही थी। पर्वतों पर हरी लतायें मानो मेघों से आँखें मिलाकर चुम्बन करना चाह रही हों। मेघ जब प्रबल वेग से जल-धारायें वर्षाने लगे और अनेकों पर्वतों के निर्मल झरने, झरने लगे तो सुन्दर पक्षी जल में कल्लोल करने लगे। भीगने से स्वच्छ शिलाओं पर वन के वृक्षों के प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे, मेघ तथा बिजली की चमक पड़ रही थी, सो ऐसा लगता था मानो ब्रह्माजी उस शोभा का चित्र खींच रहे हों, रङ्ग भर-भरके मनोरञ्जन कर रहे हों। बिजली चमकती थी और छिप जाती थी, जैसे संसार में धन तथा रूप यौवन आकर चला जाता है। और आकाश में रङ्गीन इन्द्र-धनुष ऐसा लगता था मानो तीनों तत्व (माया, जीव, ब्रह्म) मिले हुए अलग-अलग अपना दर्शन दे रहे हों। रात्रि में जुगनू चमक रहे थे। जैसे कलियुग में अनेक नये-नये आविष्कार चमकने लगते हैं। मेंढ़कों तथा झींगुरों की ध्वनि ऐसी थी मानो लययोगी को अनहद नाद सुनाई पड़ रहा हो। मेघों में छिप जाने से शुक्लपक्ष का चन्द्रमा नहीं दिखाई देता था, जैसे कामीजनोंको ध्यानमें भगवान

का रूप नहीं दिखाई देता। हरी-हरी घास पर लाल-लाल वीरवहूटी ऐसी लगती थी मानो पृथ्वीरूपी रानी के वस्त्र पर बूटियाँ झलकती हों। पवन वेग से चलकर लताओं को झकझोर रहा था, मानो कोई नवीन नायक होली खेल रहा हो। मेघों के नीचे बगुलों की माला उड़ती ऐसी लगती थी मानो श्वेत फूलों की माला हाथी पहने हों। मन्दाकिनी गङ्गा उमड़कर बह चली मानो सती की तपस्या की लहरें उठ रही हों। मन्दाकिनी नदी के दोनों ओर हरे-हरे वृक्षों-लताओं पर बैठे शुक पक्षी पहचान में नहीं आते थे। शुकों का हरा रङ्ग लताओं से मिल जाता था। लताओंमें रङ्ग-रङ्गके फूल चारों ओर खिल रहे थे मानो कामदेव ने चित्रकूट के थके यात्रियों का श्रम दूर करने को सजावट की हो। मोर नाच रहे थे, कोयलें गा रही थीं, मेघ मधुर-मधुर मृदङ्ग बजा रहे थे। पपीहा वंशी-सी बजाते हुए पी-पी ध्वनि कर रहा था और इधर सन्त-समाज में श्रीसीताराम नाम-कीर्त्तन हो रहा था। सुन्दर कदम्ब के फूल ऐसे लग रहे थे मानो खेल-प्रिय प्रकृति ने इन गेंदों को खेलनेके लिए बनाया हो। इस प्रकार चित्रकूट पर्वत पर वर्षाऋतु का आनन्द आचार्य भगवान सन्तों के साथ अनुभव कर रहे थे। एकदिन अपने शिष्यवृन्दों के साथ आचार्य भगवान कामतानाथकी परिक्रमामें आये जहाँ पर भरतजी से भगवान श्रीरामजी का मिलन हुआ था, उस स्थान पर चरण-चिह्नों को देख नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। वहाँ गुरुदेव की ऐसी दशा हो गई कि वह वर्णन नहीं की जा सकती। मानो करुणा ही मूर्त्तिमान होकर आ गई हो। समस्त सन्त-मण्डली भी विह्वल हो गई, सभी रुदन कर रहे थे। जब कुछ सावधान होकर आचार्य भगवान बैठे तब श्रीसुखानन्दजी ने प्रार्थना करते हुए पूछा—हे अन्तर्यामी, हृदयेश्वर गुरुदेव ! यहाँ श्रीभरत-मिलाप

की लीला किस प्रकार हुई थी ? वह प्रेममयी कथा कृपा कर सुनाइये। तब आचार्य भगवान ने कहा—वह मैं वर्णन नहीं कर सकता। अच्छा ! वह लीला प्रत्यक्ष ही क्यों न देख लो। ऐसे कहकर अपनी अद्भुत महिमा से त्रेता में हुई वह लीला प्रत्यक्ष प्रकट करके दिखलाई। वहाँ पर श्रीसीतारामजी लक्ष्मणजी के साथ प्रकट हो गये। वैसी ही पर्णकुटी बन गई। वैसे ही मुनियों के समाज में प्रभु बैठे थे। उधर से श्रीभरत-शत्रुघ्न दौड़ते हुए आ रहे थे। उधर अयोध्या के सभी लोग रोते हा-हाकार करते आ रहे थे। श्रीभरतजी का आना सुनते ही प्रभु श्रीरामजी मिलने को दौड़े। भरतजी से मिलते समय में प्रेमवश भरतजी और प्रभु दोनों मूर्च्छित से हो रहे थे। उधर कौशिल्या आदि मातायें—मेरे लाल कहाँ हो, ऐसे कहते हुए गिरती पड़ती आ रही थीं। उस समय वहाँ के पत्थर भी प्रेमवश गल गये, तब शिलाओं में चरण-चिह्न बन गये। सभी अवधवासी प्रभु से कहते थे—हे प्राणाधार प्रभो ! अवध चलिये। कोई हाथ पकड़ रहा था, कोई चरण पकड़ रहा था, कोई मूर्च्छित हो गिर पड़ा था। यही लीला सभी लोग सामने प्रत्यक्ष देख रहे थे और सब अवध-वासियों की तरह व्याकुल हो रहे थे। उस समय सब सन्तों को शरीर की सुधि भूल गई, वह सब भी कहने लगे—हे श्रीरामजी ! अयोध्या लौट चलिये। ऐसे बार-बार विनय करने लगे। उन सबकी ऐसी दशा देखकर आचार्य भगवानने वह सब लीला छिपा ली। तब समस्त सन्त आश्चर्य करते हुए इधर-उधर देखने लगे, मानो सोते से जगे हों। पश्चात् वही लीला बार-बार स्मरण कर आनन्दित होकर गुरुदेव की महिमा पर मुग्ध होने लगे। बड़ी प्रीति बढ़ गई। हृदय में परमानन्द रस तथा भाव का मण्डप छा गया। इस प्रकार चित्रकूटमें आचार्य भगवान विचरने लगे।

सर्वत्र दिव्य प्रेम का समुद्र उमड़ने लगा। श्रीजानकी-कुण्ड का प्रेम से दर्शन किया तथा प्रमोदवन में ध्यानकर त्रेता की झांकी का अनुभव सबने प्राप्त किया। वह अनुभव कवियों की शक्ति से परे है। उसे वर्णन करने में सरस्वतीजी भी समर्थ नहीं हैं। हां, वही उस रस को समझ सकता है जो दिव्यदृष्टि से देख सकेगा। वह रस अमृत से भी मधुर है। श्रीसीतारामजी की ललित लीला शृङ्गार-माधुरी का सबको अधिकार नहीं। श्रीहनुमानधारा, गुप्त-गोदावरी, भरतकूप आदि जितने भी तीर्थ थे, सबका पांच दिन में दर्शन कर लिया गया। इस प्रकार वर्षाऋतु बीत गई। आकाश निर्मल हो गया। मन्दाकिनी की धारा जो वेग से बह रही थी, अब मन्द-मन्द बहने लगी। परन्तु चन्द्रमा का प्रकाश अब मन्द नहीं रहा, बढ़ गया।

जनकपुर–दर्शन

चित्रकूट में निवास कर आचार्य भगवान ने श्रीजनकपुर की यात्रा का विचार किया। समस्त समाज के साथ मिथिला में आये। वहां श्रीसीताजी का जन्म-स्थान देखकर बहुत प्रसन्न हुए। श्रीजनकपुर की शोभा अपार थी। वहां सब कुछ सुन्दर था। वहाँ की भूमि रमणीय, वन-उपवन, सरोवर, कुण्ड, कूप, ग्राम, नगर सब रमणीय थे। वहां की पृथ्वी बड़ी विचित्र थी, कोमल थी, शरदृऋतु का समय था। वहां सरोवरों में निर्मल जल भरा था तथा कमल प्रफुल्लित थे। भ्रमर गुंजन करते हुए कमलों का रस ले रहे थे। मिथिला में सुन्दर फुलवारियाँ फूल रही थीं, सुन्दर मनोहर सुगन्ध छा रही थी। नाना प्रकार के पक्षी बोल रहे थे। झुण्ड के झुण्ड हिरण विचर रहे थे। महात्माओं ने देखा कि जनकपुर में रात्रि भी बड़ी मनोहर लग रही है, मानौ मूर्त्ति-

मान कोई नवीन सुन्दरी देवी ही शृङ्गार करके विराजमान हो। उसका चन्द्रमा ही मुख था। मानो आकाश ही उसका नीला अम्बर था। तारागण ही मानो भूषण हों। चन्द्र-किरणें ही मानो माला हों। चमेली लता बड़े गर्व से फूल रही थी मानो वह इस देवी की सखी हो। तालाबों में कुमुद खिले थे मानो वे इस रात्रि देवी के उपासक हों। पृथ्वी पर चारों ओर चाँदनी छाई थी मानो श्रीजनक राजा की कीर्त्ति छा रही हो। हरे-हरे वनों में चाँदनी पड़कर ऐसा लगता था मानो रात्रिने सुन्दर शय्या बिछा दी हो। नवीन मालती लता प्रफुल्लित थी सो मानो शरद्‌देवी की दासी हो। चन्द्रमा का दर्शन चकोर और चकोरी कर रहे थे—जैसे श्रीसीताजी का दर्शन चारों ओर से उनकी सखी-सहेली करती हैं। शरद् में मिथिला की सुखद शोभा देख सब सन्त आनन्दित हो रहे थे। गुरुदेव के साथ वहाँ की छटा देख पग-पग पर परम आनन्द प्राप्त करते थे। आचार्य भगवान का आगमन सुनकर जनकपुरवासी अपना कार्य छोड़-छोड़ दर्शनार्थ दौड़-दौड़ कर आने लगे। नेपाल के राजा भी दर्शनार्थ आये। प्रभाव देख कर वह शरणागत हुए और वरदान माँगा कि—हमारे राज्य में धर्म बना रहे। उन्होंने खूब सेवा की। जनकपुरवासी महात्मा एकत्रित हो आचार्य का दर्शन और उपदेश प्राप्त करते थे। आचार्य भगवान ने श्रीसीतारामजी का परत्व वर्णन करके रस की वर्षा की। इस प्रकार भक्ति की विजय-ध्वजा फहराते हुए मिथिला का दर्शन किया। कौशिकी नदी और गण्डकी नदी, कमला, त्रियुगा, दुग्धमती आदि नदी, चक्रवर्ती सरोवर, लक्ष्मण सरोवर, जनक सरोवर, धनुष, मन्थु सरोवर, वशिष्ठ सरोवर। ज्ञानकूप, विद्याकूप, पुण्यकूप, सतानन्दकूप, सीताकुण्ड, विहार-कुण्ड, अमृतकुण्ड आदि बहुत से तीर्थों की यात्रा की। समस्त

दिव्य स्थानों को देखते हुए परिक्रमा की। वहाँ की भूमि सर्वत्र कोमल-कोमल देखकर सन्तवृन्द बड़ा आश्चर्य करते थे। जनकपुर की सुन्दर शोभा देखकर दिव्य दर्शन श्रीसीताजी की झाँकी प्राप्त करते हुए आचार्य भगवान ने वहाँ से शंख बजाकर प्रस्थान किया। वहाँ से आनन्दपूर्वक जगन्नाथ धाम के लिए सन्त-समाज के साथ चले। मार्ग में नगर और ग्रामों में कहीं-कहीं विश्राम भी होता था। कहीं-कहीं कोई विवाद करने वाले विद्वान् भी आते थे। वह आचार्य का तेज देखकर भयभीत हो प्रणाम कर चले जाते थे। कोई-कोई हठी शास्त्रार्थ करने लगते तो वह आचार्य के शिष्यों से ही हार जाते थे।

अनेक तीर्थ भ्रमण

ऐसे नगर-नगर में अपनी धाक जमाकर श्रीराम-नाम की महिमा का सबको उपदेश दिया। जगन्नाथपुरी जाने के पहिले मार्ग में ही आचार्य ने उपदेश किया कि जो कपिल भगवान का प्रिय आश्रम (गङ्गासागर) तीर्थ लुप्त हो गया है, उसे फिर प्रकट करना चाहिए। वहाँ बहुत कठिन मार्ग होने से लोग पहुँच नहीं पाते हैं। उसे सुगम बना दें। ऐसा विचार कर आपने दिव्य प्रभाव दिखाया जिसे जानकर बुद्धि चकरा जाती है। आचार्य भगवान ने सबसे कहा—आँखें बन्द करो। लाखों सन्तों ने आँखें बन्द कीं। सबको योगबल से गङ्गासागर संगम पर पहुँचा दिया सबने आँखें खोलकर समुद्र के तट पर अपने को पाया। वहाँ बूढ़े-बूढ़े ऋषि तप कर रहे थे। उसी समय समुद्र ने मार्ग दिया, प्रभु ने कपिलजी का आश्रम सबको दिखलाया। जहाँ पर साठ हजार सगर के पुत्र श्रीकपिलजी के तेज से भस्म हो गये थे और श्रीभगीरथजी गंगाजी को वहीं लाये थे, वहीं उन सबको स्वर्ग प्राप्त हुआ था। उस प्राचीन स्थान को जो कि विकट मार्ग होने

से लुप्त हो गया था आपने फिर प्रकट किया। तबसे अब तक गङ्गासागर का मेला प्रतिवर्ष चालू हो गया है। जब मकर की संक्रांति आती है तब गङ्गासागर तीर्थ में लोग दर्शनार्थ जाते हैं। यह महान् जगत् का उपकार करके जगन्नाथधाम में आये। श्रीजगन्नाथपुरी की शोभा देखकर आप बड़े प्रसन्न हुए। आपके साथ अपार सन्त समाज था। जनता दर्शनार्थ आने लगी। उधर जगन्नाथपुरी के राजा को स्वप्न में श्रीजगन्नाथजी ने आज्ञा दी कि—श्रीरामानन्दाचार्यजी पुरी में आये हैं, उनके शिष्य होकर उनकी सेवा करो। तब राजा हृदय में हर्षित होकर आया। बड़े प्रेम से पूजा की और सेवा की तथा शिष्य होकर बड़े आदर से मन्दिर में ले गया। राजा ने मुख्य मन्दिर की शोभा दिखलाई तथा जगमोहन (मन्दिर के आगे बैठने का भाग) दिखलाया। मुक्तिमण्डप, मणिमुण्डप भी दिखलाया जहाँ बैठ पंडित लोग नित्य शास्त्रार्थ करते थे। ऐसे अनेकों स्थान दिखलाये। अनेकों कुण्ड तथा अक्षयवट, मान-मन्दिर आदि देखकर जब आचार्य भगवान आकर सिंहासन पर विराजे तब राजा ने प्रार्थना की कि—हे प्रभो! बीच-बीच में समुद्र बढ़ आता है, पुरी के भवन बहुत से डूब जाते हैं। लोगों को बड़ा कष्ट होता है। कृपा कर आप इस दुःख को दूर कर दीजिये जिससे जगन्नाथपुरी की जनता निर्भय हो निवास कर सके। तब आचार्य भगवान ने कबीरजीको आज्ञा दी कि—जाओ समुद्र को मेरी आज्ञा सुनाकर समझा दो कि अब वह न बढ़े। गुरुदेव की आज्ञा से श्रीकबीरजी समुद्र किनारे गये और हँसकर बोले—तुम पुराने जड़भक्त हो, अपनी जड़ता के गुण को नहीं छोड़ते हो। परन्तु, अब इस स्थान से आगे मत बढ़ना। ऐसे कहकर अपना नाम और श्रीरामानन्दाचार्यजी की आज्ञा सुनाकर वहाँ चिमटा गाढ़ दिया कि इससे आगे मत आना।

अगस्त्यजी की याद करके कि वो ऋषि मुझे पी गये थे, डर के मारे समुद्र ने कबीरजीको प्रणाम किया और आकाशवाणी करके आज्ञा स्वीकार की। तबसे समुद्र तनिक भी वहाँ से आगे नहीं बढ़ा। तब पुरीवासी बड़े प्रसन्न हुए और निर्भय हो बस गये तथा प्रभु के दर्शनार्थ बड़ी-भारी भीड़ होने लगी। जय-जय ध्वनि करते और चरण-वन्दना करते थे। बड़े-बड़े पण्डित अपनी शङ्कायें ले-लेकर आते थे, उन सबका उत्तर श्रीअनन्ताचार्यजी तुरन्त दे देते थे। उस सन्त-समाजको देखकर सब ऐसे प्रफुल्लित थे जैसे सकामी लोग स्वर्ग के सुख पाकर आनन्दित होते हैं। जगन्नाथपुरी में चन्दन तालाब का उन दिनों जीर्णोद्धार हो रहा था, किन्तु उसमें स्रोत नहीं निकल रहा था। जलस्रोत के बिना सभी लोग चिन्ता में पड़े थे। तब आचार्य भगवान से लोगों ने प्रार्थना की, तो आपने श्रीयोगानन्दाचार्यजी को भेज दिया। उन्होंने जाकर चन्दन तालाब के बीच में बैठकर समाधि लगा ली और प्रतिज्ञा की कि जब तक जलस्रोत नहीं निकलेगा तब तक समाधि से नहीं उठेंगे। तब सहसा जलस्रोत अपने आप फूट निकला। सारे सरोवरमें इतना जल भर गया कि श्रीयोगानन्दजी समाधि लगाये हुए उस जल पर उतराने लगे। पश्चात् समाधि त्यागकर आनन्दित हो गुरुदेव के पास चले आये। यह दृश्य देखने जनता उमड़ पड़ी। सभी आचार्य और उनके शिष्यों का प्रताप देखकर बड़ा आश्चर्य करते थे। सभी जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी की जय बोल रहे थे। इस प्रकार श्रीजगन्नाथधाम का दर्शन कर और वहाँ के सब लोगों का कष्ट दूरकर और राजा को बारम्बार वैष्णवधर्म का मर्म समझाकर वहाँ से आपने प्रस्थान किया। सेतुबन्ध रामेश्वरधाम में आकर वहाँ के तीर्थ रामझरोखा, रामसरोवर आदि अनेकों स्थान देखे।

सेतु का दर्शन कर अपने शिष्यों सहित आप बड़े आनन्दित हुए। किन्तु, वहाँ पर उदार आचार्य भगवान ने देखा कि शैव लोग वैष्णवों से बड़ा विरोध कर रहे हैं। शैवोंने जब देखा कि सहस्रों वैष्णव तुलसीमाला, कण्ठी, तिलक धारण किये आये हैं तो कटु वचन कहकर हँसी करने लगे। जैसे कोई सूर्य पर धूल फेंक रहा हो। तब श्रीपीपाजी ने कहा—हे गुरुदेव! मेरी प्रार्थना है कि इस धाम में न ठहरकर दूसरे तीर्थों में चलें क्योंकि यहाँ वैष्णवों का अपमान होता है। आप कृपा कर आज्ञा दे दीजिये कि— कोई भी सन्त यहाँ रामेश्वर मन्दिर में दर्शन करने न जाय। अनन्य श्रीराम-भक्तों के लिए क्या आवश्यकता है जो दूसरे देवी-देवताओं का पूजन किया जाय। तब मुसकराते हुए आचार्य ने कहा—इस रहस्य को ठीक से समझो। श्रीशिवजी समस्त वैष्णवों में श्रेष्ठ हैं और श्रीरामजीके परमभक्त हैं। दूसरे नहीं हैं, वे अपने हैं। जब सेतु बांधा गया था तब श्रीरामजी ने विचार किया था कि रावण शिवजी का भक्त है। युद्ध के समय कहीं शिवजी के पास जाकर रावण ने पुकार की तो—शिवजी मेरे भक्त हैं, उनका वचन मुझे मानना पड़ेगा। फिर रावण का वध नहीं हो सकेगा। बड़ा-भारी विघ्न हो जायगा। इसलिए समुद्र के इधर ही शिव को अचल कर स्थापना कर दी और लंका में जाकर रावण का संहार किया। श्रीरामजी के भक्तों को तो शिवजी बड़े भ्राता के समान मानते हैं, इसलिए श्रीशिवजी का सदा सम्मान करो। और जो शिव-भक्त रामजी का विरोध करते हैं उन्होंने अपने लिए नर्क का रास्ता बना लिया है। वह वैष्णवों का अपमान करके बड़ा दुःख पायेंगे। ऐसे कहकर आप उठ खड़े हुए और शंख बजाकर सहस्रों सन्तों को साथ ले शिवजी के मन्दिर पर अधिकार करने चले। जब मन्दिर के बाहरी फाटक पर पहुँचे

तो द्वारपालों ने रोक दिया और कहा—यहाँ कोई वैष्णवों का तिलक लगाकर मन्दिर में नहीं आ सकता। हमारे लिए यही आज्ञा है। जिसे रामेश्वर मन्दिर में दर्शन करना हो वह शैवों का तिलक त्रिपुण्ड लगाके आवे। तब आचार्य भगवान ने अपना अद्भुत शंख बजा दिया। उधर शिवजी की समाधि भङ्ग हुई और आकाशवाणी करके बोले कि—हे पुजारियो! ध्यान से सुनो। आज हमसे मिलने हमारे परम प्रिय श्रीरामानन्दाचार्यजी आये हैं। वे द्वार पर हैं। जाओ, शीघ्र उनको आदरपूर्वक मन्दिर में लिवा लाओ। और सब मिलकर उनकी सेवा करना उनको मेरे ही समान मानना। श्रीशिवजी की दिव्य आज्ञा पाकर पुजारी लोग दौड़ पड़े। श्रीशिवजी की वाणी सुन बड़ा आश्चर्य हो रहा था। शीघ्र चँवर-छत्र लेकर आये और आचार्य का दर्शन कर प्रणाम किया तथा श्रीशिवजी की आज्ञा सुनाकर आदर पूर्वक मन्दिर में लिवा ले चले। आचार्य के साथ सन्तों की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे इन्द्र के साथ देवता जा रहे हों। भीतर मन्दिर में विराजमान कराकर पुजारी लोगों ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, आरती उतारी, फिर बड़े प्रेम से कहने लगे—आप हमें जो कुछ आज्ञा दें वही सेवा हम करेंगे। तब दयामय आचार्य भगवान ने आज्ञा की कि—आप लोगोंकी सब सेवा हमने स्वीकार करली। परन्तु, अब हमारी यह बात माननी होगी कि यहाँ जो भी श्रीराम-भक्त आवें उनका तिलक देखकर उन्हें न रोका जाय, न उपहास किया जाय। हमारी आज्ञा है। श्रीरामजी के भक्तों का तो सदा ही इस मन्दिर पर अधिकार है क्योंकि श्रीरामजी ने ही तो स्थापना की थी। तुम लोगों को तो केवल सेवा-पूजा का कार्य सौंपा गया है। यह सुनकर सभी पुजारीगण लज्जित हो गये। उन्होंने उसी समयसे आचार्य की आज्ञा मस्तक

पर धारण की। इस प्रकार सन्तों का सम्मान बढ़ाकर वैष्णवों की विजय-ध्वजा फहराकर आचार्य भगवान ने सेतुबन्ध रामेश्वर धाम का दर्शन किया और अपने प्रताप से शैव तथा वैष्णवों का विरोध शान्त करके वहाँ से प्रस्थान किया। मार्ग में विजयनगर के राजा श्रीबुक्कारायजी ने सुना कि श्रीरामानन्दाचार्यजी आ रहे हैं, वे बहुत दिनों से महिमा सुन रहे थे तो उन्होंने अपना सारा नगर सजवा दिया। स्वागत के लिए बड़ी-बड़ी तैयारियाँ कीं। ठहरने के लिए बगीची की सजावट की। उस बगीची में सुन्दर निर्मल जल वाला सरोवर था। जिसकी सीढ़ियाँ बड़ी मनोहर थीं। राजा बुक्काराय अपने मन्त्रियों के साथ नगर के फाटक पर आये और आचार्य भगवान की आरती करके द्रव्य लुटाया। पालकी में बैठाकर आचार्य को नगर में लिवा ले चले तथा राजाने स्वयं पालकी में कन्धा लगाकर महान् गुरु-भक्ति का परिचय दिया। उन्होंने मन से ही अपना गुरु मान लिया था। जब बगीची में गुरुदेव विराजमान हुए तब ऐसी शोभा थी मानो नन्दनवन में श्रीवृहस्पतिजी सुशोभित हों। राजा ने खूब सेवा की। सन्तों का सत्कार अपने सगे सम्बन्धियोंका-सा किया। नित्य बड़ा विशाल भण्डारा होता था और भी साधु-ब्राह्मण उसमें प्रसाद पाने आते थे। अनेक प्रकार की खीर बनाई जाती थी। राजा परिवार सहित गुरुदेव का तथा सन्तों का उच्छिष्ट प्रसाद श्रद्धा से लेता था। प्रसाद के प्रभाव से जो रोगी दुःखी थे उन सबके दुःख रोग आदि नष्ट हो गये। श्रीरामजी के चरणों में प्रेम हो गया। एकदिन राजा ने प्रार्थना की कि—हे गुरुदेव! मुझे भी उपदेश दीजिये। राजा की प्रिय विनय सुन आचार्य भगवान ने मधुर वाणी से उत्तर दिया कि—हे राजन्! आप सन्त-सेवी हैं, सत्सङ्गी हैं और उदार दानी हैं। यह सब शुभ गुण हैं।

अब हमारा यही उपदेश है कि राजयोगी बनो किन्तु राजयोग में भोगोंका सुख बड़ी हानि करता है। इसलिए विषयों की आसक्ति विष के समान त्याग दो। यह सुख तो अन्धा बनाकर बन्धन में डालने वाले हैं। आप पूर्वजन्म के योगी हैं, कुछ वासना रह जाने से फिर सुख भोगने के लिए राजा हुए हैं। इस सूक्ष्म रहस्य को मनन करो कि मायारूपी समुद्र का स्रोत बारम्बार फूट पड़ता है। अब प्रेमपूर्वक श्रीराम-मन्त्र का जाप करो। दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन है, इस फौज पर विजय प्राप्त करो। श्रीसीतारामजी के चरित्रों को सदा सुनो और सन्तों की सेवा करो। जब हृदयमें प्रकट होकर प्रभु दर्शन देंगे तभी समस्त जगत् की वासनायें नष्ट हो जायेंगी। यह उपदेश सुन राजा सपरिवार शिष्य हुआ। और गुरुदेवका यह उपदेश सोनेके पत्र पर लिखवा कर अपनी पूजा में रक्खा। नौ दिन तक आचार्य प्रभु वहाँ रहे देश में भक्ति का प्रचार कर प्रजा के आचरण सुधारकर वहाँ से चलने की तय्यारी की। राजा गुरुदेवको जाते देख बहुत व्याकुल हुए। यहाँ तक कि रोते-रोते पृथ्वी पर गिरने लगे तो मन्त्रियों ने रोक लिया। पश्चात् गुरुदेव चले तो राजा भी मन्त्रियों के साथ चले और शिवकांची तक पहुँचाने आये। जैसे कमल के साथ भौंरे चले आते हैं। जब शिवकांची में आचार्य आये तो सभी शैवों को ईर्ष्या उत्पन्न हुई। परन्तु रामेश्वरधाम में जो शिवजी की आज्ञा हुई थी, वह समाचार जब सुना तो सब डर गये और ऐसा समझा कि यही साक्षात् देवताओंके रक्षक भगवान हैं, ऐसा मानकर सबने नमस्कार किया। नाना प्रकार के उपहार लाते और प्रणाम करते थे तथा उपदेश सुनाकर द्वेष को दूर कर देते थे। वहाँ सबके मनका क्षोभ मिटाकर आचार्यने विष्णु-कांची में प्रवेश किया। विष्णुकांची के निवासी वैष्णवों को बड़ा

हर्ष हुआ। आचार्य भगवान की महिमा सुनकर बड़ी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हुई, किन्तु वहाँ कुछ कुटिल लोग भी थे। श्रीरामानन्दजी को सहस्रों शिष्यों के सहित देख उनको बड़ा द्वेष उत्पन्न हुआ। वे श्रीरामानुजाचार्य मत के आचारी थे। उनमें से एक प्रमुख नेता आया और श्रीकबीरजी की जाति की निन्दा करके कड़वे वचन बोलने लगा। वह बड़ा (कुचारी) कुचाली था। सरल सन्त कबीर का घोर अपमान उसने किया तो उसी समय उसे दैवी दण्ड मिला। यह प्रभाव देख सभी डर गये। आचार्य को साक्षात् भगवान मानकर प्रणाम करने लगे। वाद-विवाद त्याग दिया। वहाँ से आचार्य भगवान श्रीरङ्गम् आये। साथ में संतों का समूह कीर्तन करते हुए चल रहा था। उस ध्वनि को सुनकर मार्ग के बड़े-बड़े विद्वान् धनवान सभी प्रेमवश नाचने लगते थे। जय सियाराम जय-जय हनुमान—जय श्रीरामानन्द भगवान। यही ध्वनि कीर्तन में हो रही थी। कीर्तन सुनकर श्रीरङ्गम् के लोग सन्तों की हँसी उड़ाने लगे। कलियुग के प्रभाव से उस समय वहाँ के लोग बड़े क्रूर हो रहे थे। सर्वप्रथम श्रीरङ्गजी के मन्दिर में श्रीपीपाजी दर्शन करने गये, बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे प्रणाम किया। इनको श्रीरामानन्दजी का शिष्य जानकर वहाँ के प्रमुख पुजारी श्रीधरणीधरजी ने कहा—आपके गुरुजी को धन्यवाद है जिनको चमार और मुसलमान बहुत प्यारे हैं, अर्थात् उन्होंने वर्णव्यवस्था बिगाड़ दी। रैदास और कबीरको साथ लिए फिरते हैं। तब श्रीपीपाजी ने कोमलवाणी से सच्ची बात बताते हुए कहा—सभी प्राचीन आचार्य और वेद-शास्त्र, पुराण ऐसा ही कहते आये हैं कि—कोई भी क्यों न हो, जो निर्मल मन से श्रीरामजी का भजन करता है वही सच्चा सन्त है। और आपके आचार्यों (श्रीरामानुजाचार्यजी आदि) ने भी पहिले अनेकों नीच

जाति के पापियों का उद्धार किया है। उन्होंने जाति-पाँति नहीं देखी, केवल उनकी सच्ची हृदयकी भावना देखी थी। कोई दीन-हीन कैसा ही पापी हो अधम से अधम धर्मभ्रष्ट ही क्यों न हो यदि वह भगवान की शरण में आ जाय तो उसकी जाति-पाँति देखना या नीच जाति का बताकर निन्दा करना घोर अपराध है। ऐसा कहकर श्रीपीपाजी आचार्य भगवान के पास चले आये और वहाँ जो पुजारियों ने दुर्वचन कहे थे वह सब समाचार सुना दिया। तब श्रीआचार्य भगवान ने सहसा शंख बजा दिया। वह दिव्य शंखध्वनि सारे रङ्गम् में गूंज उठी। उस ध्वनि के आगे सिंहकी गर्जन तुच्छ थी। शंख बजाकर आचार्य भगवान अंतर्द्धान हो गये और श्रीरङ्गजी के निज-मन्दिर में जहाँ पुजारी भगवान की पूजा कर रहे थे वहीं जाकर प्रकट हो गये। पुजारी लोग चौंक पड़े भयभीत होकर वह कुछ बोल नहीं सके। सुध-बुध भूल कर श्रीरामानन्दाचार्यजी का सूर्य-सा तेज देख वे सब ऐसे फीके पड़ गये जैसे सूर्य के आगे दीपक। जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी को सामने आया देख श्रीरङ्गजी ने दोनों हाथ बढ़ाकर हृदय से लगाया और अनेक प्रकार के मधुर वचनोंसे आपकी प्रशंसा करते हुए कहा—आपने जिस कार्य के लिए पृथ्वी पर अवतार लिया है वह कार्य करते हुए अपना सम्प्रदाय दृढ़ कीजिये। आप बड़े उदार हैं। कलियुग जैसे कुटिल को भी शिष्य बनाकर आपने प्रत्यक्ष उदारता दयालुता दिखलाई है। आपके सम्प्रदाय का आपके सिद्धांतों का जो विरोध करेंगे वह अपने पाप से आप ही नष्ट हो जायेंगे। आप पतितपावन हैं, करुणा के मेघ हैं, पतितों को तारने के लिए ही प्रकट हुए हैं, आपको धन्यवाद है। ऐसा कहकर कि—'आपकी विजय हो' दिव्य माला पहना दी और श्रीरङ्ग भगवान मौन हो गये। पुजारी लोगोंको साक्षात् भगवान

का सम्वाद सब सुनाई पड़ रहा। सो सुनकर वह सब आनन्दित हो उठे। उधर आचार्य वहाँ से अन्तर्ध्यान होकर योगबल से फिर अपने स्थान में प्रकट हो गये। यह समाचार श्रीरङ्गम् में सर्वत्र फैल गया। लोग दौड़-दौड़कर दर्शनार्थ आने लगे। जो द्वेष करने लगे थे उनका भी वह द्वेषरूपी रोग दूर हो गया। अब तो पुजारीगण तथा पुरवासी आकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। बड़ी भीड़ हो गई। बड़ी-बड़ी वस्तुयें भेंट में आने लगे तथा पहिले जो द्वेष किया था उसके लिए क्षमा माँगने तथा विनय करने लगे। बहुतसे श्रद्धालु शरणागत हुए और उपदेश ग्रहण किया। जिनको विधाता ने ज्ञान दिया वे सब आ-आकर शरण हो कृतार्थ हुए। सहस्रों सन्त अब तो आनन्दित हो मन्दिर में दर्शनार्थ गये और मन्दिर की विशालता देखने लगे। गोपुर, पुष्करिणी (तालाब), सहस्रखम्भ, मण्डप, वाटिका आदि स्थल दर्शन कर कावेरी में स्नान किया। पश्चात् आचार्य भगवान ने वहाँसे प्रस्थान किया। वहाँ से जब गिरिनार पर्वत के समीप पहुँचे तो ऊँचा विशाल रमणीक पर्वत देखकर सन्तों के मन में इच्छा हुई कि पर्वत पर भ्रमण करें। परन्तु दुर्गम पहाड़ पर सैकड़ों सन्त नहीं चढ़ सकते थे इसलिए आचार्य भगवान से प्रार्थना की तो आचार्य ने पुष्पक विमान का स्मरण किया। विमान प्रकट हो गया तब उस पर्वत के अधिष्ठाता देवराज इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। उस विमानपर समस्त शिष्यों के साथ आचार्य भगवान विराजमान हुए। वहाँ के सब तीर्थ और दृश्य विमान द्वारा भ्रमण कर देखे। इन्द्र ने बड़ी सेवा की तथा विनती की। वहाँ पर आचार्य की चरण-पादुकाओं की स्थापना इन्द्रने की। उन चरण-पादुकाओंको धारणकर गिरिनार पर्वत बहुत प्रसन्न हुआ जैसे गङ्गाजी को मस्तक पर धारण कर श्रीशिवजी प्रसन्न हुए थे। वहाँ से प्रभास क्षेत्र में आये।

श्रीसोमनाथजी के मन्दिर को यवनों द्वारा तोड़ा हुआ देखकर आपके नेत्रों में अश्रु भर आये। मार्ग में अनेकों शाक्त (देवी-पूजक सिद्ध) मिले। वे शास्त्रार्थ करके हार गये (मन्त्र मारण आदि करके अन्याय किया फिर दण्ड पाकर वे हारे) पश्चात् वहाँ से द्वारकापुरीमें आये। चारों ओर विजय-ध्वजा फहरादी। सन्तों ने गोमती में स्नान किया तथा द्वारकानाथ श्रीरणछोड़जी का दर्शन कर परम प्रसन्न हुए। श्रीपीपाजी ने जब द्वारका में ईंट-पत्थर के मकानात देखे तो बड़ा खेद हुआ। द्वारकावासियों से पूछा कि—हमने तो सुना था कि द्वारकापुरी सोने की है सो वह सोने की द्वारका कहाँ चली गई ? तो पुरवासियों ने कहा—सोने की द्वारका तो समुद्र में समा गई। जिसके दिव्य नेत्र हों वह उस द्वारका को अब भी देख सकता है, और जिसे विश्वास न हो वह समुद्र में जाकर खोजकर देख ले। श्रीपीपाजी यह सुनते ही समुद्र में कूद पड़े। श्रीरामजी के प्रेम में डूबे हुए श्रीपीपाजीको समुद्रका पानी कैसे डुबा सकता था ? समुद्रमें दिव्य द्वारकाका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन हुआ और साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान ने उनका हाथ पकड़कर स्वागत किया। सोने के महल मणियों से जड़े हुए देख वे आश्चर्यचकित हो गये। भगवान ने उनको भोजनादि कराकर खूब सत्कार करके आनन्द प्रदान किया। भगवान ने शंख चक्र की छाप देकर कहा कि—जाओ, यह मेरी छाप जिसकी भुजाओं में लगी होगी वह मेरे धाम में आने का अधिकारी हो जायगा। यमराज के दूत उसके पास नहीं जायेंगे। यह छाप लगवाकर सबको कृतार्थ करो। ऐसा कह प्रभुने विदा कर दिया। श्रीपीपाजी समुद्र से निकलकर द्वारका में आये और समस्त बातें बताकर छाप पुजारियों को दे दी। सभी आश्चर्य करने लगे। सब गुरु-भ्राता बड़े प्रेम से मिले। द्वारका

की परिक्रमा कर आनन्दित मन से वहाँसे सब चल दिये। अनेक सुन्दर सरोवर देखते हुए श्रीरामानन्दाचार्यजी जब मार्ग में जा रहे थे तो सहस्रों सन्त साथ में कीर्तन करते हुए समस्त संसार के पाखण्ड मतों का अन्त करने को उद्यत हो रहे थे। मार्ग में अनेक मतों वाले मतवाले साधु, संन्यासी, शाक्त, अघोरी, पचमकारी आदि मिलते थे, उनको आचार्य के सिद्ध शिष्यगण ही परास्त कर देते थे। वे सब हारकर आचार्य के शरणागत हो जाते थे। इस प्रकार मार्ग में अनेकों चरित्र होते थे। उनका सम्वाद कहाँ तक वर्णन किया जाय। पाखण्डियों के सभी प्रबल दलों को बरबस विवाद करके हराकर ठीक रास्ते पर लगा दिया। रास्ते में चलकर आगे सिद्धपुरमें आये। वहाँ श्रीकपिलजी का जन्म-स्थान देख सभी आनन्दित हुए। वहाँ निर्मल सरस्वती नदी को देख सन्तों ने बड़े उमङ्ग से स्नान किया। वहाँ मन्दिर का दर्शन कर श्रीविन्दु सरोवर में स्नान किया। वहां पर श्रीकर्दम ऋषि ने तप किया था, और वहीं श्रीकर्दमजी को भगवान ने साक्षात् दर्शन दिया था। कर्दम का प्रेम देख भगवान की आँखों में करुणा के अश्रु-बिन्दु गिरे थे, उसी से बिन्दु सरोवर नाम पड़ा है। उस सिद्धपुर की सुन्दरता देख आचार्य चल दिये। मार्ग में एक जैनी पण्डित मिले, वे बड़ा विवाद करने लगे। उन्होंने वेदों की खूब निन्दा की और कहा—सनातनधर्म में विष्णु और राम की उपासना लोग करते हैं, किन्तु इनके तो स्त्री है। जो स्त्रीके सहित रहता हो उसकी उपासना नहीं करनी चाहिए। तो आचार्य भगवान ने कहा—ब्रह्म से शक्ति कभी भिन्न नहीं होती। जैसे सूर्य से प्रभा (चमक) कभी अलग नहीं होती। ऐसे ही श्रीजी पूर्णब्रह्म भगवान की अर्द्धाङ्गिनी हैं। और जो वेद हैं वह तो परमात्मा के द्वारा प्रकट हुए हैं। उनका खण्डन करने

वाला राक्षस ही हो सकता है। वेदों में जो शङ्का हो, हमसे शास्त्रार्थ करके निवारण कर लो। तब वह जैनी निरुत्तर और लज्जित होकर चला गया। वहाँ से आचार्य भगवान आबू पर्वत पर आये। वहाँ की शोभा देख बड़ा हर्ष हुआ। वहाँ पर श्रीवशिष्ठजी का आश्रम बड़े प्रेम से देखा तथा गोमुखी स्थल पर निवास किया। उसी गोमुखी स्थान से सरस्वती नदी निकली हैं जिसका जल अमृत-सा मधुर तथा सुन्दर तरंगें उठती हैं। पक्षी वहाँ कल्लोल कर रहे थे और वृक्षों में फूल प्रफुल्लित थे, मोर नाच रहे थे। वहाँ पर देखा कि बहुत से मुनिजन तप कर रहे थे तथा श्रीरामजी का भजन-ध्यान कर परमानन्द का अनुभव कर रहे हैं। वहाँ से नखी सरोवर पर जब पहुँचे तो सन्तजन वहाँ की शोभा पर मुग्ध हो उठे। वहाँ श्रीमिलिन्दसुत नाम के ऋषि मिले, उनका नियम और प्रभु-प्रेम देख आचार्य बड़े आनंदित हुए। वहाँ पर आचार्य भगवान के मन में आया कि यहाँ एक मन्दिर बन जाता तो उत्तम था। आचार्य ने देवताओं को आज्ञा दी कि यहाँ पर एक विशाल मन्दिर बना दो। विश्वकर्मा ने आकर तत्काल सुन्दर मन्दिर बना दिया। उसकी शोभा बड़ी विलक्षण थी। उसमें श्रीरघुनाथजी की मूर्ति विराजमान की गई। वह मूर्ति श्रीमिलिन्दसुतजी ने लाकर दी थी, उसी की विधिवत् प्रतिष्ठा आचार्य ने करवाई! सुन्दर मन्दिर बनवाकर वहाँ आप सोचने लगे कि—हमारा यश बहुत बढ़ता जा रहा है, यह भी जाल ही है। सन्ध्या समय हुआ। रात्रि आने लगी। पूर्णिमा की रात्रि थी। सब शिष्य ध्यानमग्न हो गये। उधर आकाश में चन्द्रमा उदय हुआ, ऐसे निर्भय होकर चन्द्रमा चल रहा था जैसे मन्दराचल पर्वत की गुफा में बड़ा केहरी सिंह हो अथवा यमुना-जल पर हंस तैर रहा हो। उस आबू पर्वत की

शोभा देखते हुए रात्रि क्षणमात्रमें बीत गई। प्रातःकाल ध्यानी सन्त ध्यान से उठे और सन्तवृन्द एकत्रित हो श्रीरामजी के गुण (प्रभाती-गान) गाने लगे। आचार्य भगवान अपना नित्य नियम करके सूर्य के समान सिंहासन पर विराजमान हुए। शिष्यवृन्द आकर प्रणाम कर इधर-उधर बैठ गये। उस समय की शोभा में कवि का मन मोहित हो रहा है। उस मुख-छवि पर चन्द्रमा की उपमा कैसे कहें? क्योंकि चन्द्रमा कलङ्क सहित है और आचार्य का मुखचन्द्र निष्कलङ्क है। कमल की उपमा दें तो कमल रात्रि में संकुचित होकर मुरझा जाता है, इसलिए यह मुख अनुपम है। हाथों में त्रिदण्ड, कण्ठ में तुलसी कण्ठीमाला, मस्तक पर उर्ध्व-तिलक शोभित था। शरीर तपाये हुए सोने के समान ऐसा चमकता था मानो सूर्य और चन्द्रमा दोनों मिल एक हो चमक रहे हों। प्रातःकाल में तारे ऐसे लुप्त हो गये थे जैसे आचार्य का तेज देख दम्भी दुष्ट निर्बल हो छिप गये। उधर सूर्य के उदय होने से सामने भरे हुए नखी सरोवर में कमल खिल गये। इधर सन्तों के हृदय भी गुरुदेव का मुखारविन्द दर्शनकर प्रफुल्लित हो रहे थे।

दस प्रश्नों का उत्तर

नखी सरोवर के किनारे आचार्य का सिंहासन लगा था। सुन्दर पक्षी सारस, हंस आदि सरोवरमें कूज रहे थे, ऐसा लगता था मानो आचार्य भगवानकी वे प्रशंसा कर रहे हों। उसी समय श्रीसुरसुरानन्दजी नवीन फूलों की माला बनाकर लाये। प्रफुल्लित मन से गुरुदेव को माला पहना दी और गुरुदेव की चरण-रज नेत्रों से लगाकर प्रेम से प्रश्न करने लगे कि हे नाथ! मैं दस प्रश्न पूछना चाहता हूँ। करुणा करके प्रश्नों का उत्तर देकर मुझे कृतार्थ करें। तब आचार्य ने मधुर वाणी से कहा—

हे वत्स ! बड़े आनन्द के साथ प्रश्न करो। श्रीसुरसुरानन्दजी ने हाथ जोड़कर प्रेमरस सनी वाणी से पूछना प्रारम्भ किया कि—हे दीनबन्धु ! मेरे दस प्रश्न ये हैं—१. तत्व किसे कहते हैं ? २. जो भगवानकी शरणागति स्वीकार करते हैं, उन्हें प्रभुके किस मंत्र का जप करना चाहिए ? ३. शरणागत भक्त किस स्वरूप का ध्यान करते हैं ? ४. मुक्ति-प्राप्ति के लिए कौन-सा साधन करना चाहिए ? ५. संसार में अनेकों धर्म हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ धर्म कौन-सा है ? ६. वैष्णव कितने प्रकार के होते हैं ? उनका भेद भी समझाइये। ७. वैष्णवों के लक्षण क्या हैं ? ८. वैष्णवों को समय किस प्रकार बिताना चाहिए ? प्राप्य का दिव्य मार्ग भी बताइये ? १०. वैष्णवों के निवास-स्थल कौन-कौन से हैं ? इन दस प्रश्नोंको सुनकर आचार्य भगवान बड़े आनन्दित हुए। बोले हे प्रिय शिष्यो, सुनो ! सुरसुरानन्दजी ने जो प्रश्न किये हैं वे बड़े काम के हैं। तुम सभी लोग इनका रहस्य सुनकर हृदय में धारण करो। मन स्थिर करके समझो। प्रथम प्रश्न में 'तत्व' पूछा है तत्वका रूप अनुपम है। ब्रह्म, जीव, प्रकृति यह तीनों तत्व जगत के आदि कारण हैं। इनका भेद सुनो, जो सब भ्रमों को हटाने वाला है। प्रकृति तो महत्तत्व आदि को विकसित करने वाली है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण आदि अनेक प्रकार से वह दर्शित होती है। प्रकृति अहङ्कार को उत्पन्न करती है, परन्तु वह स्वतंत्र नहीं है प्रभु के आधीन रहती है। उनकी इच्छा पर चलती है। दूसरी प्रकृति अचित् (जड़) है। इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के सब विषय यह सब जड़-प्रकृति हैं। दूसरा तत्व है 'जीव' इसका रहस्य मन लगाकर सुनो। बड़े-बड़े मुनिराज इसका 'जीव' नाम क्यों वर्णन करते हैं, सो सुनो। जीव तो सदा जीवित रहता है, कभी मरता नहीं। यह नित्य है, चैतन्य है। सदा एकरस रहने

वाला है । घटता-बढ़ता नहीं, अजर है, अमर है । आग में जलता नहीं, इसीलिए इसे अजर कहते हैं । श्रीहरि का अंश है और अजन्मा है (देह का जन्म होता है–जीव का नहीं) किन्तु थोड़े ज्ञान वाला है (पूर्णज्ञान केवल ईश्वर को है) यह अणु (छोटा) है सव्यय है (कभी कम नहीं होता) अहङ्कार वाला है । यह भी सदा प्रभु के आधीन है । स्वतन्त्र नहीं । यह जीव अपने जैसे-जैसे कर्म करता जाता है वैसे ही दुःख-सुखरूपी फल भोगता हुआ अनेकों भावनाओं में लीन रहता है । जीवों के भी तीन भेद हैं । बद्ध, मुक्त और नित्य । बद्धमें सांसारिक जीव हैं । मुक्तों में शुक-सनकादिक हैं तथा नित्यों में पार्षद, श्रीहनुमानजी आदि हैं । यह जीवों का रहस्य हुआ, अब तीसरा ब्रह्म-तत्व भी सुनो । ब्रह्म ही सब जीवों का तथा प्रकृति का धारण करने वाला है । वही सब का शेषी, स्वामी, सबका कारण, सबका साक्षी है । उसीसे जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होती है । वही सूर्य और चन्द्रमा को प्रकाश देने वाला है । उसी के भय से वायु चलता है, उसी की शक्ति से पृथ्वी धँसकर पाताल में नहीं जाती है । वही वेदों से जाना जाता है, वही ईश्वर समस्त शुभ गुणों का निधान है । वही सबके आराध्य पूर्णब्रह्म सीतापति श्रीराम हैं । वह भक्तों के सदा रक्षक हैं, उन्हीं की शरण ग्रहण करने लायक है, वह अविनाशी हैं, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हैं । उनको कोई इच्छा नहीं है, वही श्रीरामजी पूर्णब्रह्म सदा एकरस रहने वाले हैं । यही तीन तत्व हैं, सब ब्रह्माण्ड इन्हीं तीन तत्वों में है । यह तीनों तत्व सर्वत्र मिलते हुए रहते हैं । शांतचित्त मुनिजन इनका दर्शन करते हैं । यही विशिष्टाद्वैत हमारा सिद्धांत है, यही वेदों का सार है । अब दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनो । जप करने को भक्तों के लिए श्रीराम-मन्त्र से बढ़कर कोई मंत्र नहीं है न अब तक कोई मन्त्र

ऐसा है न आगे होगा। श्रीराम-षड्क्षर मन्त्र के समान मुक्ति का साधन और कोई नहीं है। यही अनादि मन्त्र सर्वश्रेष्ठ है। इसी को श्रीब्रह्माजी और श्रीशिवजी भी जपते हैं। यही तारक-मन्त्र कहा जाता है इसे जपने से श्रीसीतारामजी साक्षात् दर्शन देते हैं। यह श्रीराम-मन्त्र ब्रह्मास्त्र के समान समस्त पापरूपी दैत्यों को भस्म करने वाला है। श्रीराम-मन्त्र की ध्वनि का रस अमृत के समान मधुर है, उसे ज्ञानी-भक्त ही पाते हैं जो सदा श्रीराम-मन्त्र का जप करते हैं। उनके समान सिद्ध सन्त दूसरा नहीं हो सकता और श्रीराम-भक्तों को चाहिए कि—श्रीरामद्वय नामक मन्त्र हर समय जप करें। उसमें २५ अक्षर हैं। वह सरस और मधुर मंत्र हृदय में धारण करें। (श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये) तथा (श्रीमते रामचन्द्राय नमः) यही मन्त्र द्वय हैं। 'ध्वनि ज्ञान' के कई अर्थ हैं कि मन्त्र की ध्वनि कहती है कि मैं श्रीरामजी की शरण में पूर्णरूप से आया हूँ। अब मेरा कहीं और कोई नहीं है तथा 'चाक्षुष ज्ञान' (नेत्रोंके सन्मुख प्रत्यक्ष प्रभु विराजमान हैं मैं उनको प्रणाम करते हुए चरणों में पड़ा हूँ) आदि भावों को प्रत्यक्ष देखना तथा मन्त्र के अर्थ का ज्ञान जो पूर्णरूप से जान लेते हैं वह समस्त दिव्यगुण प्राप्त कर चारों फल प्राप्त कर लेते हैं तथा वह भगवान के अतिप्रिय हो जाते हैं। तीसरा मन्त्र 'चरम-मंत्र' कहा जाता है। उसमें बत्तीस अक्षर हैं। वह बत्तीस अक्षरों की माला हृदय में धारण करनी चाहिए। वह मंत्र साक्षात् श्रीरामजी के मुख का वचन है। वह यह है कि—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

—बाल्मीकि रामायण

अर्थात् प्रभु ने कहा है—जो एकबार भी मेरी शरण में आकर

कहता है कि मैं आपका हूँ तो मैं उसे सब प्राणियोंसे अभय करके अपना लेता हूँ यह मेरी प्रतिज्ञा है। जो इस मंत्र का जप और मनन करता है वह संसार से निर्भय हो जाता है। उसके हृदय में फिर अन्य किसी का आश्रय नहीं रह जाता। जो इस मंत्र के अर्थ को समझ जाता है वही ठीक-ठीक शरणागति के सुख का अनुभव करता है। षड्क्षरमंत्र, मंत्रद्वय, चमरमंत्र यह तीनों आनन्द के भण्डार हैं। यह तीन मंत्र ही वास्तव में 'त्रिवेणी' हैं। इसमें स्नान करने से निश्चय ही साकेतधाम प्राप्त होता है। यही साकेतधाम जाने की तीन नसैनी (सीढ़ी) हैं। जो इन तीन मंत्रों का जप करते हैं वह बिना परिश्रम के संसार सागर से पार हो जाते हैं। तीसरे प्रश्न का उत्तर सुनो। प्रभु के किस रूप का ध्यान करें। सो ध्यान करने में पहिले इष्ट के तत्व का ज्ञान हो कि हमारे स्वामी सबके ईश्वर हैं। फिर प्राणायाम करने का अभ्यास करके मन स्थिर करे। इन्द्रियों को वश में करके, निरभिमान हो सरल, सरस, प्रेमी हृदय बनकर अखण्ड तैलधार की तरह ध्यान में प्रभु की छवि का दर्शन करे—उसे ही ध्यान कहते हैं। श्रीसीतारामजी के रूप समुद्र में जो डूब जाते हैं वह फिर उसमें से नहीं निकलते। भगवान श्रीरामजी का शरीर नीले मेघ के समान है, सौन्दर्य की तरंगें उठ रही हैं। पीताम्बर पहने हैं, अनेकों भूषण, वनमाला, बाजूबन्द विशाल भुजाओं में धारण किये हैं। चरणों में सुन्दर नूपुर हैं, केहरि के समान कटि है। चन्द्रमा के सदृश मुख पर मणिमय कुण्डल, घुंघराली अलकावली मनको मोहित करने वाली है। मणिमय मुकुट में बीच-बीच में फूल लगे हैं। नेत्र कमलदल के सदृश तथा धनुष की-सी भौंहें हैं। मस्तक पर तिलक और सुन्दर नासिका है अरुणारे अधर तथा हृदय को हिलोरने वाली मुसकान है। ऐसे

श्रीरामजी दूल्हा वेष में सिंहासन पर विराजमान हैं, बाईं ओर श्रीसीताजी हैं। श्रीसीताजी की शोभा अपार आकाश के समान है, उसका कोई भी कवि वर्णन नहीं कर सकता। श्रीसीताजी अपने प्रियतम श्रीरामजी को प्रेम-भरी दृष्टि से निहार रही हैं। हाथों में धनुष-वाण धारण किये हुए श्रीरामजी का ध्यान करना चाहिए। अपने शरीर की सुधि भूल जाय तब ध्यान की साधना पक्की होगी। सदा प्रसन्न मुख श्रीरामजी का जो ध्यान करते हैं वह मनुष्य धन्य हैं। अब चौथा उत्तर सुनो—मुक्ति का साधन पूछा तो सबसे पहिले मोक्ष की इच्छा वाले को चाहिए कि वह समस्त विषय-सुखों की इच्छा त्याग दे तथा सद्गुरु की खोज करके उनकी सेवा करे। तथा पंच-संस्कारयुक्त वैष्णवी दीक्षा ले। बिना पंच-संस्कार के मुक्ति का अधिकार नहीं होता। पहला संस्कार यह है कि दोनों भुजाओं पर धनुष-वाण के चिह्न लगवावे। उसका फल यह होगा कि वह इन्द्रियोंको सहज में ही जीत सकेगा। उसकी जगत् में विजय होगी तथा उससे यमदूत भी भय मानेंगे। भूलकर भी उसके पास नहीं आयेंगे। श्रीरामजी के धनुष-वाण का चिह्न धारण करने से तेज-प्रताप अङ्गों में आता है तथा प्रभु प्रसन्न होकर उसको अपने भक्त की पदवी दे देते हैं। उसके पाप भस्म होते हैं। अब दूसरे संस्कार तिलक का रहस्य सुनो। गुरु द्वारा मस्तक पर तिलक धारण होने से मन में शुद्धभाव उदय होते हैं और तिलकधारी (सन्त-सम्राटोंका-सा हृदय बनता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र हमारे सम्प्रदायका अनादि तिलक है। इसे धारण करने से ऊर्ध्व (ऊँची) गति होती है। तिलक का दर्शन और लोग भी जो करते हैं तो उनके भी पाप दूर होंगे। अब तीसरा संस्कार सुनो—कण्ठी तुलसी की माला गले में धारण करने से श्रीरामजी का स्मरण बराबर आता रहता है और हर

समय शरीर पवित्र रहता है। 'तुलसी' भगवान को प्रिय है। तुलसी गले में हो तो गले के नीचे जो जल-अन्न आदि जायगा वह पवित्र होकर जायगा। जो सब समय कण्ठी गले में धारण करते हैं उनकी बुद्धि शुद्ध रहती है और जो सदा भजन करता है अन्त में उसे मोक्ष मिलता है। अब चौथा संस्कार सुनिये—दासयुक्त नाम चौथा-संस्कार है। नामके आगे जैसे रामदास आदि नाम हैं तो यह अपने दास्यभावका बोध कराने वाले हैं। शरणागति का स्मरण यह नाम आठों पहर कराता रहता है। ऐसे ही पांचवां संस्कार सर्वोत्तम श्रीराम-नाम की दीक्षा है। यह दिव्य षड्क्षर मन्त्र जो गुरुदेव देते हैं, यह भगवान का साक्षात्कार कराने वाला है। यही पंच-संस्कार हैं। इनके बिना वैष्णव स्वरूप पूर्ण नहीं होता। जब यह पाँचों-संस्कार गुरु द्वारा प्राप्त हो जाते हैं तो जन्मान्तरों के खराब संस्कार नष्ट हो जाते हैं। जब कोई दीक्षा लेकर कण्ठी धारण करता है तब उसका नया जन्म हो जाता है। फिर जब दिन-रात अखण्ड नाम मंत्र-जप करने लगता है तो माया-मोह और काम की सेना पर विजय प्राप्त कर लेता है। निष्कामभाव से जो भक्ति-पूर्वक भगवान की सेवा करे वही वैष्णव है। एकादशी का व्रत सब महीनों में करे। श्रीरामनवमी का व्रत और उत्सव प्रतिवर्ष बड़े समारोह से करे तथा वैशाख शुक्ला नवमी को श्रीजानकी महोत्सव मनावे तथा व्रत करे। ऐसे ही श्रीहनुमानजी का जन्मोत्सव करके आनन्द ले। ऐसे ही प्रभु के अन्य अवतारों की नृसिंह-जयन्ती, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, श्रीवामन-द्वादशी बड़े प्रेमसे मनावे। वैष्णवोंको चाहिए कि अपने बल का अभिमान न रखकर सदा प्रभुकी कृपा की प्रतीक्षा दिन-रात करता रहे। अपनी चित्तवृत्तियों को भगवान के चरणों में तन्मय करके भ्रमर के समान सदा मस्त होकर प्रेमरस में लीन

रहे। ऐसी पराभक्ति प्राप्तकर सदा अपने इष्टदेव का प्रिय नाम जपता रहे। ऐसे भक्तके हाथोंमें मुक्तियाँ आप ही आ जाती हैं। वह भक्त तो औरों को मुक्ति बाँटने में समर्थ हो जाता है। अब पाँचवें प्रश्न का उत्तर सुनिये—कि धर्म कौन-सा श्रेष्ठ है ? सो अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है तथा हिंसा के समान कोई अधर्म नहीं है। इसलिए कभी भी किसी का हृदय नहीं दुखाना चाहिए यही अहिंसा है। सबमें अपने इष्ट को व्यापक जानकर जगत् के सब जीवों को मन, वचन, कर्म से सदा वन्दना करता रहे। और जितने शुभ कर्म तप, दान आदि करे वह सब प्रभु को समर्पण करदे। स्त्री और सोना धन आदि को माया का जाल समझकर इनमें से आसक्ति त्यागकर भगवान के चरणों में प्रेम करे। सर्वश्रेष्ठ यही धर्म धारण करके वैष्णवों की, संतोंकी सेवा करे। संतों की सेवा करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति भी इसी धर्म से उत्पन्न होती है। तथा श्रीगुरु की प्रेम से सेवा करने पर साक्षात् भगवान प्राप्त होते हैं। समस्त मायाजाल कट जाता है। जैसे मंत्री को वश में कर लेने पर मन्त्रीके द्वारा राजासे मिलना सहज हो जाता है। श्रीरामजी की मूर्ति की पूजा बड़े प्रेम से दुलार से करे। षोडश प्रकार से सेवा-शृङ्गार कर दर्शन करके आनन्दित हो, क्योंकि मूर्तिरूप में (प्रभु ही कलियुग में) अर्चावतार धारण कर भक्तों को दर्शन का आनन्द देते हैं। अधिकारी प्रेमी-भक्तों से प्रभु मूर्ति द्वारा बोलने भी लग जाते हैं, इसलिए अत्यन्त प्रेम और आसक्ति सहित प्रभु की मूर्तिकी उपासना करनी चाहिए। यही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जिसने इस धर्म को धारण किया वही भगवान के धामको प्राप्त करता है। अब छठवें प्रश्न का उत्तर सुनिये—वैष्णव भक्त कितने प्रकार के होते हैं ? यों तो भक्तों के अनेकों भेद हैं। उन

सबका मर्म निर्मल ज्ञान वाले मुनियों ने वर्णन किया है। उनमें एक तो बुभुक्षु भक्त होते हैं। जो भोगों की इच्छा करके प्रभु की उपासना करते हैं। वह सदा कर्मकाण्ड में लगे रहकर देवलोक जाने की इच्छा रखते हैं। दूसरे मुमुक्षु भक्त होते हैं, जो मोक्ष की इच्छा करके प्रभु का भजन करते हैं कि जन्म-मरण का चक्र छूटकर माया की फांसी कट जाय। और एक भक्त तो भगवान से मिलने के लिए विरह में व्याकुल रहकर शीघ्र दर्शन चाहते हैं। और एक बहुत निर्मल भाव धारण करके मुक्तिको भी नहीं चाहते, सदा प्रभु की उपासना में ही आनन्दमग्न रहना चाहते हैं। एक भक्त अपने गुरु को ही सब कुछ मानते हैं। गुरु से बढ़कर और कुछ नहीं जानना चाहते। एक भक्त परम वैष्णव कहलाते हैं वह पराभक्ति के ध्यान-सुख में सदा लीन रहना चाहते हैं। एक भक्त महान् प्रेम की प्रगाढ़ दशा महाभावरूपी जल में मछली की भाँति डूबे रहना चाहते हैं। यह साधन भक्तों की बात हुई अब मुक्त भक्तों का मर्म सुनो। मुक्त भक्त वह है जो सब जगत् के दुःखमय बन्धनों से मुक्त हो भगवान के धाम में निवास करते हुए मुक्ति का आनन्द अनुभव करते हैं, तथा नित्यभक्त वह है जो भगवान के धाम में सदा प्रभु की सेवा में मग्न रहते हैं तथा प्रभु की इच्छा से प्रभुके साथ अवतार लेते हैं जैसे—श्रीजाम्बवानजी, श्रीहनुमानजी आदि। अब सातवें प्रश्न का उत्तर सुनो। वैष्णवों के लक्षणों का रहस्य यह है कि मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड्र हो, गलेमें तुलसी-कण्ठी हो। वैष्णव वही है जो सब विकारों से रहित हो, निर्मल हो, विशेष ज्ञान वाला हो, वेदों की बड़ाई करे, रजोगुणी न हो, अभिमान-रहित हो। श्रीराम-नामका दिन-रात जप करता हो, श्रीसीतारामजीके चरित्र सुनता और ध्यान करता हो। सदा प्रेमी सन्तोंका संग करता

हो, श्रीरामजी के चरित्र बड़े प्रेम से गाता हो। अनन्य भक्ति हो (किसी देवी-देवता का आश्रय न चाहे) परोपकार करने में रुचि हो। दुःख-सुखको तथा निन्दा-स्तुतिको समान समझे। श्रीरामजी का प्रेम हृदय में समुद्र की तरह लहराता हो। जगत् में वह दूसरों का कल्याण करने के लिए ही विचरता हो (नहीं तो एकान्त में साधन करे) ऐसे लक्षणों वाला ही वैष्णव है, वह तीर्थ को भी पवित्र करता है। उसका दर्शन करके और लोग त॰ जाते हैं। वैष्णव संत सात सूत्रों वाला कटिसूत्र कमर में पहन॰ हैं और लँगोटी तथा अँचला पहनते हैं। यही विरक्त वैष्णवों क॰ प्राचीन वेषभूषा है। ऐसे परमभक्त संत का चरणामृत जो लेते हैं तथा भोजन आदि सेवा करते हैं, वह भक्त भी साकेत प्राप्त करते हैं। अब आठवें प्रश्नका उत्तर सुनो। वैष्णवजन कालक्षेप कैसे करते हैं? कि बुद्धिमान भक्तों का समय श्रीभगवान की सेवा तथा संत-सेवा में ही व्यतीत होता है। अथवा देश के कल्याणार्थ परोपकार में अथवा श्रीराम-नाम जपमें वे लीन रहते हैं। स्नान, संध्या, पूजा, मन्त्र-जप तथा श्रीरामजी के ध्यान ॰ सेवा, रामायण-पाठ, गीता-पाठ, वेदों के सूत्र तथा आनन्दभाष्य आदिका पाठ करना चाहिए। मन्त्रद्वय तथा अनुष्ठानपूर्वक षड्क्षर जप, नाम-कीर्तन, प्रभु की लीला का गान सर्वदा करते हुए जब कभी तीर्थ-यात्राकी इच्छा हो तो गुरुदेवसे आज्ञा लेकर, वासनाओं को जीतकर यात्रा को चले। कुछ दिन अयोध्या में निवास करे तथा चित्रकूट में पवित्र स्थानों में रहे। सन्तों को (दीन बनकर) सेवा करे तथा मन की चंचलता को रोके। किसी मंदिर में रहकर झाड़ू लगाना, बर्तन धोना आदि कैंकर्य करे। हृदय में तनिक भी अहङ्कार न रखे। कुसङ्ग में कभी न बैठे सदा सत्संग में ही लगा रहे तथा जहाँ प्रभु की कथा होती हो वहाँ नित्य

जावे। श्रीसरयू किनारे अनुष्ठान करे। ६ करोड़ षड्क्षर मंत्रराज जप का अनुष्ठान करने से निश्चय ही साकेतधाम जाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। अहङ्कार और आलस्य यह साधनामें बड़े शत्रु हैं। इनको त्याग दें। संतों की आज्ञा हो तो मन्दिर की सेवा माँगकर झाड़ू लगाना, तुलसी, फूल आदि लाने की सेवा अवश्य करें इससे प्रभु-कृपा शीघ्र होती है। लज्जा न करें सेवा में—विषय-सुखों को वमन के समान त्यागकर तीर्थ में निवास इसी विधि से करे और सदा श्रीरामजी का दर्शन साक्षात् चाहे। दिन-रात प्रभु के विरह में व्याकुल रहे। राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि विकार त्याग सन्तों से परस्पर प्रेम बढ़ाकर उपरोक्त रहनी से रहना। यही वैष्णव भक्तों की कालक्षेप की विधि है। इस प्रकार की रहनी से जो रहे वही इस दुस्तर भवसागर से पार हो सकता है। अब सुन्दर नवें प्रश्न का उत्तर सुनो। प्राप्य का दिव्य पन्थ क्या है ? यह रहस्य भी समझो। भगवान श्रीरामजी ही प्राप्त करने योग्य (प्राप्य) हैं। वही अविनाशी प्रभु साकेत निवासी सबके ईश्वर हैं। वही अमीतकोटि ब्रह्माण्डों को रचाने वाले हैं। ब्रह्मा तथा शिव के भी वन्दनीय हैं और सबको प्रकाश दिखाने वाले हैं। ऐसे प्रभु को पाने के लिए ही बड़े-बड़े ऋषि-मुनि प्रयत्न करते हैं। जो श्रीरामजी के अविनाशीधाम का मार्ग पाना चाहे वह सर्वप्रथम श्रीराम-भक्त गुरु करे तथा गुरुके उपदेश से सब भ्रम-संशय दूर करे। जो गुरु भक्ति में सिद्ध होंगे उनकी कृपा से वैराग्य उदय होगा और पाप भस्म हो जायेंगे। श्रीराम-मन्त्र जप करके प्रेम की प्रबल आग उत्पन्न करे, उसमें सब कर्म-संस्कार जल जायेंगे, माया-मोह मिट जायगा। श्रीरामजी की कृपा से तब वह भक्त शरीर छोड़कर सुषुम्णा मार्ग से जायगा। माया का अन्धकार त्याग अर्चिमार्ग पर चरण धरेगा फिर अहर्मार्ग

में चलेगा। पश्चात् सूर्यमण्डल भेदकर दिव्य विमान द्वारा तेजोमय दिव्यस्वरूप (पार्षद वेष) प्राप्त करेगा। दिव्यज्ञान होकर दिव्य आनन्द हृदय में उमड़ेगा। ऐसे भक्त को भगवान के सर्वश्रेष्ठ धाम में जाते देखकर देवता उसका पूजन करते हैं फिर आगे ब्रह्मलोकमें श्रीब्रह्माजी भी उसका पूजन करते हैं। उस भक्त का दर्शन करते हैं, जय बोलते हैं। इस प्रकार सब लोकों से आगे जब साकेतधाम के निकट जाता है तो वहाँ भी उसका बड़ा स्वागत होता है। भगवान के प्यारे पार्षद आकर उसकी अगवानी करते हैं। उस साकेतधाम में सदा आनन्दमय भगवान श्रीरामजी के साथ नित्य-लीलाओं का अनुभव करते हुए विचरण करता है। वहाँ अमृत-समुद्र में स्नान करके फिर संसार में नहीं आना पड़ता है। वहाँ श्रीहनुमानजी, श्रीसनकादिक जैसे बड़े-बड़े भक्तों के साथ सत्संग का आनन्द प्राप्त होता है, वहाँ नित्यकिशोर श्रीसीताजी तथा नित्यकिशोर भगवान श्रीरामजी की चरण-सेवा, लीलाओं का दर्शन आदि महान् आनन्द प्राप्त होता है। वहाँ का अगाध आनन्द कौन वर्णन कर सकता है। करोड़ों कल्पों तक फिर कोई विघ्न-बाधा नहीं होती। वह आनंद ब्रह्माजी भी चाहते हैं, फिर संसार में कौन ऐसा मूर्ख होगा जिसे साकेत प्रिय नहीं होगा। अब दशवें प्रश्न का उत्तर सुनो। वैष्णवोंको कहाँ वसना चाहिए। जहाँ माया, अहङ्कार, भ्रम आदि विकार नहीं हैं। ऐसे अनेक दिव्य महर्लोक, जनलोक आदि वेदों में कहे गये हें। वहाँ भी यदि भक्त जाते हें तो अपने भगवानका ही भजन करते हें, पृथ्वी पर जब बद्रिकाश्रम में जाते हें तो वहाँ प्रेम से सेवा करते हें। भक्तों को नैमिषारण्य भी प्रिय है, वहाँ निवास कर श्रीसीतारामजी का भजन करते हें। कुछ संत-भक्त श्रीअयोध्या में रहते हें। दृढ़ नियम बनाकर श्रीसीतारामजी के

चरणों के प्रेमी उनकी सेवा का आनन्द लेते हैं तथा कथा-कीर्तन सत्संग में लीन रहते हैं। बहुत से दृढ़ नियम वाले भक्त मथुरा में वासकर नन्दनन्दन की उपासना करते हैं। कोई हरिद्वार में निवासकर भगवान की भक्ति को तनिक भी न त्यागते हुए प्रभु की सेवा, कथा-कीर्तन में लगे रहते हैं तथा काशी में निवासकर श्रीकाशीपति श्रीशिवजी की तथा शिवजी के इष्ट श्रीरामजी की उपासना करते हैं। ऐसे ही जगन्नाथपुरी में निवासकर श्रीपति जगन्नाथकी पूजा करते हैं। भक्तजन द्वारकापुरीमें,अवन्तिकापुरी में तथा वृन्दावन में निवास करते हैं। ऐसे ही प्रयाग में गङ्गासागर में, प्रभास क्षेत्र में, नृसिंहाचल में आनन्दमय चित्रकूट में, पञ्चवटी में, कूर्माचल में बहुत भक्त निवासकर श्रीरामजी की उपासना करते हैं। जगत् में बहुत से वन और पवित्र तीर्थ हैं। सन्तजन जहाँ भी रहते हैं तो वहीं भक्तिके प्रतापसे बसंत ऋतु की तरह सबको प्रफुल्लित कर सुखी करते हैं। सन्तजन दृढ़ नियम अनन्यभक्ति,जप,तप,योग-साधना करते हुए श्रीरामजी के चरणों में ही सदा रहते हैं। ऐसे सन्त जहाँ भी जाकर बसते हैं वही भूमि सुन्दर तीर्थ बन जाती है। जिस-जिस तीर्थ में वैष्णव जाते हैं उस तीर्थ को वे अयोध्या ही समझते हैं। ऐसे ही नृसिंह आदि अवतारों की मूर्ति का दर्शन कर यही समझे कि यह हमारे श्रीरामजी ही हैं। अनन्यभाव से अपने इष्टदेव में दृढ़ प्रीति रखकर काम-क्रोध आदि विकारों को जीतकर भक्त आनन्द से विचरते हैं। सन्त भक्त तो सदा प्रभु के चरणोंमें ही बसते हैं। प्रभुके कर-कमलरूपी कल्पवृक्षकी छाया में सदा रहते हैं। बस, यही दस प्रश्नों का उत्तर है। आचार्य भगवान ने यह अमृत से भरे कलशोंको ही मानो उपदेशरूप में प्रकट कर दिया। सुन्दर उत्तर सुनकर सुरसुरानन्द गद्गद हो गये। बार-बार प्रेम

से गुरुदेव के चरणों में लोटने लगे। सन्तवृन्द जो सुन रहे थे उनके हृदय ऐसे आनन्दित हुए मानो प्रातःकाल सहस्त्रों कमल प्रफुल्लित हो उठे हों। सब गुरुदेव की जय बोलने लगे। मानो करोड़ों हंस कूज रहे हों यह सुरसुरानन्दजी का सम्वाद सुनने से ही समस्त भ्रम का विषाद नष्ट हो जाता है। उसी समय यह सम्वाद सन्तों ने लिख लिया जो ग्रन्थ-रूप बन गया। उसका नाम 'वैष्णव मताब्ज भास्कर' आचार्य भगवान ने रक्खा फिर आचार्य भगवान ने अपनी चरण-पादुकायें प्रदान कीं जो शिष्यों ने वहाँ स्थापित कीं। आचार्य के चरणों से वह पर्वत और वन पवित्र हो गये। आचार्य भगवान के सुयशरूपी अमृतसे जगत्‌रूपी सरोवर भर गया।

अधमोद्धारक

इस प्रकार आबू पहाड़ पर विचरते हुए श्रीराम-भक्ति का प्रचार करके वहाँ से प्रस्थान किया। जय-जय ध्वनि आकाश में करने लगे। वहाँ से समाज सहित पुष्करतीर्थ में आये। सन्तजन बड़े प्रसन्न मन से स्नान करने लगे। वहाँ एक सूर्य का उपासक वैरागी साधु मिला। उसका नाम भानुप्रिय था। वह सदा सूर्य भगवान की पूजा करता था। तपस्या के साथ-साथ वह सूर्य की मूर्तिकी सेवामें रत रहता था। वह श्रीकबीरजी से विवाद करने लगा। वैष्णवों को कटु वचन कहकर दुःखी कर दिया। वह श्रीरामजीको छोटा कहता था तथा सूर्यको बड़ा सिद्ध करता था। उसे कबीरजी ने बहुत समझाया पर उसने एक नहीं मानी। जब वह अपनी कुटी में गया तो रात्रि में नींद नहीं आई—बैठकर सूर्य का ध्यान करने लगा। ध्यान में उसे प्रत्यक्ष होकर सूर्यदेव ने कहा—श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामजीके ही अवतार हैं। उन्होंने भारत में इस समय धर्म-ग्लानि दूर करनेके लिए अवतार लिया

है। भगवान श्रीरामजी ही पूर्णब्रह्म हैं। हम सब देवता उनके सेवक हैं, बाल-बच्चे हैं। तुम जाकर उनकी शरणागति स्वीकार करके अपने को कृतार्थ करो। वह भानुप्रिय आश्चर्य करते हुए उठा और आचार्य भगवान की शरण में बड़ी विह्वलता से आया तथा हठपूर्वक दीक्षा ली। वह भी कबीरदास की तरह शिष्य हो साथ ही चल दिया। ऐसे अनगिनत नर-नारियों का उद्धार करते हुए तथा विवाद करने वालों को परास्त करते हुए अपने प्रताप से ताप को दूर करते हुए प्रभु चले जा रहे थे। जब मथुरामंडल में आये तो व्रज के वनों की शोभा देख बार-बार पुलकित होने लगे। गोवर्धन दर्शन करके वृन्दावन आये। सन्तवृन्द दर्शनार्थ मन्दिरों में जाने लगे। आचार्य भगवान का मुखचन्द्र दर्शनकर व्रजवासी सन्तों को बड़ा आनन्द हुआ। सबने मिलकर जगद्गुरु का बड़ा-भारी सत्कार किया। परम प्रेम रसमय सत्सङ्ग में भावना की तरंगें उठने लगीं। व्रजवासी आनन्दित होकर सेवा करने लगे। प्राणों से अधिक प्रिय मानकर पहुनाई की। कीर्त्तन में व्रजवासियोंके साथ प्रेम-मग्न हो श्रीयोगानन्दजी तो नृत्य करने लगे। एकदिन आचार्य भगवान के मन में वहाँ भण्डारा देने की इच्छा हुई तो अपने योगबल से अन्नादि पदार्थ प्रकट करके पाँच लाख व्रजवासियों को भोजन कराया। उस भण्डारे में बड़े-बड़े विचित्र चरित्र हुए। दिव्य सन्तों ने तथा देवताओं ने भी प्रसाद पाया। उनका वर्णन कहाँ तक किया जाय। श्रीवृन्दावन में आनन्दकी वर्षा करके प्रफुल्लित मन से आचार्य आगे चले। मार्ग में नगर और ग्राम जो पड़ते थे उनमें आप विश्राम अथवा जहाँ निवास करते थे। वहाँके लोग दर्शन और उपदेश सुनकर कृतार्थ हो जाते। उन्हें ज्ञान-विज्ञान तथा श्रीराम-नामरूपी चिन्तामणि प्राप्त होकर सर्वश्रेष्ठ श्रीराम-भक्ति भी मिलती थी। यात्रा में

जहाँ आवश्यकता समझी वहाँ-वहाँ श्रीराम-मन्दिरोंका भी निर्माण करवाया। देश-भर में बहुत-से मन्दिर ऐसे बनवाये जहाँ सदा सन्तों की सेवा होती रहे। रहने और भोजन की व्यवस्था सन्तों के लिए सर्वत्र की गई, मार्ग चारों ओर पवित्र हो गया। अनेकों मत-मतान्तरों के पाखण्ड लुप्त हो गये। जैसे प्रबल गर्मीकी ऋतु में जुगनू चमकते दिखाई नहीं देते अथवा जैसे घोर जाड़ेमें मेंढ़कों का दर्शन नहीं होता। अज्ञानियों को बोध (ज्ञान)देकर बुद्धिमान बनाकर मार्ग में सर्वत्र देश का कल्याण विचारते अनेकों कार्य करते हुए बीन-बीनकर आपने कुटिल (टेढ़े) विद्वानों को सीधा कर दिया। श्रीराम-भक्ति का प्रचार कर अधिकारियों को दिव्य मन्त्र का उपदेश करते हुए सारे भारतवर्ष को श्रीराम-चरित्र का आदर्श सामने रखकर आचरण बनाने में दृढ़ किया। मार्ग में अनगिनती गृहस्थ वैराग्य होने से साधु बनने के लिए आये आपने उन्हें सच्चा साधु बनाकर तप की आज्ञा दी। पश्चात् श्रीहरिद्वार में आये। गङ्गा की महान् लहरें देखकर सन्तों को बड़ा हर्ष हुआ। श्रीहरि-पैडी पर स्नान कर आचार्य भगवान ने ब्राह्मणों को दान दिया। वहाँ सन्तों की बड़ी भीड़ हो गई। स्नान कर सब कीर्तन करने लगे। जय सियाराम जय जय हनुमान। जय श्रीरामानंद भगवान ।। यह ध्वनि सर्वत्र छा गई। सहस्रों सन्तों का समूह था। बीचमें जगद्गुरु भगवान सुशोभित थे। उस समय साधु-समाज की महान् शोभा देख जनता आनन्द में विभोर थी। घनघोर श्रीराम कीर्त्तन-ध्वनि सुनकर भक्तवृन्द मोर की तरह नाच रहे थे। वैष्णव धर्म के विरोधियों के हृदय उस कीर्त्तन से दहल गये और ज्ञानीजन सुखी हो सुधर गये तथा ध्यानी सन्तों के हृदय के नेत्र खुल गये, ऐसी गम्भीर नाम कीर्त्तन-ध्वनि उस समय हुई। वैष्णव धर्म के विपक्षी पक्षियोंकी भाँति उड़ गये जो

कि भगवान की भक्ति को व्यर्थ कहकर लोगों को बहकाया करते थे। गङ्गातट पर हरिद्वार में पड़ाव पड़ा। जहाँ पर गङ्गाजी की प्रबल धारा का शब्द हो रहा था। ऐसे सन्त सब विश्राम करने लगे कि जैसे देवताओंकी सेना दैत्यों को रणमें जीतकर विश्राम कर रही हो। सारे हरिद्वार में आचार्य भगवान के चमत्कारों की चर्चा हो रही थी। आचार्य का प्रताप तथा अद्भुत महिमा सुन बड़े-बड़े ज्ञानियोंको भी आश्चर्य हो रहा था। सिद्ध सांन्यासी बहुत से आचार्य भगवान से मिलने आये। दर्शन करते ही सबकी सब शंकायें निवृत्त हो गईं। एक सत्यानन्द नाम के योगी भी दर्शनार्थ आये। उन्होंने अद्वैत सिद्धांत के अनेकों ग्रन्थ पढ़े थे। उन्होंने विषयों के वासनारूप को त्याग दिया था। योगबल से वह एक महीने की समाधि लगाया करते थे। जब वह मिलने आये तो उनसे आचार्य भगवान आदरपूर्वक मिले, और बड़े प्रेम से सत्सङ्ग होने लगा। श्रीसत्यानन्दजी ने कहा—हे जगद्गुरु! आप परम ऋषिराज हैं। कृपाकर मुझे मुक्तिका तत्व तथा कर्मों का रहस्य समझाइये। जगद्गुरु ने उत्तर दिया—मुक्ति कर्मों के द्वारा नहीं मिला करती। क्योंकि कोई पुण्य बढ़ाने के लिए कर्म करता है तो अनेक दोष भी हो जाते हैं। कर्म में अहङ्कार भी मिला रहता है। इसलिए फिर कर्त्ता संसार में लौट आता है। कर्म को भ्रम का जाल समझकर श्रीरामजी की कृपा मनावे और उन्हीं का भजन करे। तब श्रीसत्यानन्दजी ने कहा—महाराज! आपकी वाणी में विरोध आ रहा है। आपने पहिले कर्म का खण्डन किया कि कर्मसे मुक्ति नहीं होती और फिर आप ही कर्म का खण्डन कर रहे हैं कि श्रीराम-भजन करो। तो श्रीराम-भजन भी तो करना ही होगा, वह भी तो कर्म हो गया। उस कर्म से कैसे मुक्ति होगी? मेरी समझ में तो कर्मके बिना मायाके बंधन

किसी युक्तिसे नहीं कट सकते । कर्म करना ही होगा । जैसे कांटे से कांटा निकलता है वैसे ही कर्म से पाप-कर्म कटेंगे । मुक्ति कर्म बिना कैसे होगी ? इसलिए कर्मयोग के द्वारा यदि कोई ब्रह्म में लीन होना चाहे तो उसकी विधि क्या है, यही बताइये । तब आचार्य भगवान ने कहा—श्रीरामजी का भजन कोई कर्म नहीं माना जाता । श्रीराम-नाम जप और श्रीरामजी का ध्यान तो मुनियों ने कर्म नहीं बताया है । क्योंकि—श्रीरामजी प्रकृति से परे साकेत निवासी, सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म अविनाशी हैं । उनका नाम प्रकृति से और सुकृतों से परे है । उनका सुन्दर दिव्यरूप कर्म और धर्म से परे है । इसलिए उनके नाम-रूप का जो भजन है, वह कर्म-धर्म के समान नहीं है । श्रीरामजी की कृपा से ही भजन में मन लगता है । इसलिए यह कृपामार्ग है,यह कर्म वाला साधनका मार्ग नहीं है । श्रीरामजी की कृपाके बिना कोई कितना ही कर्म करे मुक्ति नहीं पा सकता । श्रीरामजी करोड़ों ब्रह्माण्ड रचने वाले हैं । वे ही जब चाहें तब जीव का मोक्ष हो सकता है, नहीं तो अपने बल से कर्म करने वाले तो करोड़ों कर्म कर-करके जन्म लें और मरें परन्तु माया उन्हें बार-बार ऊँचे से गिरा देगी । मायापति की शरण ग्रहण किये बिना माया पीछा नहीं छोड़ेगी । इसलिए परमात्मा की शरणागति से ही गति मिलेगी । प्रेममय भजन दीनतामय शरणागति तो प्रेम ही है कर्म नहीं । श्रीरामजी का प्रेम तो हृदय का एक भाव है । श्रीराम-प्रेम के बिना जितने भी कर्म हैं वह सब अन्त में दुःखदायक हो जाते हैं । यह रहस्य सुन श्रीसत्यानन्दजी ने कहा—प्रभो ! आपकी वाणी धन्य है । आपके मुखारविन्द से कर्मों का रहस्य सुनकर मेरा हृदय अब श्रीरामजी का भक्त बन गया । मेरी सब शंकायें क्षण मात्रमें नष्ट हो गईं । तर्क-जल की

नदी सूख गई। अब कृपा करके यह रहस्य और समझा दीजिये कि ऐसे ज्ञानीजनों की मुक्ति का प्रकार क्या होता है ? कुछ ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि ब्रह्म समुद्र में जीव जलकी बूंद की तरह मिलता है। परन्तु जो दास्यभाव धारण करते हैं तो वह भी वैसे ही बूंद की तरह मिल जायेंगे ही। यदि दास लीन हो जायगा तो भक्ति करना व्यर्थ ही है। इस प्रकार तो अद्वैत सिद्धान्त ठीक मानना पड़ेगा। बस, केवल इतनी शङ्का और है। तब आचार्य भगवान ने कहा—मुक्तिका गूढ़ रहस्य भी सुनो। जो भक्त नित्यप्रति श्रीरामजी का ध्यान करते हैं उनके सौन्दर्य-अमृत का पान करते हैं। हृदय में दिव्यरूप का जब उन्हें दर्शन होता है तो वह प्यासे की तरह जल मिलने पर अत्यन्त आनंदित होते हैं। वह सब सुध-बुध भूलकर रूपमाधुरी में भृङ्गी-कीट की तरह ध्यान लगाते हैं। वह भक्त ध्यानमें तन्मय होकर श्रीरामजी का-सा रूप बन जाते हैं, शरीर छोड़कर वह दिव्य पार्षदों-सा रूप प्राप्त करते हैं जो भगवानका-सा ही रूप होता है। जैसा गीध की मुक्ति का वर्णन है—

'गीध देह तजि धरि हरि रूपा।'

जैसे श्यामल रूप प्रभु का है वैसा ही पार्षदों का भी होता है। वैसा ही पीताम्बर मुकुट-कुण्डल,हार आदि शृङ्गार। केवल हृदय के चिह्न (श्रीवत्स आदि) छोड़कर सब रूप श्रीरामजीका-सा ही मिल जाता है। ऐसे रूप से वह दिव्य साकेतधाम में जाकर प्रभु के चरणों की सदा सेवा करते हैं। ऐसा सुख शिव और ब्रह्मा को भी नहीं प्राप्त है। जैसे कीड़ा-भृङ्गी से अलग रह करके भृङ्गी का-सा रूप बन जाता है भृङ्गी में लय नहीं होता, वैसे ही भक्त भी प्रभु में लीन हुए बिना ही श्रीरामजीका-सा रूप बन जाता है। प्रभुके साथ सर्वदा रहकर वह परमानन्द का अनुभव करता

है। जिस आनन्द का ध्यान शिवजी करते हैं वह आनन्द भक्त स्वच्छन्दता पूर्वक सदा के लिए प्राप्त कर लेता है। राम-नाम प्रेमसे जपने पर प्रेम ही प्रेम रह जाता है कर्म भस्म हो जाते हैं। श्रीरामजी की कृपा से प्रेम द्वारा ऐसा ध्यान प्राप्त होकर अन्त में 'मधुर मुक्तिरूपी' फल उसे प्राप्त होता है। यह मधुर मुक्ति है और वह सूखी मुक्ति है ब्रह्म में लीन होना। इन मधुर वचनों को सुन पुलकित होकर श्रीसत्यानन्दजी को बड़ा हर्ष हुआ। सब शङ्कायें नष्ट हो गईं। श्रीरामजी के चरणों में दृढ़ अनुराग उदय हुआ। अब अद्वैत द्वैतका विवाद छोड़कर उनका चित्त श्रीरामजी की कृपा और प्रसन्नता चाहने लगा। आचार्य भगवान की अद्भुत वाणी उनके हृदय में तीर की तरह आकर समा गई। श्रीसत्यानन्दजी सत्य आनन्द प्राप्तकर प्रार्थना करते हुए अपने स्थान को चले गये। ऐसे बहुत से साधु-संन्यासी नित्य आते थे और आचार्यकी अमृत से भी मधुर वाणी सुन कृतार्थ होकर जाते थे। बहुत से तो हृदय में द्वेष लेकर आते थे किन्तु यहाँ से जब लौटते थे तब आचार्य की प्रशंसा करते हुए जाते थे। जो नित्य सत्सङ्ग में आते थे उनका हृदय-कमल खिल जाता था। बहुत से हिमालयवासी सिद्ध, साधक, योगीराज आकर आचार्य का दर्शन कर उपदेश और कृपा से दिव्य नेत्र प्राप्त करते थे। पश्चात् आचार्य ने विचार किया कि बद्रिकाश्रम की यात्रा करें। सब सन्तों को बद्रीनाथधाम चलने की तैयारी करने को आज्ञा दी तो सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सब यही चाहते थे। सन्तवृन्द आनन्दित होकर बद्रीनाथ चलने की तैयारी करने लगे। उसी समय दो महात्मा आये। दोनों के हाथों में कमण्डल था, दोनों बड़े शान्त और सुन्दर साधु थे। वे ऐसे तेजवान थे मानो अग्नि का ही शरीर हो। दोनों के देह का बराबर एक-सा आकार था

उनकी शान्तिमय वृत्ति देखकर दूसरोंका मन भी शान्त हो जाता वे दोनों सन्त आश्रमवासियों से विचित्र भिक्षा माँगने लगे। उस भिक्षा माँगने में शिक्षा-सी लगती थी। श्रीपीपाजी, श्रीकबीरजी, श्रीरैदासजी आदि एकत्रित होकर उनकी अद्भुत भाषा सुनने लगे। वह भिक्षा माँगते थे कि—दिव्य वृक्षों के तीन फूल दो और पांच पवित्र अन्न दो, तथा सात प्रकार की कस्तूरी दो, ऐसी विचित्र बात थी दोनों की। उन दोनों महात्माओं की वाणी मेघ-गर्जन की तरह थी। सब सन्तों की बुद्धि चक्कर में पड़ गई। उन दोनों के नेत्रोंसे बड़ी चमक निकल रही थी। उनकी आंखों की ओर देख डर-सा लगता था। उसी समय भीतर से आचार्य भगवान ने सहसा शङ्ख बजा दिया। शङ्ख-ध्वनि सुनते ही दोनों की आँखें तत्काल बन्द हो गईं। वह दृश्य विचित्र था। वह खड़े ही खड़े मानो सोने लगे। सन्त सब उनकी दशा देख बड़े प्रसन्न हो रहे थे। आचार्य के जो सिद्ध शिष्य थे उन्होंने अनुमान करके वह लीला समझने की चेष्टा की। वह सब रहस्य जान गये। पर कुछ कहते नहीं थे। मन ही मन मग्न हो रहे थे। तब भीतर से आचार्य भगवान निकले और दोनों महात्माओं को स्वयं जगाकर सावधान किया। तथा स्वागत है, स्वागत है—ऐसे प्रेम से मधुर वचन बोलने लगे। आचार्य की वाणी सुनते ही उन दोनों ने नेत्र खोल दिये। आचार्य भगवान ने प्रेम पूर्वक दोनों को हृदय से लगाया और आसन पर बिठाकर कुशल प्रश्न करने लगे। तब श्रीकबीरजी ने हँसकर कहा—गुरुदेव! इन्हें भिक्षा दीजिये। यह विचित्र भिक्षायें बड़ी देर से मांग रहे हैं।' तब मुसकराते हुए आचार्य भगवानने कहा—'इन्होंने तीन दिव्य वृक्ष फल जो मांगे हैं, पहले वह लो। योगरूपी पाकर वृक्ष का फल है। और कर्मकाण्ड-पिप्पल का फल है तथा मानसिक ध्यान

भावना में जो श्रीरामजीके चरणों की अष्टयाम के अनुसार सेवा है वह आम का रसमय फल है। यही तीन फल हैं आप भी खाइये और अधिकारियों को खिलाइये। अब पांच अन्नों का मर्म सुनो। वह पांच दिव्य जप हैं जिनको बहुत से ऋषि भी नहीं जान सके। वह पांचों गुप्त रहस्य हैं उनका वेद-शास्त्रों में कहीं वर्णन नहीं किया गया है। वह तो सिद्ध आचार्यों की परम्परा से जिनको प्राप्त हुए हैं वे ही कोई-कोई ऋषि इनका रहस्य जानते हैं। उनमें प्रथम तो गगन-जप कहा जाता है। वह जप मुख में खेचरी मुद्रा लगाकर किया जाता है। उस जप से ध्यान में समस्त आकाश के दृश्य दीखने लगते हैं और सर्वत्र ररंकार ध्वनि भरी सुन पड़ती है। दूसरा है 'विहंग जप' जिसमें नाम सिद्धि द्वारा नाम के ही पंखों से उड़कर समुद्र लाँघकर ध्यान में जापक जाता है तो देवलोकों का दर्शन कर लेता है। तीसरा है 'विमान जप' ध्यान में प्राणों को लय करके नाम-जप की शक्ति से ब्रह्म-लोक तक जाने की क्षमता होती है वहां दिव्य-गान सुनाई पड़ता है। उसे रोज सुन सकता है। चौथा है 'चन्द्रजप' जिसमें नाद ब्रह्म के द्वारा प्रकाश बिन्दु प्रकट करके जापक ध्रुवलोक तक जाने लगता है। भृकुटि मध्य में 'इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना' इन तीनों (त्रिवेणी) में स्नान कर चन्द्र प्रकाश प्रकट कर ध्रुवलोक तक जा सकता है। पांचवां है दिव्य 'दिनेश जप'। जिसमें नाम का प्रचण्ड प्रकाश सूर्य की भांति प्रकट होता है। उस तेज में सूक्ष्म शरीर को भी भस्म करके अक्षय साकेतधाम में प्रवेश करता है। यह क्रिया नित्य ध्यान द्वारा होती है। नित्य साकेत में जाकर वहांकी दिव्य लीलायें देखता है। और जो सात प्रकार की कस्तूरी यह मांगते हैं—वह हैं—भक्तों के ज्ञान की सात भूमि-कायें। पहली भूमिका है—दृढ़ विश्वास ईश्वर में और ईश्वर

तत्व जानने की जिज्ञासा तथा शुभ साधनाओं की इच्छा। दूसरी भूमिका है—विचार-अनित्य और नित्य को जानकर नित्य को चाहे अनित्य को त्यागे। तीसरी भूमिका है—तन और मन को अपने वश में करके कामादि विकारों को त्यागकर सार साधना नाम-मन्त्र आदि में दृढ़ता से लग जाय। चौथी भूमिका है—चारों ओर श्रीरामजी का रूप उसे दर्शन होने लगे। पाँचवीं भूमिका में अपने आनन्दमय स्वरूप (पार्षद वेष) का अनुभव पूर्णता से होने लगे। छठी भूमिका में—यह भावना रह जाती है कि कुछ भी मेरा नहीं सब प्रभु की लीला है। संसार में रहते हुए भी वह मुक्त हो जाय। सातवीं भूमिका में—परमतत्व प्रभु के लीलामय धाम में ध्यान द्वारा नित्य जाकर उनके साथ खेले। प्रभुकी सेवा (कैंकर्य) करके प्रेमरस की माधुरी का पान करे। यही ज्ञानी भक्तों की सात भूमिकायें हैं यही सात प्रकार की कीमती कस्तूरी हैं। किन्तु कोई-कोई ही महान् कष्ट सहकर जगत् के सुखास्वादन को त्यागकर, इसे प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रकार उनकी माँगी हुई भिक्षायें देकर उनका पात्र भर दिया, तो यह रहस्य सुन वे दोनों सन्त आनन्दसे ऐसे झूमने लगे जैसे मतवाले गजराज झूम रहे हों। तब वह दोनों अनूठे सन्त अपना नाम सुनाकर परिचय देते हुए कहने लगे—'आप हमारे आश्रम के दर्शनार्थ सहस्रों सन्तों के सहित जाना चाहते हैं। किन्तु, मार्ग बड़ा कठिन है, दुर्गम पहाड़,वन तथा बर्फके पहाड़ जहाँ कि पैर धरना कठिन है, भयानक नदियाँ, पानी लगने वाले झरने, बिच्छू, सर्प, शेर आदि बड़े दुःखद हैं। पग-पग पर इन सहस्रों-सन्तों को बड़ा कष्ट होगा। और आप भी परम सुन्दर और सुकुमार हैं। सदा गुफा में भीतर ही रहे हैं। आपको भी बड़ा कष्ट होगा सन्तों को तथा आपको यात्रा के कष्ट से बचने के लिए ही हम स्वयं ही यहाँ

आ गये हैं। हे कृपामय ! आप हमारे ही दर्शन के लिए तो जा रहे थे सो अब हम यहीं आ गये। यहीं हमारा दर्शनकर लीजिये वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार बारम्बार मिल-भेंट कर तथा आचार्य की बड़ाई करते हुए वे दोनों महात्मा सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्द्धान हो गये। आचार्य के साथ सब सन्त श्रीकबीरदासजी आदि ने यह सम्वाद सुना तथा श्रीनर-नारायण भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन किया तो उनका हृदय आनन्द से भर गया। उस दिन हरिद्वार ही बद्रिकाश्रम बन गया। आचार्य भगवान ने बद्रिकाश्रम की यात्रा का विचार हटा दिया। नर-नारायणका दर्शन पाकर बार-बार सन्त पुलकित हो रहे थे। इस प्रकार दिव्य आमोद-प्रमोदमें मग्न सभी सन्तजन श्रीगङ्गाजी में स्नान करते, कोई तैरते, कोई स्तुति करते। 'जय जय जय मातेश्वरि गंगे। त्रिभुवन तारिणी तरल तरंगे ॥' आदि कीर्तन ध्वनि करते—कहीं कुछ सन्त कथा कहते। पश्चात् वहाँ से आचार्य भगवान ने काश्मीर की यात्रा की। मार्ग में अनगिनती भक्त आपके शिष्य हुए। वहाँ के पापियों को पवित्र कर देश में धर्म-रक्षक दल बना दिया जो यवनों से अपनी रक्षा कर सके। जहाँ-जहाँ आचार्य भगवान जाते वहाँ-वहाँ के यवन शासक आपके चमत्कारों को सुन भय के मारे बड़ा स्वागत सत्कार करते थे। बहुत-सी वस्तुयें भेंट में लाते थे। और बड़ाई करते थे। यवन बादशाह भी दर्शनार्थ आते थे। आचार्य ने मार्ग में चलते हुए पंजाब में खूब धर्म-प्रचार किया। सभी सुबुद्धि वाले हिन्दू वैष्णव हो गये। पंजाब का बहुत सुधार आपने किया। जब काश्मीर में पहुँचे तो सहस्त्रों-सन्तों को देख मुसलमान बहुत लज्जित हुए तथा वहाँ के विद्वान् पंडित जिन्हें विद्याका घमण्ड रहता था वे आँधी की तरह दल बनाकर आये। उनके एक प्रधान थे—दिग्विजयी

देवेन्द्र पंडित। उन्होंने अपने पांडित्य के तेज से बहुत से विद्वानों को हराया था उन्होंने आकर आचार्य से तर्कयुक्त विवाद प्रारम्भ किया। वह भगवान के अवतारों को अवतार ही नहीं मानते थे वह कहते थे कि पूर्णब्रह्म ईश्वर कभी अवतार ले ही नहीं सकता अगर अवतार लेता है तो वह ब्रह्म ही नहीं रहता। तब आचार्य भगवान ने कहा—'जो परमात्मा सर्वशक्तिमान हैं वह यदि स्वयं कभी अवतार लेना चाहें और अवतार न ले सकें तो उनकी शक्ति में कमी हो गई। वह सर्वशक्तिमान ही नहीं जो भक्तों की इच्छा के अनुसार उनको दर्शन देने के लिए न आ सकें।' तब फिर उस दिग्विजयी ने तर्क रक्खी कि—'जगत् में जन्म लेने पर उसकी ईश्वरता ही क्या रहेगी ?' तब आचार्य भगवान ने उत्तर दिया—यह तर्क कुटिलतापूर्ण है व्यर्थ है ऐसा तर्क दुःखदायक है जिसमें कोई सार नहीं। सरल और सुन्दर तर्क गम्भीरतापूर्ण हो तो वह सुखद होता है। जैसे कोई दूध को गर्म करने के लिए आग पर चढ़ाता है तो आवश्यकतानुसार औट जाने पर आग बुझा देनी चाहिए। यदि कोई आग बढ़ाता ही जाय तो फिर दूध भस्म हो जायगा। जैसे अत्यन्त आग से दूध उफन कर निकल जाता है वैसे ही अति तर्क दुःखद होता है सिद्ध होते ही आग को तुरन्त बुझा देना चाहिए। यह वाणी सुनते ही दिग्विजयी देवेन्द्र की हृदय की आँखें खुल गईं। यह वाणी वाण की तरह लगी, सारा भ्रम दूर हो गया। तब आचार्य भगवान ने मधुर शंख बजा दिया, जिसे सुन देवेन्द्र पंडित गद्गद हो गये। सहसा उनकी समाधि लग गई उस दिव्य शंख ध्वनि से उन्हें ज्ञान हुआ। वह जगकर अपना सब विद्याभिमान त्यागकर आचार्य के शिष्य हो गये। जैसे महाभारत में युद्धके समय अर्जुन की दिव्य-रूप देखने के बाद दशा हुई थी। उन्होंने समस्त मर्म

पूछा तथा शिवजी का प्यारा श्रीराम-मन्त्र ग्रहण किया। इस प्रकार उस दिग्विजयी को जीतकर एक अपूर्व कार्य वहाँ किया। काश्मीर में प्रचीन से प्राचीन जो संस्कृत के ग्रन्थ थे वह दिग्विजयी के द्वारा मँगवाये। उन ग्रन्थों को एकत्रित कर अपने आश्रम काशी में पहुँचा दिया। सन्तों ने ले जाकर उन ग्रन्थों को श्रीमठ में विशाल पुस्तकालय सजाया। इधर आचार्य भगवान विजय शंख बजाते हुए काश्मीर से चले। ऐसे अगणित चरित्र हैं। सभी चरित्र विचित्र और बड़े विस्तार से हैं, मैंने उन सब चरित्रों को विस्तार भय से छोड़ दिया है जो कहे हैं वह अत्यन्त संक्षेप में कहे हैं। विद्वान्वृन्द विस्तार करके विशेष रहस्य समझायेंगे। काश्मीर से नैमिषारण्य के लिए चले। नैमिष तीर्थ बड़ा ही सुन्दर है। जहाँ सम्राट् मनुजी ने तप करके पूर्णब्रह्म को प्रकट किया था। मार्ग में बहुत नगरों को दुःख रहित करते हुए नैमिषारण्य में पधारे। वहाँ चक्रतीर्थ और अमृत सरोवर का दर्शन किया। सन्तजन सुन्दर वन की शोभा देखने लगे। वहाँ पर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और योगीराज स्वच्छन्द तप कर रहे थे। आचार्य भगवान का आगमन सुनकर वे सब तपस्या छोड़-छोड़कर दर्शनार्थ दौड़कर आये और अपनी शंकायें पूछ कर समाधान किया। सुन्दर उत्तर जो भी वह मांगते थे उन्हें आचार्य देते थे। नैमिषारण्य में नित्यप्रति महान् सत्सङ्ग होने लगा कथा, कीर्तन, प्रभु का यश गान होता, प्रेम समुद्र की लहरें उठती थीं। एकदिन गोमती नदीके पार जाकर आचार्य भगवान ने बड़ा विशाल भण्डारा किया। केवल खीर का भण्डारा था। बड़े-बड़े तपस्वी महात्मा उसमें एकत्रित हुए। वे सब महात्मा ऐसे प्रसन्न थे मानो सूखे वन में बसन्त ऋतु हो रही थी। फूल खिले थे। वन में सर्वत्र श्रीराम-नाम ध्वनि हो रही थी। ब्रह्मा-

नन्द का समुद्र-सा लहरा रहा था। नैमिषारण्य सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला है इस प्रकार उसकी महिमा वर्णन कर आचार्य भगवान वहाँ से चल दिये। साथ में अपार शिष्य समूह चारों ओर चल रहा था। जैसे चन्द्रमा के साथ चकोर जा रहे हों। मार्ग में अनेक कुटिल मिले उन सबको आपने सीधा करके सन्त-स्वभाव का बना दिया। आचार्य के साथ सन्तों का समाज ऐसा लगता था जैसे चलता-फिरता वैकुण्ठ ही हो। लीला के समुद्र आचार्य थे और तरङ्गों के समान संतवृन्द थे। आनन्दित मनसे अयोध्या में आये। दिग्विजय सूर्य मानो उदय होकर साथ में आया था। सन्त समूह अयोध्यापुरी का दर्शन कर गद्गद हो रहे थे और जय सियाराम कीर्तन करते हुए नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए प्रफुल्लित हो रहे थे। अपने इष्टदेव श्रीरामजी का धाम देखकर सन्तवृन्द शिवजी की तरह ताण्डव नृत्य करने लगे और कहने लगे कि—चारों भइया इन्हीं गलियों में सदा खेलते हैं। अयोध्या की रज उठाकर मस्तक पर लगाते और हृदय से लगाते थे तथा नेत्रों से लगाकर बड़ा आनन्द अनुभव करते थे। सब कहते थे कि—इसी रज में श्रीरामजी के चरण पड़े हैं। हमारे सौभाग्य को धन्य है कि आज हमें इस रज का दर्शन हो रहा है। श्रीसरयू की लहरों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। यह करुणारूप कही गई हैं। यह वशिष्ठजी की पुत्री हैं श्रीरामजी को बहुत प्रिय हैं। ऐसी सरयूजी की जय हो। कोई करोड़ों यज्ञ करे, बड़े-बड़े तप करे, अनन्त तीर्थ करे परन्तु, यदि कोई पल-भर भी अयोध्या में निवास करे तो उन सब पुण्यों से अधिक फल अयोध्यावासी को प्राप्त होगा। सब सन्त अयोध्या के वन और उपवनों की शोभा देख तथा प्रमोदवन की छटा देख लुभा गये। वन, कुण्ड, सरोवर, कुञ्ज आदि सब बड़े ही मनोहर थे।

वहाँ जल के पक्षी कूंज रहे थे, मोर नाच रहे थे। चारों ओर सुन्दर फूल प्रफुल्लित थे। सुन्दर मन्दिर मणियों से जड़े शोभित थे। गान, वाद्य, समाज, कथा-कीर्तन चारों ओर हो रहे थे। अवध की भूमि बड़ी प्यारी लग रही थी. अयोध्या बड़ी ही सुहावनी थी। श्रीसीताराम नाम-संकीर्तन ध्वनि सर्वत्र हो रही थी। अवध के स्त्री-पुरुष सब परमभक्त और सच्चे सन्त थे। अयोध्या में भक्ति सदा तरुण होकर नृत्य करती रहती है। माया की आँच वहाँ भक्तों पर नहीं आने पाती। ऐसी अयोध्या देख आचार्य भगवान सब सन्तोंके सहित बड़े आनन्दित हुए। आचार्य भगवान का आगमन सुन अयोध्या के नर-नारी, सन्त-महन्त सभी दौड़-दौड़कर दर्शनार्थ आने लगे। अपने-अपने कार्यों को छोड़कर आ रहे थे। कोई फूलों की माला पहनाते थे, कोई आरती करते थे कोई गुण गा रहे थे। स्तुति कर रहे थे। चारों ओर जय-ध्वनि हो रही थी। वह जनता का कोलाहल अपूर्व था। कोई धन न्यौछावर करके लुटा रहा था। कोई महान् मोद में भरकर कीर्तन कर रहा था। जय सियाराम जय जय हनुमान। जय श्रीरामानंद भगवान। यही कीर्तन-ध्वनि थी। बड़े-बड़े अयोध्याके विद्वान् आचार्य भगवान से मिलने आये तथा दर्शन करके अपने जीवन को सफल माना। पश्चात् सभी एकत्रित हुए और मुसलमानों ने जो दुःख दिये थे वह सुनाने लगे कि लाखों हिन्दुओं को जबरन भ्रष्ट करके मुसलमान बना लिया गया है। अयोध्या के आस-पास अनगिनती यवन ही यवन सब दीख रहे हैं। उनको आप किसी उपाय से अपनालें। उन्हें त्यागना ठीक नहीं है। तब आचार्य भगवान ने कहा—आप लोगों ने जो-जो दुःख पाये हैं उन सबका बदला लिया जायगा। मैं देश का सुधार करूंगा। मुसलमानों ने जो यन्त्र यहाँ टाँगे हैं, उनके नीचे से जो निकलता

है वह यवन बन जाता है, उनको नष्ट करूँगा। वहाँ अपना अधिकार कर लूंगा। धर्मभ्रष्ट वहाँ एकत्रित होकर आने लगे और अपने-अपने सब दुःख सुनाने लगे। तब आचार्य भगवान ने ग्राम-ग्राम से सब धर्मभ्रष्टों को इकट्ठे होने की आज्ञा दी। लाखों इकट्ठे हो गये तब अपनी सिद्धिके प्रभाव से सहसा सबको हिन्दू बना दिया। सबके सहसा चोटी निकल आई, सबके गले में कण्ठी अपने आप बँध गई, सबके तिलक भी लग गये। तब सारी अयोध्या के लोग ऐसे प्रफुल्लित हुए जैसे सूर्य उदय होने पर कमल खिल जाते हैं। घाटों पर यवनों ने जो यन्त्र लगा रक्खे थे वह सब तोड़ दिये। सारा अधर्म का अन्धकार मिट गया। उस समय त्रेता में जैसा रामराज्य के समय आनन्द था वैसा ही आनन्द सबको प्राप्त हो रहा था। आचार्य को देख अवध के सन्त ऐसे आनन्द से उमड़ रहे थे जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देख समुद्र उमड़ता है। आचार्य के प्रताप का बल पाकर फिर अयोध्या की फुलवाड़ी फूलने-फलने लगी। सन्तजन आकर सत्संग करते थे। श्रीराम-कथा के रहस्य रस की तरंगें उठती थीं।

वैष्णव—लक्षण

एकदिन अयोध्या में सन्तों की विशाल सभा हुई। उस सभा के सभापति आचार्य भगवान को बनाया गया। जैसे प्रातः सूर्य उदय होता है वैसे ही ऊँचे मंच पर आप सुशोभित हुए। आगे आ-आकर सन्त-महन्त मालायें पहनाते तथा आरती करते थे, सभा में आचार्य भगवान ने भाषण में कहा—'अयोध्या के निवासी सभी प्राणी परम धन्य हैं। क्योंकि नित्य उनके द्वार पर मुक्ति लुटाई जाती है। यहाँ के निवासी श्रीसीतारामजी को प्राणों के समान प्रिय हैं। यहाँ के प्रायः सभी लोग वैष्णव हैं सभी वैराग्यवान हैं, सभी माया त्यागी और सभी इन्द्रियजित हैं।

यहाँ वैष्णवों की मण्डली सर्वत्र दिखाई देती है इसलिए यहाँ वैकुण्ठ से भी अधिक आनन्द प्रतीत होता है। यह वैष्णव-धर्म सर्वश्रेष्ठ है। इनके समान और कोई धर्म-कर्म नहीं है। श्रीवैष्णवों का सत्सङ्ग मन लगाकर जो करता है उसे पराभक्ति मिल जाती है। पराभक्ति ही परमगति को देने वाली है। जो लोग वैष्णव की बड़ाई (प्रशंसा) ही केवल कर देते हैं, वह लोग बिना तप किये तप का फल प्राप्त कर लेते हैं। यह भारतवर्ष मुक्ति का क्षेत्र है, यहाँ जन्म लेकर नीच प्राणी भी उत्तम गति पाते हैं, किन्तु, जो वैष्णवों से द्रोह करते हैं वह नर्क में जाते हैं। जो मूर्ख मनुष्य वैष्णवों को कष्ट देता है, वह मरने के बाद शूकर होता है या कुत्ता होता है। जो वैष्णवों की निन्दा करता है वह बार-बार मेंढ़क का जन्म पाता है। जो वैष्णव को मारता-पीटता है, उसका भविष्य में चोरों के द्वारा मस्तक काटा जाता है तथा जो प्रेम से वैष्णवों की सेवा करता है वह बिना परिश्रमके संसार से पार जाता है। जो वैष्णवों को प्रेम से निमंत्रण देकर भोजन कराता है वह अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त कर लेता है। जो वैष्णवों के चरण धोकर चरणोदक पीते हैं, मृत्यु-लोक में उनका ही जीवन धन्य है। वह भविष्य में भगवान के अत्यन्त प्रिय होते हैं। जो वैष्णवों की जूठन प्रसादी पाते हैं वे ही पूर्ण परमार्थ के ज्ञाता हैं। उन्हें प्रभु सब कुछ दे देते हैं। क्योंकि वैष्णव भगवान को प्राणोंके समान प्रिय हैं। वैष्णवों की रक्षा के लिए ही प्रभु सदा धनुष-वाण धारण किये रहते हैं। जो वैष्णव इन्द्रियों को जीतकर सबसे वैराग्य करके प्रभु का भजन करते हैं। वह संसार को तारने वाले हैं। उनका शरीर मेघों तथा वृक्षों के समान परोपकार के लिए ही संसार में रहता है। वैष्णवों का अब कर्तव्य भी सुन लो। उनका स्वभाव और स्वरूप

भी समझकर वैसा ही बनने की चेष्टा करनी चाहिए और संग्रह नहीं करना चाहिए। लोभ सब पापों की जड़ है। लोभ तनिक भी न करे और समस्त विषयों से वैराग्य रखे। अधिक मौन रहे एकान्त में सदा प्रभु का स्मरण करे। सरल हो सदाचारी हो, शुभ गुण सुशीलता आदि धारण करे। किसी की निन्दा न करे तथा अभिमान तनिक भी न रक्खे। क्षमावान हो, कोई कष्ट दे तो भी उसकी बुराई न चाहे तथा सब पर दया रक्खे। शुद्ध मन हो, सदा सत्य ही बोले, निष्काम भजन करे ममता कहीं न करे। निर्मल चित्त और इन्द्रियों पर अपना शासन रक्खे, तथा सुख और दुःख को समान माने। शीतल हो, बात-बात में गर्म न हो उठें। सहनशील हो, बुद्धि को स्थिर रक्खें। यदि वैष्णव वेष कोई धारण करले किन्तु, न वैराग्य हो और न विचारवान हो तो वह ऐसा है जैसे मुर्दे का शृङ्गार। जो वैष्णव सन्तों के शुभ गुणोंको धारण करते हैं वह तीर्थ को भी तीर्थ बना देते हैं। जो काम और क्रोध के वेग के समय मन और इन्द्रियों को रोक सकता है वही वैरागी है वही श्रेष्ठ वीर साधु कहाने लायक है। सन्तजन धर्मराज के समान धर्म का व्रत धारण करते हैं और सदा धर्म की रक्षा करनेमें प्राणों को भी बलिदान करनेमें तत्पर रहते हैं। सन्तजन सदा सनकादिकों के समान जीवनमुक्त होकर बाल-व्रत स्वभाव से रहते हैं तथा नारदजी के समान प्रेम से सदा प्रभु के गुण गाते रहते हैं। प्रह्लाद के समान अनन्य भक्ति का व्रत धारण करते हैं, ध्रुवजी के समान प्रभु प्राप्ति के लिए तप में अचल रहते हैं। श्रीजनकजी के समान योगी और विदेह रहते हैं श्रीभरतजी के समान दृढ़ नियम धारण कर भोगों से अलग रहते हैं। भीष्म के समान महान् ब्रह्मचारी तथा शिबिराजा के समान दूसरों की रक्षा करने में अपना मांस तक दे सके वही साधु है।

बलिराजा के समान सर्वस्व दान कर सके, शुकदेवजी के समान निर्मल ज्ञानवान हो। पृथुराजा के समान और कुछ कहना सुनना न चाहकर हजारों कानों से प्रभु का चरित्र ही सुनना- चाहे। श्रीशिवजी के समान दृढ़ भक्ति प्रभु में हो, अम्बरीष के समान प्रभु की सेवा में लगा रहे। कुन्ती के समान सुख छोड़ दुःख चाहे, मनु के समान प्रभु के दर्शनार्थ तप करके शरीर को तपाते। शेषजी के समान नाम-जप में प्रेम हो दधीचि ऋषि के समान परोपकार के लिए हड्डियाँ तक दे सके, वही साधु है। शवरीकी-सी लगन लगाकर प्रभु के दर्शन के लिए बाट जोहता रहे तथा गोपियों के समान प्रभु विरह में व्याकुल रहे वही वैष्णव सन्त है। श्रीभुशुण्डिजी के समान सगुणरूप का उपासक हो, श्रीहनुमानजी के समान दास्यभाव का प्रकाश करे। श्रीअगस्त्य के समान दूसरों के पापों को समुद्र की तरह सुखा सके। दालभ्य ऋषि के समान भक्तिरस का पोषण करने वाला हो। लोमशजी के समान ब्राह्मणों का भक्त हो, भरद्वाजजी के समान श्रीरामजी का चरित्र सुनने में प्रेमी हो इस प्रकार जो संत के लक्षण हैं उन्हें सीखकर अपने आचरणों में लावें वही पराभक्ति का आनन्द प्राप्त कर सके। औरों के अवगुण कभी न देखें, अपने से सबको बड़ा माने, तिनका के समान बनकर जगत् में रहे। दूसरों को सम्मान दे पर आप सम्मान नहीं चाहे। सब की कटु वाणी सदा सहे। अङ्ग-अङ्ग में शीतलता लहराती रहे। ऐसे वैष्णवों के अनेकों जो शुभ लक्षण हैं इनको धारण करके प्रभु की छवि में मनको ऐसे डुबाये रखे जैसे जल में मछली रहती है। जैसा साधुका सुन्दर वेष है वैसा ही साधु मन हो और हृदय में प्रभु का निर्मल (कामना रहित) अनुराग हो ऐसे वैष्णवों के भाग्य की बड़ाई शेषजी सहस्र मुख से करते हैं, धन्य हैं ऐसे

संत। ऐसे वैष्णव साधुरूप कमल की सुगन्ध का आनन्द तो पुण्यवान प्रेमी भ्रमरों को ही प्रिय लगता है। मेंढ़क भी तो तालाब में कमल के पास ही रहते हैं पर वे कीड़ों को खाते हैं ऐसी ही वैष्णवों के विरोधी नास्तिकों की दशा है। वैष्णव धर्म का यह महान् उपदेश सुनकर सभी अयोध्या निवासियों की सभा आनन्द में भर गई। बारम्बार जय-जयकार करके फूल वर्षाने लगे। उस सभा में एक श्रीविष्णुचित्त नाम के (श्रीरामानुज सम्प्रदाय के) सज्जन ने हाथ जोड़कर कपटपूर्ण वचन कहा—'हे नाथ! हे जगद्गुरो! मेरी एक शंका है उसे भी सुन लें। वैष्णवों को आप हर समय तुलसी कण्ठी धारण करने की आज्ञा देते हैं, सो तुलसी तो वेदों में अत्यन्त पवित्र कही गई है। वह तुलसी कंठी पहने लोग मलमूत्र त्यागने जाते हैं तो बड़ा अपराध लगता है। उन्हें यमलोक में बड़ा दण्ड भोगना पड़ेगा। वही तुलसी कंठी आप भी हर समय गले में पहने रहते हैं। आप अपनी भूल स्वीकार करें और समझ-सोचकर आचार-विचार ग्रहण करें। यह सुन आचार्य भगवान ने उत्तर दिया—'जैसे कोई महान् मत्तसिंह हो, बलवान चाहे जितना हो परन्तु, भाव-भक्ति नहीं जान सकता। तथा वैष्णव का राज्य संसार का कोई वीर बाहुबल से नहीं कर सकता। ऐसे ही आचार-विचारवान अभि-मानी प्रेम भक्ति के रहस्य क्या जानेगा। तुलसी इतनी महान् पवित्र है कि उसकी महिमा वेद-शास्त्रों में विलक्षण रूप से कही गई है कि शौच के समय धारण करने पर भी उसकी पवित्रता कम नहीं पड़ती, साथ ही उस दशा में शरीर तुलसी के प्रभाव से पवित्र रहता है। यदि मृत्यु के समय किसी के गले में तुलसी की कंठी हो तो यमराजके दूत उसको नहीं ले जा सकेंगे। तुलसी की महिमा से ग्रन्थ भरे पड़े हैं। अन्त समय में यदि तुलसी

कंठ में हो तो निश्चय ही मुक्त हो जायगा। जो आचारी लोग आचार-विचार में अति कर देते हैं, और शौच के समय कण्ठी नहीं पहनते किन्तु, मृत्यु का तो पता नहीं कब आ जाय। श्वांस तो जीवन की आयु पूरी होते ही निकल जाती है। यदि शौच के समय मृत्यु आ जाय (बहुत से लोग शौच में बैठे मरते देखे जाते हैं—किसी की बीमारी में मरते समय शौच हो जाता है) तो बिना तुलसी कंठी के ही यदि प्राण निकल जायें तो उस बेचारे की गति फिर कैसे होगी। यह बात विचारणीय है। इसलिए दिन-रात हर समय तुलसी गले में रहनी चाहिए। तुलसी की महिमा का हृदय में विचार तो करो। जो लोग तुलसी की महान् महिमा नहीं जानते हैं वे ही आचार-विचार की बातें बनाते हैं। तुलसी के ही कानों में फूल बनाके पहनें और हृदय पर तुलसी की माला गले में कण्ठी जो पहनता है—उसकी चरण-वन्दना तो माया और यमदूत तथा काल भी करता है। जो कण्ठी धारण कर अन्न-भोजन करते हैं उनकी बुद्धि शुद्ध रहती है भक्ति में रत रहते हैं। जिनके गले में तुलसी कण्ठी नहीं है और भोजन करते हैं तो उनकी बुद्धि में भ्रम-जाल उत्पन्न होता है। जिसके कण्ठ में सदा तुलसी रहती है, बिना परिश्रम के उसे शरणागति का स्मरण रहता है। जो कण्ठी की निन्दा करते हैं उसका मुख देखने से भी पातक लगता है। जिनके दिन-रात तुलसी कण्ठी गले में है, उसका मुख देखते ही माया लज्जित हो जाती है। तो प्रत्येक वैष्णव को चाहिए कि बिना तुलसी कण्ठी के एकक्षण भी सूना गला न रक्खे। वही दिव्य परमधाम प्राप्त करता है। तुलसी की कण्ठी में किसी प्रकार अशुद्धि का विचार नहीं करना चाहिए वह तो सदा शुद्ध हैं जैसे सूर्यकान्त मणि का हार। जो लोग तुलसी को शौच के समय अशुद्ध हो जाने के भय से धारण

नहीं करते वह लोग तुलसीकी महिमा को घटाने वाले हैं। इसके प्रमाण अनेकों ग्रंथों में हैं। इसलिए हृदय की आँख से देखो और विचार करो अधिक आचार श्रद्धाको नाश करने वाला समझकर त्याग दो। पंडित विष्णुचित्तजी इन सुन्दर वचनों को सुनकर बड़े आनन्दित हुए। प्रफुल्लितचित्त से बोले—'हे नाथ ! आपकी सुन्दर अमृतमयी वाणी सुन समस्त शंकायें दूर हो गईं। बार-बार चरणों में प्रणामकर विनती करके वह अपने भवन में चले गये। इस प्रकार उस विशाल वैष्णवों की सभा में आचार्य भगवानने अपने अनुयायी भक्तोंकी रक्षाके लिए अनेक कार्य किये। बहुत से पाखण्डी पंथ वाले थे उनको ठीक रास्ते पर लाकर भक्ति की ध्वजा फहरादी। अयोध्यावासी आचार्य भगवान का मुखचन्द्र दर्शनकर समस्त कष्टों से रहित हो गये। अयोध्या सुखी हो गई अपने आचार्य के चरणों की रज प्राप्त करके। समस्त साधु परमानन्द में मग्न रहते थे तथा अभिमान त्याग दीन होकर सर्वत्र भक्ति का प्रचार करते थे। श्रीराम भक्तिके रस में डूब कर उस समय विमुख नास्तिक भी महान् भक्त बन गये तथा बहुत से विषयासक्त पापी भी सच्चा वैराग्य पाकर ग्रह त्यागकर पूर्ण वैरागी साधु हो गये। आचार्य भगवान का प्रताप देखकर सारे संसार में उस समय आनन्द की लहरें उठ रही थीं। ऐसे अयोध्या में आनन्द लुटाकर समस्त शिष्यों के साथ आप चलने लगे। अवधवासी बारम्बार आरती करके चरणों की पूजा करते थे। मालायें पहनाते तथा फूल बर्षाते थे। जय-जयकार कर आपका सुयश गाते थे। इस प्रकार कृपा-निधान आचार्य भगवान ने अवध को आनन्दित कर काशीके लिए प्रस्थान किया। मार्ग में लोगों को पवित्र करते हुए काशी आये। आश्रमवासी बड़े प्रफुल्लित हुए। आचार्य भगवान दिग्विजय करके लौटे हैं—यह

सुनकर काशी निवासी अत्यन्त आनन्दित हुए। बड़ी तैयारियाँ की गईं स्वागत के लिए। आचार्यरूपी समुद्र का आगमन होने से ऐसा लगता था–काशीरूपी नदी में मानो बाढ़ आ गई हो। गृह के कार्य तथा लज्जा त्यागकर जनता दौड़ पड़ी। बालक, बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष सब सुध-बुध भूलकर दर्शनार्थ दौड़ पड़े। सहस्रों शिष्योंके सहित आचार्य भगवानका दर्शन कर उस समय महात्माजनों का मन सुखी हो रहा था। काशीवासी लोग मार्ग में आते हुए आचार्य भगवान की बारम्बार आरती करते थे और पूजा करके फूल वर्षा रहे थे। जय-जयकार करते तथा स्तुति करते थे। सभी लोग अत्यन्त प्रेमसे विह्वल हो रहे थे। सबका दुःख चला गया। बहुत से भक्त जो गुरुदेव के वियोग में विरहसे विकल थे वह परमानन्द में भर गये। ब्राह्मण लोग गद्गद कण्ठ से मनोहर स्तुति–श्लोक कविता आचार्य की प्रशंसा में बनाकर लाये थे सो सुनाने लगे। दिग्विजय करके आते हुए आचार्य ऐसे ही उस समय लगते थे जैसे लंकासे रावण को जीत विमान द्वारा श्रीरामजी अयोध्या में आये थे। इस प्रकार आकर जब अपने आश्रम पर विराजमान हुए तो सारा संसार आनन्दित हो गया।

काशी में लीलायें

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी दिग्विजय करके काशीमें लौट आये। संसार को दुःखों से रहित कर दिया। सर्वत्र धर्म की ध्वजा फहरादी। आचार्य का सुयश तीनों लोकों में छा गया। आचार्य का आगमन सुनकर दर्शनाभिलाषी दूर-दूर देशों से काशी में आने लगे। बहुत दिनों में आप लौटे थे, सभी दर्शन करके आनन्दित हो रहे थे। काशी निवासियों ने बड़ा उत्सव मनाया, सारा नगर सजाया था। सभी भक्त सत्संगमें आचार्य का उपदेश सुनने के लिए प्यासे हो रहे थे, वह ऐसे दौड़-दौड़कर आ

रहे थे जैसे दीपक पर पतिंगे दौड़कर आते हैं। सत्संग होने लगा। सहस्रों सत्संगी सन्तों की महान् सभा में रसरङ्ग नित्य प्राप्त होता था, आपस में सभी दिग्विजय की विचित्र कथायें कहते-सुनते थे। किसी ने एकदिन कहा कि—आचार्य भगवान ने श्रीवृन्दावन में जाकर बड़ा-भारी भण्डारा किया था, जिसको वर्णन करने में भी बुद्धि चक्कर खा जाती है, ऐसा भण्डारा न कभी हुआ न कहीं हो सकता है। कोई-कोई काशीवासी कहने लगे अगर यहाँ वैसा भण्डारा हो तो हम लोग भी देखें। हमें भी वैसा आनन्द मिले। किस प्रकार से आचार्य ने दिव्य अन्न उत्पन्न किया था हमें ऐसा दृश्य दिखावें तो हम जानें। हमें तो बड़ा आश्चर्य हो रहा है। सर्वज्ञ आचार्य भगवान ने सबके मन की जान ली और अपने शिष्यों से मधुरवाणी में कहा—'काशी में भण्डारा करेंगे। सब प्रबन्ध करो। समस्त काशी के साधु और ब्राह्मणों को निमंत्रण देकर बुलाओ। लाखों नर-नारी बालक, वृद्ध सभी आकर प्रसाद पायें ऐसा निमंत्रण भेजो। ऐसा कहकर अपनी दिव्य-शक्ति से अपार अन्न आदि सामग्री प्रकट की सुन्दर घी की सुगन्ध चारों ओर छा गई। आवाहन करके कुछ देवताओं को बुलाया जो सेठ साहूकारों का वेष बनाकर आ गये। उन्होंने सारा प्रबन्ध प्रारम्भ किया। बड़ा-भारी आयोजन करके विशाल पांडाल बना-बनाकर बड़ी-बड़ी लम्बी कोसों तक पंक्ति बैठने की व्यवस्था की गई। काशी के अतिरिक्त ग्राम-ग्राम, नगर-नगर के असंख्य लोग आने लगे। दिव्य भोजन थे। छप्पन प्रकार के भोजन मिष्ठान्न, व्यंजन आदि बड़ी रुचिके साथ बनाकर भगवान को भोग लगाकर परोसे गये। बड़े प्रेम से सब जीमने बैठे। सन्तों की पंक्ति बड़ी विशाल थी। बड़ी शोभा हो रही थी। श्रीसीताराम-नाम कीर्तन ध्वनि मधुर स्वर से हो रही थी।

एकबार लाखों व्यक्ति भोजन करके उठे, पश्चात् दूसरी बार फिर लाखों बैठ गये, ऐसे कई बार भोजन हुआ। इतना विशाल भण्डारा था कि उसका वर्णन असंभव है। तीनों दिन तक लगातार ऐसे ही आनन्दसे भोजन सबको कराया गया, एक साथ बैठे मनुष्यों की पंक्ति कई कोस तक दीखती थी। करोड़ों साधु-ब्राह्मणों ने सुख-पूर्वक स्वाद सराह-सराह कर भोजन किया। इतना बड़ा भण्डारा निर्विघ्न पूर्ण हो गया। लोगों को बड़ा हर्ष हो रहा था। सभी लोग बारम्बार कहते थे कि न कभी कहीं ऐसा भण्डारा सुना न देखा। इस प्रकार सबको आनन्दित करके समस्त भारत को तपबल से विघ्न रहितकर दिया। यवनों का शासन था परन्तु आचार्य के भय से वह किसी हिन्दू को नहीं सताते थे। विदेशों में भी आपके चमत्कारों की प्रसिद्धि सुनने से विदेशी राजा लोग भी बहुत सम्मान करते थे। बड़े-बड़े बादशाह राजे-महाराजे दर्शनार्थ आते थे। उन दिनों काशीरूपी आनन्द वन में बड़े-बड़े विद्वान् मतवाले हाथियों के समान निवास करते थे। वह सब प्रधान-प्रधान विप्र एकत्रित होकर आश्रम पर आये उनका विद्या का घमण्ड आश्रम पर आते ही नष्ट हो गया सहसा उनको बड़ा वैराग्य भी उदय हुआ। वहाँ सन्तोंका पवित्र सत्संग देखने-सुनने से तथा आश्रम के महान् प्रभाव से वे सब विद्वान् आचार्य के भक्त बन अपना तन-मन अर्पणकर स्तुति करने लगे। श्लोकों में सुन्दर आचार्य की महिमा के छन्द बनाकर लाये। उस स्तुतिमें बड़ी सुन्दर अलंकारोंसे युक्त व्यंजना थी। उसमें आचार्य को उदय हुए चन्द्रमा के समान बताया तथा अकलंक चन्द्र हैं, पूर्ण कलायुक्त हैं पश्चात् दिव्य प्रतापरूपी सूर्य बताकर यवन रूपी मेघों को उड़ाने में पवन के समान बताया था। आचार्य का मुख-कमल अग्नि के समान बताया था जिसे नेत्र नहीं देख

सकते अनुभव के द्वारा देखा जा सकता है। ऐसे अपार श्रद्धा दिखलाते हुए अगणित भाव हृदय के प्रकट किये थे। पश्चात् उन विद्वानों ने कहा—'हे कृपानिधान! आप ही वास्तव में जगद्गुरु हैं। जैसा तेज प्रताप होना चाहिए वैसा पूर्णरूप से आप में विद्यमान हैं। आप सिद्धों में शिरोमणि हैं, ज्ञान के भण्डार हैं, सदा योग में निष्ठ तुरीयावस्था में निमग्न रहते हैं संसारके सभी विवाद करने वाले आपसे हार गये। बड़े क्रूर यवन बादशाह आपने सीधे कर दिये। बौद्ध, शैव, शाक्त, जैनी, आदि सभी सम्प्रदायों वाले आपसे हारकर शरणागत हो गये। सब तुमको साक्षात् भगवान ही मानते हैं। सभी आपसे ऐसे प्रेम करते हैं जैसे अपने प्राणों से सबको सहज प्रेम होता है। आपने भारतको नष्ट होने से बचा लिया। कहाँ तक आपका सुयश गान किया जाये। विद्वानों की यह विनती सुनकर आचार्य भगवान बहुत संकुचित हुए बहुत से वस्त्र और आभूषण मँगवा कर देने लगे। सभी पण्डितों को प्रेमपूर्वक वस्तुयें देकर कहा कि—'वेद और शास्त्रों को आपने खूब पढ़ लिया है अब कुछ विचार भी करो कि आपको इस विद्या से क्या मिला? हृदय टटोल कर अच्छी तरह अन्तर में देखिये। यदि आपने कुछ सार नहीं पाया है तो पीछे पछताना पड़ेगा। और अगर कुछ सुन्दर रत्न किसी ने पाये हों—वेदरूपी सिन्धु से तो वह मुझे उन रत्नों को दिखावे हम उसे पुरस्कार देंगे। यह सुनकर सभी विद्वान् मौन हो गये। विचार करने लगे। पश्चात् सावधान होकर अपने-अपने अनुभव रूपी रतन दिखा-दिखाकर आचार्यरूपी जौहरीको परखाने लगे। एक पण्डित ने कहा—'कर्म करना ही सार है।' दूसरे ने कहा—'ब्रह्म विचार ही सार है' तीसरे ने कहा—'भगवान की शरण जाना ही सार रत्न है।' चौथे ने कहा—'तपस्या ही सार है।'

पाँचवें ने कहा—'समाधि लगाना ही सार है।' और बाकी पंडितों ने मौन धारण कर लिया। उनके सबके रतनों को देख-परख कर आचार्य भगवान ने कहा—यों तो सभी ने अनमोल रतन निकाल के दिखाये हैं। परन्तु किसी ने दृढ़ता पूर्वक अपने अनुभव को नहीं बताया। क्योंकि—उन रतनों को योंही कह दिया है स्वयं पूर्णरूप से क्रिया में नहीं लाये। रतन तो यतन के बिना ठहरते नहीं हैं। इसलिए मन लगाकर यतन करो। आप लोग समस्त स्वार्थों को त्यागकर सनातन धर्म में प्रीति रखना। सदा परोपकार में मन रहे। अहिंसा का दृढ़ नियम पूर्वक पालन हो। यदि कोई देश की या समाज की रक्षा करना चाहे तो उसे एकान्त विचार साधना में तप और त्याग में सदा लगे रहना चाहिए। जो धर्म नीति में पूर्ण कुशल है वही पंडित परमात्मा का हाथ है। उस पंडित को दुराग्रह तथा दम्भरूपी राक्षसों का साथ छोड़ देना चाहिए। विषयों को विष के समान मानकर त्याग दो और अमृत के समान भगवान की भक्ति का पान करो, विवादरूपी भ्रम की आसक्ति छोड़ श्रीहरि के नाम रूप में आसक्ति करो। पंडितजन यह उपदेश सुनकर ऐसे आनन्दित हुए जैसे चन्द्रमा को देख कुमुद प्रफुल्लित हो जाते हैं। वह सब हृदय को चन्दन के समान शीतल लगने वाले श्रीराम रूपका स्मरण करते हुए अपने-अपने भवनों को चले गये। एकबार गंगा दशहरा (ज्येष्ठ शु० १०) पर्व के समय काशी में बड़ी भीड़ हुई। आश्रममें बड़ी-भारी सभा एकत्रित हुई। उसमें बड़े-बड़े आनन्द हुए। बड़े-बड़े राजा तथा धनवान आये थे। आचार्य भगवान का सत्संग कर कृतार्थ हुए और बड़े-बड़े उत्सव आश्रम पर उन लोगों ने करवाये। श्रीभट्टार्क नाम के पंडितजी उस पर्व पर आये थे उन्होंने आते ही आचार्य को बड़ी सुन्दर माला पहनाई।

पश्चात्—दर्शन करके गद्गद कंठ से कुछ पंडिताई भरे अलंकार युक्त वचन कहने लगे कि–'प्रभो ! मुझे कृपाकर ऐसा साहस दीजिये कि मैं अपने समस्त शत्रुओंको जीत लूं।' मैं नंगी तलवार घुमाता हुआ शत्रुओं के किले में घुस जाऊँ और सब शत्रुओं को मारकर विजय की ध्वजा फहरादूं। मेरे शत्रु अत्यन्त बलवान हो रहे हैं। वह बड़े-बड़े घात-प्रतिघात करते हैं। मुझे बड़ी पीड़ा देते हैं। मैं उनको साथियों के सहित काट डालना चाहता हूँ तलवार को मार-मारकर। आचार्य भगवान उनकी यह वाणी सुनकर बहुत मुसकुराये और बोले—'हे ब्राह्मण देवता ! आपने बड़ी वीरता दिखाई। बड़ी वीररसकी बातें कहीं किन्तु, तलवार तो तुम्हारे पास है ही नहीं आप किस प्रकार शत्रुओं का संहार करेंगे और केवल साहस से भी काम नहीं चलेगा। बिना तलवार के उस शत्रु सेनाको तुम नहीं मार सकोगे। वह तलवार है श्रीरामजी की कृपा भरी चितवन। वही कृपा की दृष्टि समस्त कामादि शत्रुओं का हृदय वेधकर उन्हें नष्ट कर सकती है। अब उस कृपादृष्टि से मिलने का उपाय सुनो जो श्रीगुरुदेव के द्वारा प्राप्त श्रीराम-मन्त्रका जप करता है उसे ही वह चितवन रूपी तलवार मिल सकती है। यह वचन सुनते ही पण्डितजी अभिमान त्यागकर विनय करने लगे और बड़ी प्रशंसा की। पश्चात्—आग्रह पूर्वक माँगकर श्रीराम-मंत्र की दीक्षा ली तथा जप की रीतिरूपी साहस भी माँगा। श्रीराम-मन्त्र का उन्होंने जप विधि पूर्वक किया। कृपा-दृष्टिरूपी तलवार प्राप्त करके उन्होंने समस्त काम क्रोध राग-द्वेष आदि शत्रुओंको मिटा दिया। श्रीरामजी की मधुर चितवन वास्तव में बड़ी विलक्षण है वह कल्पवृक्ष के फूल के समान है। वह भक्तों के मनरूपी भ्रमर को मस्त कर देती है और समस्त शोक-मोह काम क्रोध आदिके शूल

को नष्ट करने वाली है। एकबार आश्रम पर एक महात्मा आये वह बड़े मस्त थे। शरीर में राख लगा रक्खी थी। वह बड़ी वेढंगी बातें बोल रहे थे। उसकी बातें सुन सभी सत्संगी हँस रहे थे। वह महात्मा जब आचार्य भगवान के दर्शन पा सके तब बड़े भाव से नाचने लगे। तरह-तरह से नृत्य-कला दिखाई फिर कहने लगे—'हे कृपालु गुरुदेव! में आपको सदा ढूंढ़ता रहा। आप कहीं मिले नहीं—आप अब मिले हैं। आपके चरण-कमल दर्शनकर मेरे नेत्र सफल हो गये। मैं शोक रहित हो गया। किन्तु, एक बात का कष्ट है–शान्ति नाम की मेरी स्त्री जबसे मुझे छोड़कर अपने घर चली गई है। तबसे दिन-रात दुःखी होकर रोता-बिलखता रहता हूँ। घर-बाहर भटकता हूँ कहीं चैन नहीं बस मेरी प्यारी को बुला दीजिये। या मुझे उसके पास पहुँचा दीजिये। उस महात्मा की यह बात सुनकर सब लोग हँसने लगे। हाँ, कुछ योगी, सिद्ध जो वहाँ थे–उन्होंने इसका मर्म समझ लिया वे नहीं हँसे। तब प्रसन्न होकर आचार्य भगवान ने कहा–'आप साधु होकर स्त्री के लिए मतवाले हो रहे हैं सो तुम्हारी स्त्री तो स्वर्ग में भी तुम्हारी याद करके रो रही है। तुमने ही अपना घर गन्दा करके अपनी प्रिय स्त्री शान्ति को भगा दिया है। अब यदि फिर बुलाना चाहो तो अपने हृदय मन्दिर की सफाई करके सजावट करो। निर्मल और सफेद घर बनाकर उसमें सुगन्ध छिड़को खूब सजाओ। तब तुम्हारी सच्ची प्रीति देखकर वह सुन्दरी शान्ति दौड़ती हुई तुम्हारे पास चली आयेगी। जैसे चन्द्रमा के साथ चाँदनी तथा सूर्य के साथ प्रभा शोभित होती है तैसे ही निर्मल साधु के साथ शान्ति शोभा देती है। साधु को चंचलतारूपी वेश्या का साथ दुःखदायक है। यह उत्तर सुनते ही वह महात्मा घबड़ाकर चरणोंमें पड़ गये। और

प्रार्थना करके श्रीराम-नामरूपी रत्न लेकर आनन्दित मन से अपने स्थान पर चले गये। एक गरीब ग्वाला काशी में रहता था। उसके एक सन्तान हुई किन्तु, उस बच्चेके स्त्री का चिह्न था न पुरुष का, माता-पिता बड़ा आश्चर्य कर रहे थे। काशी में जहाँ इस बात की चर्चा होती तो कोई हँसी समझता कोई आश्चर्य करता। ज्योतिषी लोगों के तथा वैज्ञानिकों के विचार कुछ काम नहीं कर रहे थे। चिकित्सक हार गये। कुछ लोगों की राय से आचार्य भगवान के समीप सब लोग उस बच्चे को लेकर आये। बड़े आर्त्त स्वर से विनती करने लगे। जय-जय करके बहुत स्तुति की, कि वृद्धावस्थामें मुझे यह पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु वह ऐसा है कि जिसे देख घोर दुःख हो रहा है। कृपा करके इसे आप अपनी शक्ति से पुत्र बना दीजिये। आप सब कुछ करने में समर्थ हैं। आचार्य ने कहा—'कर्मका चक्र बड़ा विकराल है। इस बालक ने पूर्वजन्म में कुछ ऐसे ही पाप किये हैं जिससे ऐसा शरीर मिला है। भाइयो! सभी अपना भाग्य का फल भोग रहे हैं। विधाता ने जो लिख दिया है भला उस लेख को कौन मिटा सकता है उस कर्ता ने जो रचना रच दी है, बस वही ठीक है उसमें दूसरा विचार नहीं चल सकता। यह सुनकर उस बच्चे के माता-पिता व्याकुल हो गये, बार-बार नमस्कार करके कहने लगे कि—आपने बड़े-बड़े अलौकिक कार्य किये हैं। जो ब्रह्मा भी नहीं कर सके ऐसे कार्य आप करने में समर्थ हैं। आप अपने प्रताप को स्मरण करें और इस कार्य को करने की कृपा करें। हम लोग आपकी महिमा रोज देखते आये हैं। आप समर्थ हैं। शरणागतों को सुख देने वाले हैं, हे आर्त्त भक्तों के रक्षक प्रभो! हमारी रक्षा करो। आप सृष्टि रच सकते हैं ऐसी सामर्थ्य आपमें है। श्रीब्रह्माजी श्रीशङ्करजी आपसे अधिक-

नहीं हो सकते । आपने बहुतों के दुर्भाग्य की रेखा बदल दी है क्या हमारे ही समय पर आपको संकोच हो रहा है । इस प्रकार जब बार-बार प्रार्थना की तो आचार्य भगवान को दया उत्पन्न हो गई । चरणामृत देकर कहा कि—'इस बालक के मुख में डाल दो । चरणामृत पिलाते ही बालक के पुत्र का चिह्न प्रकट हो गया । वह बालक प्रसन्न होकर किलकने लगा । इधर सब लोग जय-जयकार करने लगे । माता-पिता आदि सब आनन्दित होकर चले गये । बड़े उत्साह से उत्सव मनाया, गीत गाये । उस दिन से वह लोग नित्य-प्रति आश्रम पर आते और सन्तों को दूध-दही दे जाते थे । पृथ्वी पर सर्वत्र आचार्य की महिमा का गान होने लगा । आचार्य के दर्शनार्थ सिद्ध, योगी, राजा, महा-राजा, नित्यप्रति आते रहते थे । बड़ी-भीड़ दिन-रात लगी रहती थी, जैसे ब्रह्माजी के पास देवता और ब्रह्मर्षियों की भीड़ रहती है । बड़े-बड़े तपस्वी, जितेन्द्रिय, मुनि आकर सत्संग से कृतार्थ होते । दिव्य आनन्द पाते थे । बिना परिश्रम के ही भव-सागर से वे लोग तर रहे थे जो कि केवल आचार्य का दर्शन कर लेते थे । जो भी राम-मन्त्र भी प्राप्त कर लेते उनका तो कहना ही क्या था । सन्तों का सदा मेला-सा रहता, जिसे देखते ही पापियों के पाप समूह भस्म हो जाते थे । नित्य ही ज्ञान-विज्ञान पूर्ण चर्चा होती थी और भक्ति की महिमा तथा प्रेम के गम्भीर रहस्य सुनकर अपूर्व अनुभव सत्संगियों को प्राप्त होता था । आचार्य भगवान परम उदार दानी थे, दिन-रात रहस्य रूप हीरा जवाहरातों की खान खोलकर दान किया करते थे और सज्जन लोग आनन्द से वह दिव्य रत्न, हीरा, पन्ना, मणि, सोना आदि लूटते रहते थे । आचार्यकी वाणी हेमन्त ऋतु के समान थी, उसे सुनते ही सब लोगों का हृदय शीतल सुखमय हो जाता था ।

एकबार सत्संग में शिष्यों का बड़ा विशाल समूह एकत्रित हुआ। सबसे पहले श्रीकबीरजी ने अनन्तानन्दाचार्यजी से कहा कि—'हे गुरुभ्राताजी ! आप हमें साधना की कुछ विधि समझाइये। क्योंकि—यतन के बिना कोई रतन तो पाता ही नहीं है और यतन सुनते समझते तो बहुत हैं परन्तु यतन हाथ में नहीं आता तब श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी ने उत्तर दिया—यतन तो बस इतना ही करे कि—सीधे आसन से दृढ़ होकर बैठ जाय। हृदय और मस्तक स्थिर करके मन को नाम में लीन कर दे। बस सहज समाधि लग जायगी। जो संकल्प-विकल्प उस समय उठते हैं वह सब माया के द्वारा विघ्न मचाने के लिए मन में आते हैं। एकाग्र करके चित्तवृत्तियों को श्रीगुरुदेव के चरणों के ध्यान में लगावे। चरणों के नखोंसे मणियोंका-सा प्रकाश निकलता हुआ ध्यान करे। फिर शरीर की आसक्ति त्यागकर दिव्य प्रकाशमय अपना आत्म-स्वरूप ध्यान में प्राप्त करे। उस रूप से हृदय के बाजार में प्रवेश करके वहाँ की सब दिव्य वस्तुयें दर्शन करे। परन्तु उस बाजार में साक-पात आदि तुच्छ वस्तुओं को खरीदने में ही अपना समय व्यर्थ न बिगाड़े। जो हृदय हाट के चतुर व्यापारी हैं—वह तो रतनके खोजनेके लिए सीधे जौहरी बाजार में जाते हैं। वे इधर-उधर के चक्कर में नहीं फँसते। वह तो छान-बीन करके अनेक मणि रतन परखते हुए मोल भाव करके युक्ति पूर्वक खरीदकर अनमोल हीरा वहींसे लाते हैं। यह सुनकर भीतर गुफा से आचार्य भगवान ने कहा कि—एक हीरा हमको भी दीजिये। उसे भी खोज लाना। परन्तु, हृदय नगर के राजा की बड़ी सभा में जाकर उस हीरे को परखा कर खूब जँचवा कर लाना। यह सुनकर अनन्तानन्दाचार्यजी बड़े लज्जित हो गये, समस्त सभा भी उस समय मौन हो गई। जैसे कमल

का रसपान करते में भौंरे चुप हो जाते हैं। तब आचार्य भगवान ने सहसा शंख बजा दिया। सबको समाधि लग गई। सबको हृदय के बाजार में सैर करा दी। जब समाधि से सब लोग जागे तो बड़ा आश्चर्य करने लगे। श्रीकबीरजी को बड़ा आनन्द आ रहा था कि प्रश्न तो छोटा-सा था किन्तु, उत्तर बहुत बड़ा मिल गया। एकबार पश्चिम देशों के दो निवासी (सिंह और सर्प) काशी में आये। सन्ध्या के समय दोनों दौड़ते हुए आ रहे थे उनको देखकर लोग भयभीत हो गये। सर्प बड़ा-भारी था। सिंह भी केहरी था। उनको मारने के लिए सिपाही लोग शस्त्र ले लेकर दौड़े। किन्तु, जब पास पहुँचे तो सिंह की दहाड़ और सर्प की फुसकार से वे सिपाही भी डरकर भागने लगे। काशी में बड़ा-भारी कोलाहल होने लगा। सब कहते थे कि—ऐसे भयानक जीव कभी नहीं देखे। वे दोनों सिंह सर्प नगर में होते हुए आश्रम पर आये। उनको देखकर आश्रम निवासी भी डरकर भागने लगे। परन्तु, जो सिद्ध सन्त मण्डली थी वह नहीं भागी। वह सन्त तो उनसे निर्भय होकर जैसे मनुष्यों से कुशल पूछते हैं ऐसे पूछने लगे। तथा जो आश्रम के लोग डर रहे थे उनसे कहने लगे कि—डरो नहीं यह महापुरुष हैं। फिर सभा लगी, सन्त एकत्रित हुए। उस समय आचार्य भगवान पूजा में थे। जिस प्रकार नित्य संध्या करते थे वैसे ही संध्या करके नियमानुसार शंख बजाया तो वह शंख की दिव्य-ध्वनि आकाशमें गूंजने लगी। उस ध्वनि को सुन सिंह तो मतवाला हो इधर-उधर दौड़कर शंख के स्वर में गर्ज कर स्वर मिलाने लगा। सर्प उस ध्वनि को सुन बावरा-सा होके फन फैलाकर नाचने लगा। इनके विचित्र कौतुक को सब देखने लगे। कुछ डरते भी थे कुछ आनन्द भी आ रहा था। फिर सबके देखते-देखते आँखों के आगे ही दोनों

के शरीर बदलने लगे। वे दोनों देवतारूप हो गये। उन्हें पूर्व-जन्म का ज्ञान भी हो गया। उनका शरीर क्षणमात्र में ऐसे बदल गया जैसे भृङ्गी कीड़ेका-सा रूप बदलता है। फिर वे दिव्य रूप धारण करके हाथ जोड़ प्रार्थना करने लगे कि—हे नाथ! कृपा करके दर्शनभी दीजिये। उनकी प्रार्थना पर आचार्य भगवान ने बाहर आकर दर्शन दिया। वे दर्शन से कृतार्थ हो अपनी कथा सुनाने लगे कि—हम दोनों हिंसक जानकर वन-वन में भटकते थे। एकदिन वन में श्रीरिहिला स्वामी विचरते हुए आ गये। सिंह ने कहा कि हम उनको खाने के लिए दौड़े। स्वामीजी हमें देख हँसने लगे। थोड़ी-सी मिट्टी उठाकर उन्होंने हमारे सिर पर डाल दी। हमारी हिंसावृत्ति नष्ट हो गई। तत्काल ज्ञान हो गया। सब जड़पना हमारा चला गया। पश्चात् स्वामीजी ने उपदेश दिया तो आत्म ज्ञान की ज्योति जल उठी। ऐसे ही सर्प एकदिन मिला उस पर ऐसे ही कृपा की यह दोनों शिष्य हो गये। स्वामीजी के साथ रहने लगे। दोनों ज्ञान पाकर सेवा करने लगे। एकदिन स्वामी ने आपकी महिमाका प्रसङ्ग चलाया कहने लगे—'इस समय काशी में पतितों का उद्धार करने वाले, परम कृपालु भगवान ही आचार्य रूपमें प्रकट हुए हैं। मुझे ध्यान में यह बात मालुम हुई है। इसे सत्य मानकर तुम दोनों वहाँ जाओ। वहाँ जाते ही तुम्हारा उद्धार हो जायगा। बिना परिश्रम के तुम्हारा काम बन जायगा। यह सुन अपने गुरुदेव स्वामी की आज्ञा से हम आपके पास आये थे। सो बिना प्रार्थना किये पहले ही आपने हमारी हिंसक योनि शंख ध्वनि से छुड़ा दी। हमारा मनोवांछित फल हमें मिल गया। हे प्रभो! आपकी अकारण कृपा को धन्यवाद है। हमारी तामसी योनि छूट गई। अब आपकी जो आज्ञा हो हम वही सेवा करें। आचार्य भगवानने मधुर वाणी

में कहा—'हमें सेवा की कोई आवश्यकता नहीं है। आप लोग पहले अपने गुरुजी के पास जाइये और हमारा संदेश उनसे कह देना कि—ऐसे ही भवसागर में डूबते हुए जीवों को तारते रहें। देखो सन्त के क्षणमात्र के सत्संग से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। उपदेश करके जीवों के दुःख हरना ही साधु का कर्तव्य है। सो करते रहें। ऐसे कहकर तुम लोग सिद्धलोक को चले जाना। प्रणाम करके वे दोनों चले गये, आकाश मार्ग से। इस प्रकार नित्य अनेकों लीलायें होती रहती थीं जो आश्चर्यमय होती थीं। उन लीलाओं को सुनकर कहकर, सन्तों का वैराग्य बढ़ता था और वे संसार से तर जाते थे। एक विद्वान् पंडित 'भवभूषण' नाम के काशी में रहते थे। वह बड़े गंभीर सुशील, धर्मात्मा थे। केवल वेल-पत्तियों का रस निकालकर पीते थे और कुछ नहीं खाते थे। वेदों को पढ़ाते और विद्यार्थियों को पढ़ाकर जीविका चलाते थे। उनकी पत्नी बड़ी पतिव्रता थी और दो पुत्र भी थे। पत्नी और पुत्र सब पण्डितजी की सेवामें लगे रहते थे। एकदिन अकस्मात कहीं से सर्प ने आकर पण्डितजी को डस लिया। वे पृथ्वीपर गिर पड़े। उनका शरीर काला पड़ गया। पण्डितजी को भयंकर सर्प ने ऐसा काटा कि वे तत्काल मर गये, ब्राह्मणी हा-हाकार कर रोने लगी। दोनों पुत्र रोने लगे। झाड़-फूंक करने वाले बुलाये गये। औषधि मन्त्र-जन्त्र सब बेकार हो गये। जब कुछ लाभ न हुआ तो बहुत से ब्राह्मण इकट्ठे हुए, श्मशान में ले जाने के लिए तैयारी की। उनमें से एक ब्राह्मण ने कहा—'श्रीरामानन्दाचार्यजीके पास ले चलो, वह अच्छा कर सकते हैं वह बड़े दयालु हैं। वहां रोज सबके बिगड़े काम बनते हैं। वह साक्षात् भगवान के समान हैं। सब लोग चिन्ता त्यागकर उनके आश्रम पर चलिये। तब वे शव को लेकर आश्रम पर आये वह ब्राह्मणी

आर्त्त होकर रोने लगी । उस पतिव्रताका करुणक्रन्दन सुनकर संतों को बड़ा कष्ट हुआ । परम दयालु आचार्य भगवान को दया आ गई । उनका तो नाम ही 'सर्व दुःख भंजन' लोगों ने रख दिया था । परम कृपा करके मधुर स्वर से भीतर से शंख बजा दिया। शंखध्वनि होते ही वह शव जीवित हो गया । पण्डितजी आनन्दित हो उठ बैठे । पण्डितजी फिर जीवन पाकर जब उठे तो बड़ा आश्चर्य करने लगे । लोगों की भीड़ में सभी आनन्दित हो रहे थे । आचार्य का प्रभाव देखा जो बुद्धि की समझ से परे था । उसी समय वहाँ एक सर्प आ गया जिसने काटा था । वह भयंकर सर्प आचार्य भगवानके मन्दिरकी देहली पर फन फैलाकर खड़ा हो गया । और मनुष्योंकी तरह बोलने लगा । हे जगद्गुरो ! हे अन्तर्यामी ! आप तो समदर्शी कहे जाते हैं । पर यह समदर्शी-पन का कार्य आपने नहीं किया । आपने इस पण्डित को जीवित किया है सो देखकर मुझे बड़ा दुःख है । क्योंकि–यह पण्डित हमारी सर्प जाति का पुराना शत्रु है इसने ही जनमेजय राजा (परीक्षित के पुत्र) का प्रसिद्ध सर्प यज्ञ कराया था । इसने करोड़ों सर्पों को यज्ञकुण्ड में भस्म किया था । तबसे अब तक यह जहाँ भी जिस योनि में जन्म लेता आया है बार-बार हमारे डसने से ही मरता रहा है । हमारा प्रबल बैरी है । जैसे राहू और सूर्य का बैर है वैसा ही इससे हमारा है । अब आपने यह हमारी बड़ी हानि की है कि–जो आपने हमारे काटनेके बाद इसे जिला दिया है । क्योंकि–जिसे तपोबल से सिद्ध पुरुष जीवित कर दें उसे फिर हम डस नहीं सकते । आपने बड़ा अन्याय हमारे साथ किया है । आप कृपा करके हमारी प्रतिज्ञाको झूंठी मत कीजिये । उस महानाग की बात सुनकर वहाँ उपस्थित सभी पण्डित और सन्त आदि महानुभाव चकित हो गये । उस पण्डित के परिवार

वाले सब फिर रोने लगे कि अब जाने क्या होगा। तब अत्यन्त प्रेम से आचार्य भगवान ने कहा—'हे सर्पराज ! आप ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनें। आपने जो कुछ कहा सब ठीक है, परन्तु हमने जो इस ब्राह्मण को जिलाया है सो दयावश सहसा यह कार्य हो गया है। तुम्हारा अपमान करने के लिए ऐसा नहीं किया गया है साधुओं के हृदय में अत्यन्त कृपा होती है यह बात तो सभी जानते हैं कि—सन्त पराये दुःख को देख द्रवित हो उठते हैं। हमने जो इसे जिलाया है उसे आप भगवान की ही इच्छा समझें। अब क्या किया जाय होना था सो तो हो ही गया। अब आप सन्तोष करें। मनकी ग्लानि त्याग दें। अपने भवन को शान्त मन से जायें। और तनिक सन्तों का सिद्धान्त भी सुन लें। क्रोध और शत्रुता तो किसी से करना ही नहीं चाहिए। शत्रु का भी अहित कभी न चाहे। चाहे शत्रु कितना ही कष्ट क्यों न दें। जो शत्रु के साथ बैर करके उसकी एकबार भी हानि करता है तो विधाता उससे विमुख हो जाता है। परन्तु, आप तो हजारों जन्मों तक बराबर बैर करके इसे बार-बार डसते ही चले आ रहे हैं आपने तो बहुत दण्ड दे लिया इसे ऐसा बैर इस ब्राह्मण से कर रहे हो जिसका कभी क्या अंत ही नहीं होगा। कभी इसके अन्तका तो विचार होना ही चाहिए। तुम्हारे समान विद्वान् के लिए ऐसी दुर्जनता शोभा नहीं देती। आप बैर त्यागकर अब अपने मनको निर्मल बना लीजिये। जिससे आपके लिए भी ज्ञान और परमार्थ का मार्ग खुल सके। इस कार्य में भगवानकी प्रेरणा समझकर आप व्यर्थ व्याकुल न हों। शत्रुता त्यागकर इस बेचारे ब्राह्मण को अब यह दान और दो कि—इसे अब कभी मत डसना ताकि अब इसके लिए भगवान के भजन करने का मार्ग खुले और यह साधना करके परमात्माकी प्राप्ति में लगे। यह सुनकर वह

नाग बहुत लज्जित हो गया और सूर्योदय के बाद जैसे कुमुद कुम्हला जाते हैं वैसी ही दशा हुई। फिर वह विनती करने लगा बोला–धन्य हो प्रभो ! आप परम कृपालु हैं। हे प्रभो ! आप मेरा अपराध क्षमा करें। मैंने आपको बहुत से कटु वचन कहे हैं मैं अब कभी इस ब्राह्मण को नहीं डसूंगा। अब मुझे ऐसा उपदेश दीजिये कि मेरा पाप और अज्ञान नष्ट होकर सब क्लेश मिट जायें। ऐसा कहकर वह चरणोंमें पड़ रोने लगा। उसकी मलिनता शत्रुता दूर हुई, ज्ञान उत्पन्न हो गया। शरणागत होकर प्रार्थना पूर्वक उसने श्रीराम-नाम की दीक्षारूपी मणि प्राप्त की। जय-जयकार करता हुआ नागराज अपने पाताललोक को चला गया। इधर सब ब्राह्मण लोग आनन्दित हो गये। आचार्य के गुण गाने लगे। वह सब बिना मोल के बिक गये और आचार्य के शिष्य हो गये। अनेक प्रकार से पूजन किया। अनेकों उपहार भेंट किये। वह ब्राह्मण जीवन पाकर तथा जन्मका फल भगवान की भक्ति-भजन-साधना पाकर परिवार सहित संसारसे तर गया। आचार्य ऐसी कृपा कर ऐसा सुख देते थे जिसकी कहीं उपमा ही नहीं। एकबार नेपाल के राजा दर्शनार्थ आये। साथ में विशाल सेना थी। आचार्य के सत्संग की प्रबल लालसा से आये थे। उन्होंने आचार्य से दीक्षा पहले ही ले ली थी, अब गुरुदेव के दर्शन उपदेश की अपार प्यास हृदय में थी। श्रीअनन्तानन्दजी पहले मिले उनके चरणों में राजा बड़े प्रेम से लिपट गये। श्रीअनन्तानन्दजी ने स्वागत-सत्कार कर राजा को बैठाया आश्रम पर सन्तों का समाज देखकर राजा बड़े आनन्दित हुए। संध्या समय सत्संग होने लगा। बड़ी सुन्दर अन्त सभा लगी थी आनन्द ही आनन्द छा गया था। सभा के बीच में गुरुदेव का सिंहासन था, वहां आकर आचार्य भगवान विराजमान हुए। जैसे सूर्य।

तब नेपाल नरेश ने प्रणाम कर स्तुति की और मणियों के फूलों की माला पहनाई। फिर गुरुदेव से आज्ञा माँगकर प्रश्न किया हे गुरुदेव मेरी यही विनती है कि मेरा माया बन्धन अब खोल दीजिये। सत्य बात यह है कि—मेरी रानी बहुत सुन्दरी है। उससे मेरा बड़ा अनुराग है। मेरा संसार के सुखों से वैराग्य नहीं होता। सो क्या करूँ। मैं बहुत सोचता हूँ कि भगवान से प्रेम करूँ पर होता नहीं। यह सुन आनन्दित होकर आचार्यने कहा—हे राजन्! भ्रम का बड़ा विस्तार है जैसे बिजली मेघ में चमक कर छिप जाती है, बस ऐसे ही विषय भोगों का सुख क्षणभंगुर है। इस मनुष्य शरीर की आयु बहुत थोड़ी है। पग-पग पर हर समय मृत्यु का भय है। जैसे जलते लोहे पर जल की बूंदों के सूखने का भय है। और इधर तो मनुष्य क्षणिक भोगों के लिए व्याकुल हो नाना उपाय कर रहा है और उधर मुख फाड़े हुए काल इसे खाने को आ रहा है। इस शरीर से आत्मा अलग है। जगत् के सुख भ्रम हैं ऐसा ठीक से पहिचान लो। जो दुःख उठा कर दिन-रात कर्मों में लगे रहते हैं और उनकी बुद्धि विषय सुखों के लिए ललचा रही है तो—वह मरते समय बड़ी-बड़ी वासनायें मन में रखके नर्क और गर्भ में जाकर बड़ी यातनायें बार-बार सहते हैं। बहुत से दुःख पाकर भी विषयों को नहीं छोड़ते हैं। वह सुनते, देखते, सोचते, समझते हुए भी नहीं जागते हैं। माता-पिता भाई पुत्र प्रिय स्त्री परिवार ऐसा समझो जैसे लम्बी यात्रा में रास्ते में यात्री मिल जाते हैं और उनसे प्रेम हो जाता है। अथवा जैसे नदी की धार में बहुत-सी लकड़ी बहते-बहते कभी थोड़ी देर को एकट्ठी हो जाती हैं। धन और वैभव सब छाया के समान हैं। मनुष्यों का जीवन जल की लहरोंका-सा है यह बनता-बिगड़ता रहता है। स्त्री का सुख क्षणभर के स्वप्न के

समान है। जिस सुख के लिए बड़े-बड़े दुःख लोग सहते हैं। लोग बड़े-बड़े रोगों के कष्ट भोगते हैं और भी अनेक सर्दी-गर्मी-वियोग आदि दुःख पाते हैं। फिर भी कुछ विचार नहीं करते। रोज ही सूर्य उदय होता है रोज अस्त हो जाता है आयु मनुष्योंकी घटती जाती है। फिर भी इधर दृष्टि नहीं देते। औरों को बूढ़े होते देखते हैं परन्तु, इतना अज्ञान है कि तनिक भी चेत नहीं होता। मनुष्य काल की गति को समझता नहीं कि—देखो रोज रात आ जाता है। रोज दिन आ जाता है। जैसे फूटे घड़े में जल थोड़ा-थोड़ा निकलता जाता है। फिर एकदिन जल न रहकर सूखा घड़ा रह जाता है। ऐसी ही आयु रोज घट रही है। वृद्धावस्था सिंहनी के समान मुख फैलाये आ रही है और मौत हर समय मौका ताकती रहती है मारने के लिए। यह शरीर हाड़, मांस, कीटाणु, रक्त, चर्वी तथा मल-मूत्र, कफ आदि से भरा हुआ अत्यंत गन्दा है इसी नाशवान शरीर पर अभिमान करके लोग कहते हैं कि—मैं राजा हूँ। मैं बलवान हूँ—मैं युद्ध में वीर हूँ। जिसको अधिक देह का अभिमान होता है वही अधिक पाप रोज करता है तथा जिसको देह में अहम् भाव नहीं, परम ज्ञानी कहलाता है उससे पाप भी नहीं बनते। जगत् में न शरीर रहता है न जीवन रहता है। रोज सहस्रों लोगों की मृत्यु देखने में आती है। आगे चलकर प्रलयकाल होने पर सारा संसार भी बिगड़ जाता है। ऐसे ब्रह्माण्ड सदा ही बनता-बिगड़ता रहता है। जब यह जीव गर्भ में जाता है तब कुछ ज्ञान होता है वहाँ कर्म-बन्धन में पड़े होने की बात जानकर रोता पछताता है कहता है कि अबके गर्भ से जन्म लेनेपर खूब भजन करूँगा जो कि फिर इस काल-कोठरी में न आना पड़े। परन्तु जन्म लेने पर वह सब दुःख भूलकर मौज उड़ाने लगता है। कहता है—कहीं ईश्वर नहीं है। ज्ञान

वैराग्य की चर्चा तक उसे नहीं अच्छी लगती। विषय सुखों में ही फँसे-फँसे जन्म खो देता है। करोड़ों कीट पतङ्ग, पशु, पक्षी आदि योनियों में जन्म ले लेकर बड़े-बड़े दुःख अनुभव करता है फिर भी तृप्ति नहीं होती इनसे छुटकारा पाकर मुक्ति प्राप्ति के लिए मन नहीं लगाता। ऐसे ही बार-बार दुःख भोग-भोगकर गर्भ में पश्चात्ताप करता है, बार-बार फिर वह कष्ट यातना भूल कर पशु की तरह विषयों के लिए दौड़ता है। इसलिए विषयों की इच्छा को वमन की तरह त्यागकर मुक्तिदाता भगवान के चरणों में अनुराग करना चाहिए। जिसको जगत् में वैराग्य की चर्चा अच्छी लगती है, वही बड़ा भाग्यशाली है। काम के सुख को त्यागकर राम के सुन्दर स्वरूप का ध्यान जो करता है, वही भगवान का दर्शन प्राप्त करता है। वह अनूठी वैराग्य बढ़ाने वाली वाणी सुनकर समस्त सभा के लोगों के हृदय में वैराग्य लहराने लगा। नेपाल के राजा की बुद्धि सोते से जाग पड़ी। माया छिन्न-भिन्न होकर हृदय से भाग गई। सहसा प्रबल वैराग्य उदय हो गया। गुरुदेव का उपदेश तीर की तरह लगा। विषय-वासना की नदी सूख गई। अनेकों सकाम मनोरथ जो हृदय में भरे थे वे सब रात्रि का अन्धकार सूर्योदय होते ही जैसे नहीं रहता, वैसे ही अदृश्य हो गये। गुरुदेव का प्रतापरूपी कमल देखकर राजा का मन भ्रमर-सा बनकर वैराग्यमय उपदेशरूपी मकरन्द का आनन्द लेने लगा। जैसे मन लगाकर कवि लोग सुन्दर काव्य के रस का आस्वादन किया करते हैं। इस प्रकार बड़े आनन्दसे सत्संग हो रहा था। उसी समय एक बड़ा विचित्र चरित्र हुआ। उसका रहस्य सुनिये। आकाशरूपी गङ्गामें आनन्द से तैरता हुआ एक हंस आया और आश्रम पर उतरने लगा। सब लोग उस हंस को देखने लगे। वह हंस आचार्य भगवान के

सामने आया। आचार्य ने उसका बड़ा आदर किया तथा उसके लिए दूध मँगवाकर अपने हाथों से बड़े प्रेम से पिलाया। उस हंस ने दूध पी लिया और जल का अंश उसमें से छोड़ दिया। जैसे मुनि लोग सबके अवगुण छोड़ गुण केवल ग्रहण कर लेते हैं। वहाँ उपस्थित सब सन्तरूपी हंस यह कौतुक देख आश्चर्य करने लगे। फिर वह हंस आचार्य के समीप आकर बड़ा प्रेम दर्शाने लगा। और आचार्य के चरणों में चोंच से स्पर्श करने लगा। आचार्य का मुख बार-बार प्रेम से देखकर कुछ संकेत-सा करने लगा। उसी समय आँखों को और मन को प्यारा लगने वाला बहुत सुन्दर एक कबूतर आया। आचार्य भगवान ने कुछ सरसों के दाने मँगवाकर कबूतरके आगे डाल दिये वह आनन्दित होकर दाने चुगने लगा। दाने खाते-खाते वह उड़ा और प्रेम दर्शाते हुए आचार्य के सुन्दर हाथ पर जाकर आनन्द से बैठ गया। फिर भूमि पर आ गया तथा चरणों में लोटकर आकाश में उड़ गया। इधर हंस भी विचित्र मनोभाव दिखाता हुआ इच्छानुसार आकाश में उड़कर चला गया। उन दोनों पक्षियों की यह विचित्र लीला कौतुक-भरी मनको प्रिय लगने वाली देखकर सभा के सन्त विचार करने लगे कि यह सिद्ध महात्मा होंगे जो पक्षियोंका रूप बनाकर आये हैं। किन्तु, आचार्य के जो सिद्ध शिष्य थे उन्होंने इसका रहस्य जान लिया था अपनी दिव्य-दृष्टि से। वह सब चिन्ता में पड़ गये। अपार शोक और भय से मन ही मन विकल होने लगे। उनके प्रफुल्लित मुख-कमल सहसा मुरझा गये तब श्रीकबीरदासजी ने मधुरवाणी से कहा—'हे दयामय गुरुदेव आप बड़े उदार दाता हैं। अभी जो श्रीब्रह्माजी और श्रीइन्द्रजी पक्षियोंका-सा रूप बनाकर आये थे। उनका चरित्र देखकर हम लोग बहुत दुःखी हो रहे हैं। उन्होंने जो आपसे प्रार्थना प्रेमपूर्वक

की है वह विचारते ही हमारा हृदय अत्यन्त विकल हो जाता है। हे करुणामय कृपा-निधान दीनबन्धु दीनों पर दया करके- कुछ दिन के लिए उनकी प्रार्थना फिर टाल दीजिये। सब जगत् का हित विचारकर जन-कल्याणार्थ यहीं रहकर कुछ दिन अपने दिव्य-दर्शन का आनन्द और देने की कृपा करें।' यह सुनकर प्रेम और तेज के निधान आचार्य भगवान ने कहा—'श्रीब्रह्माजी और श्रीदेवराज आपसे स्वयं पक्षी रूपमें आकर जब बहुत विनती कर गये हैं तो—अब उनकी विनय को न मानना भी अनुचित होगा। मैंने उन्हें वचन भी अभी दे दिया है अब उसको टालना ठीक न होगा। तुम सब मिलकर लोक कल्याण करो। तुम ज्ञानवान और सिद्ध तथा सब प्रकार प्रवीण हो। संयोग-वियोग, सर्दी, गर्मी सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को मायामय देखकर इनसे अलग रहना ही साधुओं का परम पवित्र धर्म है इसे अच्छी प्रकार हृदय में अनुभव करो। इसलिए हे हमारे प्रिय बच्चो! तुम किसी प्रकार का शोक मत करो। तुम सब मुझे प्राणों के समान प्यारे हो। तुम सदा दिव्य-दृष्टि से मेरी उस लोक की अलौकिक लीला देखते रहना। यह सारा जगत् तो यहीं बदलने वाला है। हृदय में सदा श्रीरामजी का मेघ के समान श्यामल कोमल स्वरूप ध्यान करते रहना। वनमाला, पीताम्बर पहने धनुषधारी श्रीसीताजी के हृदय में विहार करने वाले, क्रीट मुकुट, मणिमय कुण्डल धारण किये ध्यान करना। जब तक पृथ्वी पर शरीर रहे तब तक अखण्ड रूपसे श्रीसीतारामजी का ध्यान करना। श्रीराम प्रेमरूपी अमृत पीते रहना। बिना श्रीरामजी की भक्ति के सुख नहीं प्राप्त होगा। ऐसे कहकर आचार्य भगवान मौन हो गये। सभी शिष्यवृन्द प्रेम से सेवा करने लगे। दर्शनों के लिए जिनका नित्य का दृढ़ नियम था वह काशी

निवासी भक्तजन आने लगे। सब लोग इस प्रसंग को भूल गये आनन्द से सत्संग होने लगा। नित्यप्रति नये-नये उत्सव होने लगे और नित्य नये-नये चरित्रों से ज्ञान भक्तिमय रङ्ग बढ़ने लगा। एकदिन आचार्य भगवान ने देखा कि—'अपनी गुरु परम्परासे चला आया महान् प्राचीन मठ अत्यन्त जीर्ण हो गया है। आपने गुरुदेव के उस आश्रम का जीर्णोद्धार कराया, उस श्रीमठको दिव्यधाम साकेत-सा बनवाकर खूब सजावटें कीं। उसमें मणिमयी वेदी भी बनवाई। सोने के विशाल दरवाजे और मणिमय भूमि रत्न जड़े खम्भ तथा मणिमय दीपकों की माला बनवाईं। श्रीमठ की ऐसी शोभा हुई कि उसको देखकर बड़े-बड़े राजा भी लज्जित हो जाते थे कि ऐसा भवन हमारा नहीं है। इस प्रकार श्रीमठ बनवा दिया तो ऐसी दर्शनीय वस्तु काशी में हो गई कि उस समय समस्त पृथ्वी पर श्रीमठ के समान श्रेष्ठ इमारत दूसरी नहीं थी। देश-विदेश के यात्री श्रीमठ का दर्शन करने आते थे। श्रीमठ के कारण काशी अत्यन्त चमक उठी। सभी कहते थे इसकी बराबर कहीं कोई इमारत नहीं है। श्रीमठ के समान तो यह श्रीमठ ही है। उस श्रीमठमें विराजमान जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ऐसे लगते थे जैसे बैकुण्ठ में विष्णु भगवान हों और शिष्य ऐसे लगते थे जैसे दिव्य पार्षद हों। आचार्य का प्रभाव अखण्ड था।

यज्ञोत्सव और साकेत-गमन

दिग्विजय करके आचार्य ने श्रीमठ को सजाया तो वैभव देखकर इन्द्र भी संकुचित हो गये। पश्चात् आचार्य ने विचार किया कि श्रीराम-यज्ञ करायें। उस विशाल यज्ञका आनन्द सभी को प्राप्त हो। देश-देश से ऋषि मुनि यज्ञकर्ता निमन्त्रण देकर बुलाये गये। आचार्य के आमन्त्रण पर सभी हर्षित होकर आने

लगे। श्रीराम-यज्ञ का प्रबन्ध बड़े विलक्षण ढङ्ग से किया गया। मणिमय मण्डप यज्ञ के लिए बहुत बड़ा बनवाया गया। आचार्य के अगणित शिष्य थे। जिनमें सिद्ध योगी तथा बहुत से सन्त महन्त, सेठ राजा आदि बड़े-बड़े धनवान भी यज्ञ सुनकर आये और प्रबन्ध में लग गये। श्रीराम-यज्ञ नगर ही अलग मैदान में बनाया गया। मानो महान् शोक का ही एक देश बन गया हो। करोड़ों जनता दर्शनार्थ आने लगी। सन्तों का विशाल समूह देख सब आनन्दित होते थे। कई सहस्र ब्राह्मणोंको यज्ञके लिए वरण किया गया, जिसमें सभी वैष्णव थे और सभी निर्मल ज्ञान वाले थे। घी और हवन सामग्री, खीर आदि का बहुत संचय किया गया, १०हजार कुण्ड यज्ञके लिए बनवाये गये। सभी यज्ञ-कर्त्ता ब्राह्मणों को पीताम्बर पहनाया गया। सब यज्ञ के लिए सावधानी से आकर विराजमान हुए। श्रीराम-यज्ञ का वह परम सुन्दर मण्डप था। उसमें सोने के खम्भे सुशोभित थे। पश्चात् आचार्य भगवान ने समय देखकर आज्ञा दी कि अब श्रीराम-यज्ञ आरम्भ करें। श्रीराम-मन्त्र से आहुतियां पड़ने लगीं। सहस्रों ब्राह्मण वेद ध्वनि कर रहे थे। यज्ञ का धुआं आकाश में इतना घुमड़ने लगा। कि मानो काली आंधी आ गई हो। कीर्त्तन करते हुए सन्तों का विशाल समूह आनन्दमग्न हो नृत्य कर रहा था, मानो मेघों को मयूर नाच रहे हों। जनता का समह जय-जयकार कर रहा था। बाजे ऐसे सुन्दर बज रहे थे कि जो देवताओं की दुन्दुभि के घमण्ड को दूर कर रहे थे। उधर लाखों सन्तों की भोजन सेवा की जा रही थी, जो कोई जो कुछ मांगता वही दान देकर सबका सत्कार किया जाता था। निर्धन कङ्गाल जो मांगते थे तुरन्त दिया जाता था। उस समय कोई भी मांगने वाला लौटाया नहीं गया। करोड़ों साधु-ब्राह्मण भोजन करते थे,

किन्तु भण्डारा समाप्त नहीं होता था वह अक्षय भण्डार था। श्रीराम-यज्ञ नगर में एक ओर विशाल सभा का मण्डप बनाया गया था। जहाँ बैठकर विद्वान्, सिद्ध, सन्त सत्संग करते थे। जनता की भीड़ का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो साक्षात् वैराग्य ने बड़ी सेना सजाई हो। सभी लोग आचार्य भगवान का दर्शन चाहते थे। कुटी के द्वार पर इतनी भीड़ एकत्रित थी कि लोग दबे से जा रहे थे। तब आचार्य भगवान ने लीला रची, कई रूप से उसी समय आश्रम में विराजे रहे। सबकी इच्छा पूरी करने लगे। एक रूपसे जाकर दान क्षेत्र में बैठ गये साथ ही एक रूप से यज्ञशाला में जा पहुँचे। सभी को दर्शन दिया कृपा करके यह दृश्य देख सभी सन्त और गृहस्थ आनन्दित हो उठे। सबको सुन्दर उपदेश भी देते जाते थे। सबको वचनामृत रस पिलाकर कृतार्थ किया। आचार्य की यह लीला जो सन्त देख रहे थे। वह ऐसे आनन्दित हो रहे थे जैसे चन्द्रमा को देख समुद्र हर्षित होता है। बहुत से राजा तथा महाजन सेठ साहूकार आदि देश-विदेश से आये हुए थे वह सब धन के खजाने खोलकर कुबेर की तरह बैठे द्रव्य लुटा रहे थे। जी खोलकर दान दिया जा रहा था। ऐसा अद्भुत उत्सव श्रीराम-यज्ञ में हुआ कि उसकी उपमा कहीं नहीं मिलती। अपार आनन्द दिन-रात उमड़ता रहता था। इस प्रकार कई दिनों में वह यज्ञ पूर्ण हुआ। पूर्णाहुती के दिन बड़ी विशाल सभा लगी। बड़ा-भारी सन्तों का समाज एकत्रित था। बड़े-बड़े योगी ज्ञानी सिद्ध ब्राह्मण राजा आदि सबको उपस्थित देख आचार्य भगवान ने सुन्दर उपदेश दिया। मधुर वाणी से कहा—'सभी सज्जनो सुख मानकर मेरी बात सुनो। वेद पुराण आदि अनेकों ग्रन्थ हैं, उनका सार सबका मत श्रीभगवान का भजन ही है। वह भजन ही सन्तों का जीवन आधार है। हृदय

में विचारकर इस रहस्य को देखो। भाइयो! यह हिन्दू धर्म परम सुखदायक है। परन्तु, हिन्दू धर्म का आधार श्रीप्रभु का स्मरण ही है। हिन्दुओं में चोटी और जनेऊ का आधार अन्त्यज (शूद्र) हैं। ऐसा जानकर समाज को लँगड़ा मत बना देना क्योंकि शूद्रों की उत्पत्ति तो भगवान के चरणों से हुई है अपने पैरों को काटने से जैसी हानि है, वैसी ही इन शूद्रोंको त्यागने से हानि होगी। और जो हमारे इस सम्प्रदाय के सच्चे अनुयायी हैं अथवा आये होंगे। वह सब बिना परिश्रम के श्रीराम-भक्ति का रस प्राप्त कर लेंगे। माया मोह मिटाकर वह श्रीसाकेतधाम को जायेंगे। यही मेरा वरदान है। हमारे सम्प्रदाय का निर्मल मार्ग है। परम उदार है। यह सब जातियों पर दया करता है। इस का आगे खूब प्रचार होगा और हमारे सम्प्रदाय में आगे चलकर बड़े-बड़े सिद्ध सन्त उत्पन्न होंगे। वे भक्तिरस में पगे आचार्य होंगे। भगवान के प्रिय निजजन तथा महर्षि हमारे संप्रदाय में जन्म लेकर आयेंगे। वह देव-प्राणी संस्कृत में भगवान का चरित्र लिखेंगे तथा हमारे शिष्य-प्रशिष्यों के द्वारा सुन्दर हिन्दी साहित्य के महान् ग्रंथ रचे जायेंगे। वह ग्रंथ प्रभुके प्यारे और जगत् को पवित्र करने वाले होंगे। उनको आदरपूर्वक जो सुनेंगे वह भाग्य-वान मनुष्य भ्रम त्यागकर भवसागर से तर जायेंगे। ऐसे हमारे सम्प्रदाय के द्वारा सब प्रकार से देश का सुधार होगा। वेद शास्त्रों के सारांश से भरे हुए अनुपम ज्ञान भक्तिमय रहस्यों से युक्त ग्रन्थ हमारे शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा आगे रचे जायेंगे तथा—हमारे संप्रदाय में ऐसे महापुरुष प्रकट होंगे जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध होंगे। हमारे अनुयायी जनता को मुक्ति का दान करेंगे। हमारा यह उपदेश कभी मत भूलना कि स्त्री-सङ्गसे बचना सर्व-प्रथम कर्त्तव्य है क्योंकि स्त्री ब्रह्मचारी को दुःखदायक होती है।

स्त्री के संसर्ग से योगी का हृदय कमल मुरझा जाता है। ज्ञान-रूपी सूर्य का प्रकाश नष्ट हो जाता है तथा धन को भी साधू के पुण्य का लूटने वाला समझना। जो धन संग्रह करता है उसे बड़े-बड़े दुःख उठाने पड़ते हैं। ऐसे कह आचार्य भगवान मौन हो गये। पश्चात् थोड़ी देर में सन्त समाज को उपदेश सुनने को उत्सुक देखकर बोले—'कल पवित्र श्रीरामनवमी का पर्व है। यह तिथि सुखदायक है. जो परम सुन्दर हैं। इसलिए मैं कल उस अयोध्या में जाऊँगा। जिस अयोध्या में जाकर फिर कोई लौटकर नहीं आता। तुम सब मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हो मुझसे यदि कोई अपराध हुए हों तो मेरे अपराधों को क्षमा कर देना। आचार्य भगवान के इन वचनों को सुनकर समस्त सभा के लोग शंकित हो उठे। सभी की आँखों में अश्रु भर आये सबने सोच लिया कि अब हमारे इस महान् आनन्द की अवधि आ गई। सब संध्या को अपने-अपने स्थानों को चले गये। किन्तु, रात्रि-भर किसी को नींद नहीं आई। प्रातःकाल होते ही लोग एकत्रित होने लगे। बड़ी-भारी भीड़ हो गई। सब लोग वियोग से भयभीत हो अनेकों विचार कर रहे थे। सबकी छाती धक-धक कर रही थी। वह स्मरण कर मन अब भी विकल हो उठता है। उसी समय सहसा आचार्य भगवान ने भीतर से शंख बजाया। उस ध्वनि को सुनते ही सबका हृदय आनन्द से भर गया। फिर मन्दिर का द्वार खोलकर तत्काल आचार्य भगवान बाहर निकल आये। उसी समय एक दिव्य विमान आकाश से उतरता हुआ आया। उसी पर आचार्य भगवान विराजमान हो गये। सभी स्त्री-पुरुष जय-जय ध्वनि करने लगे कि—'जय हो श्रीरामानन्दाचार्य भगवान की जय हो।' सब लोग उस समय विमान का कौतुक देखने में शरीर की सुध-बुध भूल गये थे।

वह विमान मणियों से मण्डित जगमगा रहा था। उसमें सुन्दर रूपधारी पार्षद विराजमान थे। धीरे-धीरे हंस की चाल की तरह वह विमान आकाश में उड़ा तो आकाश मण्डल प्रकाशमय हो गया। मानो करोड़ों चन्द्रमा उदय हुए हों। देवता उस समय आकाश में सुन्दर फूलों की वर्षा करने लगे। सभी नर-नारी नेत्रों से अश्रु बहा रहे थे और अङ्ग पुलकित हो रहे थे। सब लोग दूर से ही फूल आचार्य को अर्पण कर रहे थे, जय-जय की ध्वनि से आकाश गूंज रहा था। विमान पर बैठकर जाते हुए आचार्य भगवान ने एकबार फिर शङ्ख मधुर ध्वनि से बजाया और सबके देखते-देखते परमधाम (साकेत) में चले गये। समस्त काशी निवासी और सन्त-समाज अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। सर्वत्र उदासी छा गई थी। सहस्रों शिष्य भक्त ऐसे लग रहे थे, मानो कमलों पर ओलों की वर्षा हुई हो। जनता में वहाँ पर आर्त्तनाद सुनाई दे रहा था सभी हा प्रभो! श्रीरामानन्दाचार्य! ऐसे शब्द उच्चारण कर रहे थे। भक्तजन खड़े आकाश की ही ओर देख रहे थे। दोपहर बीत गये परन्तु कोई आँखें नहीं हटाता था। तब श्रीकबीरदासजी ने हृदय में धैर्य धारण कर उस बढ़ाते हुए अपार करुणा के समुद्र को देखा। श्रीकबीरजी सबको दिव्य-ज्ञान उपदेश करके सावधान करने लगे। फिर भी किसी प्रकार उन सबकी विकलता नहीं गई। तब श्रीकबीरजी ने अपनी योग सिद्धि का प्रयोग किया। तब तत्काल ही सबका शोक चला गया। वे सब लोग अपने-अपने स्थानों को चले गये किन्तु, सबके हृदय में आचार्य का ही ध्यान था। सभी सोचते थे कि आचार्य के बिना अब जीवन किस प्रकार रहेगा सभी शिष्यों ने व्याकुल होकर आश्रम में आचार्य की भजन कुटी में प्रवेश किया। गुरुदेव का आसन पूजा की वस्तुयें

आदि देखीं। श्रीगुरुदेव की चरण-पादुकायें देखकर मस्तक पर रखकर रोने लगे। बार-बार हृदय से लगाते थे और आँखों के जल से पादुकाओं को नहलाते थे। सभी के मन में आई कि पूजा के लिए चरण-पादुकायें स्थापित करदी जायें। फिर सबने बड़ी धूम-धाम से स्थापना का आयोजन किया और गङ्गा तट पर पादुकाओं को प्रक्षालन के लिए ले गये। श्रीगङ्गा तट पर श्रीअनन्तानन्दजी मस्तक पर पादुकायें लेकर गये। श्रीगङ्गा जल का स्पर्श होते ही वह पादुकायें काष्ठ से बदलकर पत्थर की हो गईं। बड़े समारोह से आचार्य के गुण गाते हुए चरण-पादुकाओं की प्रतिष्ठा की गई। सन्तों को सुख देने वाली पादुकायें पंचगङ्गा तट पर काशी में आज भी विद्यमान हैं इस पृथ्वी पर कितने बड़े-बड़े महापुरुष आये और अपने-अपने महान् कार्य करके चले गये। यहाँ पर कोई भी इस नाशवान शरीर में रहते नहीं हैं। परन्तु, वह अपनी महिमा में सदा विद्यमान रहते हैं। उनकी चरितावली में उनका नित्य निवास रहता है। इसलिए बड़े प्रेम और उत्साह से उनका चरित्र गान करना चाहिए। श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी को सबने आचार्य की गद्दी पर प्रतिष्ठित किया। श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी समुचित प्रबन्ध करते थे। पश्चात् उन्होंने सारे भारत में भक्ति का प्रचार करने के लिए विचार किया। श्रीसुखानन्दजी को बङ्गाल में भेजा उन्होंने जाते ही वहाँ बहुत से भक्त बना दिये। तथा श्रीसुखानन्दजी को महाराष्ट्र में भेजा। उन्होंने अपने योगबल से सारे महाराष्ट्र में आचार्य के सिद्धान्तों का प्रचार किया। श्रीसुरसुरानन्दजी को पंजाब में भेजा। उन्होंने सारे पंजाब में ज्ञान-भक्ति का प्रचार किया। श्रीगालवानन्दजी को काश्मीर भेजा। उन्होंने वहाँ हिन्दू धर्म और श्रीराम-भक्ति का

प्रचार किया। श्रीयोगानन्दजी ने गुजरात में जाकर भक्ति और योग-साधना का प्रचार किया। इसी प्रकार श्रीपीपाजी श्रीधन्ना भक्त, श्रीसेनजी, श्रीकबीरजी, श्रीरैदासजी आदि ने भिन्न-भिन्न नगरोंमें जाकर प्रचार किया। इस प्रकार सारे भारत में आचार्य के शिष्यों द्वारा महान् धर्म, ज्ञान, योग, भक्ति, कीर्तन आदि का प्रचार हुआ। देश-देश में यवनों के शासन से पीड़ित हिन्दुओं को इन सिद्ध सन्तों ने सुख शान्ति पहुँचाई। धर्म की रक्षा के लिए श्रीरामानन्दी सन्तों ने बड़ा योगदान किया। आचार्य के सभी शिष्य योगी तथा सिद्ध थे। सभी वैरागी तथा सभी भोगों से दूर रहते थे। तप में पूर्ण निष्ठा थी। श्रीराम भक्ति सारे जगत् में फैल गई। यह श्रीसीताजी का सम्प्रदाय कहा जाने लगा क्योंकि श्रीसीताजी से ही श्रीराम-मन्त्र की परम्परा आरम्भ हुई है। द्वारा गद्दियों के अनेकों आचार्य हुए हैं जो उस समय दिग्पालों के समान धर्म के रक्षक थे। सर्वत्र आचार्य की कीर्त्ति का गान पृथ्वी पर होने लगा। आचार्य को साकेत पधारे जब एक वर्ष पूर्ण हो गया तब वर्षी का विचार हुआ। आचार्य की महिमा अपार थी। वर्षी के उत्सव पर सभी शिष्य एकत्रित हुए। सन्त समूह अनन्तानन्दाचार्यजी के प्रेमवश बड़े उत्साह से आया था। चारों ओर से गृहस्थ सज्जन आये जिन्होंने आचार्य भगवान की कृपा प्राप्त की थी। बहुत से सत्-सङ्गी राजा-महाराजा आये जो आचार्य भगवान के शिष्य और अनन्य भक्त थे। बड़े प्रेम से वर्षी के दिन बड़ा विशाल भण्डारा किया गया। बड़ी धूमधाम हुई। वह महान् उत्सव बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। उसी उत्सव में विशाल सभा हुई। जिसमें आचार्य के लाखों भक्त एकत्रित थे जिनमें ऐसे-ऐसे सिद्ध सन्त योगी आदि थे कि जिनका दर्शन भी दुर्लभ था। सब परस्पर

हिल-मिलकर सत्सङ्ग करने लगे। बड़ा सुन्दर रस हिलोरें लेने लगा। श्रीअनन्तानन्दाचार्य अपने सभी भ्राताओं को देख बड़े प्रसन्न हुए। और उस समय चेतनदासजी को पास बुलाकर दुलार करते हुए मधुर वाणी में कहा—'तुम हमारे गुरुदेव के परम-प्रिय हो। सदा उनके साथ रहकर जिन चरित्रों को संग्रह करते रहे हो सो आज इस सभा में सुनाकर सबको आनन्दित करो। उन चरित्रों को आज सभा में कहोगे तो सुनकर सबको गुरुदेव के दर्शनका-सा सुख मिलेगा। जो भी गुप्त से गुप्त चरित्र हों सब सुना दो। उसे सुनकर वियोग का दुःख कम होगा। तब श्रीचेतनदासजी ने अत्यन्त विनती करते हुए प्रिय वाणी में बार-बार सबको नमस्कार करके सुन्दर सुखदायक गुरुदेव का चरित्र कहना आरम्भ किया। सबने पहले वह कारण कहे कि जिन कारणों से स्वयं भगवान को कलियुग में अवतार लेना पड़ा था। जैसे विप्र दम्पति ने वद्रिकाश्रम में तप किया और जैसे भगवान ने प्रकट होकर वरदान दिया। फिर प्रयाग में आचार्य भगवान ने जैसे अवतार लिया और जन्मोत्सव जैसे मनाया गया तथा बाल-लीला जैसे हुई। वह चरित्र सुनाये। पश्चात् जैसे यज्ञोपवीत-संस्कार के समय आचार्य काशी चले आये थे और विवाह के लिए पिता ने तैयारी की। उस कन्या ने जैसे प्रतिज्ञा की। पश्चात् जैसे उस कन्या ने तप करके आकर दीक्षा ली और तत्काल उसे दिव्यधाम प्राप्त हुआ। पश्चात् जैसे आचार्य भगवान अदृश्य हो गये तथा सब लोग करुण-क्रन्दन कर जैसे महान् दुःखी हुए। यह सब चरित्र सुनाया। फिर श्रीराघवानन्दाचार्य जिस प्रकार आये और दया कर श्रीराम-यज्ञ का आयोजन किया उस यज्ञ में जिस प्रकार से फिर आचार्य भगवान प्रकट हो गये तथा बहुत दिन पृथ्वी पर रहने का वचन

(वरदान) दिया। फिर जैसे साधु वेष धारणकर आचार्य गङ्गा तट कुटी बनाकर भीतर ही रहकर निरन्तर जप करने लगे। सारे संसार में आपकी तपस्या का यश छा गया और जैसे शंख बजाने लगे उस शंख की ध्वनि से रोगी अच्छे होने लगे तथा मुर्दे भी जीने लगे। फिर जैसे कलियुग आया और प्रार्थना करके वरदान मांगा तथा श्रीराम-मंत्रकी दीक्षा लेकर आचार्यके संप्रदाय की सहायता करने की प्रतिज्ञा की। फिर जैसे सुधौली राज्य का राजकुमार क्षयरोग से पीड़ित आया उसको गङ्गा में डुबाकर क्षयरोग दूर कर दिया तथा श्रीरैदासजी का जन्म चर्मकार के गृह में जैसे हुआ एवं शृङ्गेरी मठ के श्रीशङ्कराचार्यजी का आना और सम्वाद वर्णन किया। फिर श्रीशिवजी का मिलना। परस्पर विनय आदि वार्ता सुनाई। फिर जैसे श्रीअनन्तानन्दजी ने आकर दीक्षा ली। फिर सिसौदिया कुल की राजकुमारी ने आकर जैसे अपने पति का पता पूछा उसका दुःख निवारण किया यह सब चरित्र विस्तार से सुनाये। गङ्गाराम नाम के ब्राह्मण को डूबते से जैसे बचाया तथा पद्मेश्वर नाम के विद्वान् को दिव्य-दृष्टि प्रदान की। उन्होंने स्वरूप पहिचान कर परम सुन्दर आचार्य की स्तुति की। यह सब चरित्र सुनाये। एक कृष्ण विरहनी कन्या जिस प्रकार आई उसे दर्शन कराके उसका दुःख दूर किया। फिर एक मस्त साधु आया उस पर कृपा की तथा एक पुरोहित की वार्ता सुनाई। एक यवनदेवी आई उसने जैसे प्रार्थना की वह सब चरित्र सुनाया। पश्चात् श्रीपाचर मुनि का सम्वाद जैसे हुआ और उन्होंने जैसे दीक्षा ली श्रीअनन्तानन्द जी ने जैसे प्रश्न किया और सुन्दर समाधान हुआ जिसमें श्रीराम मंत्रराज की परम्परा का वर्णन था। एवं श्रीराम परत्व भी बर्णन किया था। फिर जैसे तामसी अघोरी देवी पूजक सिद्ध

आये। उनके कुकृत्यों को जैसे शमन किया। फिर जैसे एक प्रेत को मुक्ति दी। बिना कारण कृपा करके आचार्य ने उन सबको सुखी किया। फिर जैसे एक मैना आई उसे आपने किन्नरी बना दिया, जैसे वह ऊषी किन्नरी मैना बनी थी वह सब कथा सुनाई। फिर श्रीकृपाशङ्करजी योगीराज का आना तथा सम्वाद होना और उनको मुक्ति देना। श्रीसुखानन्दजी का जन्म तथा आकर जैसे दीक्षा ली। श्रीसुरसुरानन्दजी का आना। गान, कला दिखलाकर आचार्य को रिझाना फिर उनका दीक्षा लेना फिर मंत्र का अर्थ पूछा सो विस्तार से सुनाना आदि चरित्र कहे। फिर श्रीयोगानन्दजी का चरित्र वर्णन किया तथा उन्होंने जो गुरुदेव से अष्टयाम-सेवा ध्यान सीखा वह विधिवत् वर्णन किया फिर श्रीसेन भक्त और श्रीजङ्गमस्वामीजी का जो विवाद हुआ तथा दोनों झगड़ते हुए आश्रम पर आये उनका न्याय किया फिर धन्ना भक्त का चरित्र सुनाया। फिर श्रीनिजगुण नाम के योगीराज का सम्वाद जैसे हुआ तथा जैसे उन पर कृपा की। फिर श्रीझीटा पण्डित का जैसे भ्रम मिटाया तथा उनको विद्या अविद्या आदि मायाओं से रहित किया। पश्चात् बकरी जैसे मुख वाली कन्या को परम सुन्दरी बनाया तथा श्रीचन्द्रचूड़ मुनि का अभिमान दूर करके कर्मों का रहस्य समझाया। श्रीपद्मा का जन्म और चरित्र तथा श्रीविनय मुनि का चरित्र सुनाया। फिर श्रीगालवानन्दजी का चरित्र कहकर श्रीपीपा राजा का आगमन सुनाया। फिर जैसे वृन्दावन के सन्त को रासलीला दिखाई तथा श्रीचन्द्रशेखर पण्डित को जैसे ज्ञान का प्रकाश दिखाया फिर प्रेतों का जैसे उद्धार किया और अरब देश के यात्री का जैसे समाधान किया। पतिव्रता ब्राह्मणी के पति को जैसे जीवित किया तथा मुसलमानों की नमाज बन्द करके उन्हें

दण्ड देकर देश में उसका अत्याचार बन्द कराया। जिस प्रकार ब्रह्मसूत्र पर आनन्दभाष्य रचा तथा पंडितों के समाधानके लिए श्रीवेदव्यासजी को प्रकट कर उनके द्वारा सबकी शङ्काएँ मिटाईं। फिर दिग्विजय के लिए चले तथा श्रीपीपाजी के यहाँ जैसे गये। श्रीपीपाजी की फुलवाड़ी का वर्णन तथा वहाँ बसन्त ऋतु शोभा तथा वहाँ के उत्सवों का वर्णन जिस प्रकार पीपाजी यात्रा में गुरुदेव के साथ ही साधु बन चले। श्रीचित्रकूट में वर्षा ऋतु का विचित्र वर्णन। फिर जनकपुर में आये वहाँ की लीला तथा जैसे गङ्गासागर तीर्थ योगबल से जाकर प्रकट किया। श्रीजगन्नाथधाम, श्रीरामेश्वरधाम आदि में जैसे विचित्र लीलायें की थीं। वह सब सुनाईं। फिर विजय नगर, काँची तथा श्रीरङ्गम के अलौकिक चरित्र वर्णन किये। द्वारकापुरी तथा आबू पहाड़ में जो सुन्दर वैष्णवधर्म आदिके रहस्य कहे थे वह सुनाये। पश्चात् पुस्करतीर्थ में भानुप्रिय को सुधारना तथा श्रीवृन्दावन में आकर भण्डारा करना एवं श्रीहरिद्वार में जो विलक्षण रहस्य हुए थे वह सुनाये। श्रीहरिद्वार के चरित्र सुनकर काश्मीर का तथा नैमिषारण्य की यात्रा का वर्णन किया। फिर अयोध्या में आकर सभा में जैसे उपदेश दिया तथा धर्म-भ्रष्टों को पुनः शुद्ध किया। ऐसे अनेकों चरित्र करके दिग्विजय कर जब काशी आये तो काशी निवासियों ने जैसे गुणगान किया यह सब रहस्य विस्तार से सुनाया। फिर काशी में जैसे विशाल भण्डारा किया तथा जैसे ब्राह्मणों ने स्तुति की। फिर सभा में जैसे आचार्य ने उपदेश दिया था। फिर बालक के पुत्र चिह्न बनाना आदि सुनाया। सिंह और सर्प को देवरूप बनाना वह स्तुति कर स्वर्ग गये। फिर श्रीब्रह्माजी और श्रीइन्द्रजी जैसे पक्षीरूप बनाकर आये, वह सब चरित्र सुनाया। फिर आचार्य ने यज्ञ में अनेकों

रूप धारण किये। पश्चात् आचार्य भगवान दिव्य विमान पर बैठकर जैसे साकेत लोक गये आदि सब गुप्त प्रकट चरित्र विस्तार से श्रीचेतनदासजी ने सुनाये। उन सुन्दर चरित्रों को सुन सभी सभा के लोग गद्गद हो प्रेमाश्रु बहाते हुए इतने भाव विभोर हुए कि वह दशा वर्णन नहीं की जा सकती। आचार्य के चरित्रों की मणिमाला हृदय में धारण कर सब अपने-अपने स्थानों को चले गये।

यह श्रीआचार्य भगवान का चरित्र अनुपम एवं मङ्गलमय है इसे जो कहते-सुनते हैं वह मङ्गल स्वरूप हो जाते हैं जो इसको प्रेम से पाठ करेंगे गानकर सुनायेंगे, वह सभी मनवांछित फल प्राप्त करेंगे। यह सुन्दर चरित्र सिद्धों के अनुभवों से भरा हुआ है। यह सबको प्रिय है परन्तु संतों को विशेष रुचिकर है। साधक सुनेंगे तो समझकर सिद्धि पायेंगे और सिद्ध सुनेंगे तो उन्हें श्रीभगवान की प्राप्ति होगी।

॥ इति श्रीरामानन्दाचार्यचरितामृत सम्पूर्ण ॥

प्राप्य पुस्तकें

भक्तमाल भाषा-टीका एवं व्याख्या सहित—(चार भाग में)

१. भक्तमाल प्रथमखण्ड
२. भक्तमाल द्वितीयखण्ड
३. भक्तमाल तृतीयखण्ड
४. भक्तमाल चतुर्थखण्ड
५. द्वादश महाभागवतचरित
६. श्रीरामानन्दाचार्यचरित
७. अग्रग्रन्थावली
८. श्रीहरिजन प्रमोद रामायण
९. वैष्णव ग्रन्थावली
१०. अयोध्या-दर्पण
११. वृहद् चित्रकूट माहात्म्य
१२. श्रीरामस्तवराज
१३. श्रीभक्तमाल (भक्तिरसबोधिनी)
१४. श्रीतुलसीचरित
१५. भक्तमाल (मूल) गुटका छप्पय मात्र
१६. अन्य पुस्तकें

पुस्तक प्राप्ति स्थल :

- **श्रीरामानन्द पुस्तकालय**
  सुदामाकुटी, वृन्दावन (मथुरा)
- **ब्रजवासी पुस्तकालय**
  पुराना शहर, वृन्दावन (मथुरा)
- **खण्डेलवाल पुस्तकालय**
  अठखम्भा, वृन्दावन (मथुरा)

● मारुति प्रेस, मदनमोहन-घेरा, वृन्दावन. ☎ 444215